चौ०सं०ग्रं०
३०९

ग्रहलाघवम् ★ प्रो० रामचन्द्र पाण्डेयः



हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ३०९

श्रीगणेशदैवज्ञविरचितम्

ग्रहलाघवम्

'मल्लारि'कृतसंस्कृतव्याख्यया 'चन्द्रिका'
हिन्दीव्याख्यया च समलङ्कृतम्



सम्पादको व्याख्याकारश्च
प्रो० रामचन्द्रपाण्डेयः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

३०६

श्रीगणेशदैवज्ञविरचितम्

ग्रहलाघवम्

'मल्लारि'कृतसंस्कृतव्याख्यया 'चन्द्रिका'नाम्नीहिन्दीव्याख्यया च समलङ्कृतम्

सम्पादको व्याख्याकारश्च

प्रो० रामचन्द्रपाण्डेयः

अध्यक्षः ज्योतिष-विभागे

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयः, वाराणसी



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९९४

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस; वाराणसी

संस्करण : प्रथम; वि० सं० २०५०

मूल्य : रू० ५०-००

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० नं० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ३३३४५८

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० १११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी- २२१००१ (भारत)

फोन : ५२३५८

HARIDAS SANSKRIT SERIES
309

GRAHALAGHAVAM

By

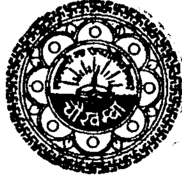
Sri Ganesh Daivajna

With

the Sanskrit Commentary of Mallari and
'Candrika' Hindi Commentary

Editor & Commentator

Prof. Ram Chandra Pandey
Head, Department of Jyotish
Faculty of S.L.T.
Banaras Hindu University, Varanasi.



CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE, VARANASI.

1994

K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1008; Varanasi-221001 (India)
Phone : 333458

First Edition
1994

Also can be had from

KRISHNADAS Academy
Oriental Publishers & Distributors
POST BOX No. 1118
Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001
(INDIA)
Phone : 52358

Graha Laghavam Karanam

The Graha Laghava Karanam written in 1520 A.D. is a well known work on Indian Astronomy. It's author, Ganesh Daivajna was the son of astronomer Keshava Daivajna of Kaushika gotra and belonged to the village Nandigram (Modern Nanded in Gujrat). In writting this book the author used the parameters of all the three systems of Astronomy then prevalent, viz Arya, Saur and Brahma whichever were considered accurate by him. Moreover, special care was taken to avoid the use of the sine and co-sine futcions. This work was held in high esteem and it became so much popular that a number of Commentaries were written on it, of which those of Mallari, Nrisimha and Vishvanatha are well known. It is taught as a text-book of Jyotish in Sanskrit colleges even now.

Dr. Ram Chandra Panday's edition of the Graha Laghava has been specially prepared for the students of Jyotisha. Dr. Panday besides giving the Sanskrit text and the Sanskrit commentary of Mallari, has given Hindi translation followed by explanatory notes in Hindi for every verse of the Text. His Hindi translation is clear and easy to understand and the explanations provided by him include illustrative examples which make the rules further clear. In his introduction to part 1 Dr. Panday has thrown light on the author and his commentator Mallari.

Part 1 of the book contains five chapters dealing with mean motion, true positions of the Sun and the Moon, true positions of the five planets, problems on shadow and the celestial sphere and the eclipse of the Moon. Part 2 Contain elevens chapters, dealing with the Solar eclipses by simplified method, rising and setting of the planets, shadow cast by the planets and stars. ele-

vation of the lunor homs, conjunction of the planets and stars, the phenomena of Pata and the elements of the Panchanga.

Dr. Pandey's edition will prove useful to students and to all those who want to learn Indian astronomy.

First edition reviewed by

Dr. K. S. Shukla, Lucknow

प्राक्कथन

आचार्य श्री गणेश दैवज्ञ की अद्भुत कृति ग्रहलाघव को ज्योतिष जगत् में जितनी लोकप्रियता उपलब्ध हुई, उतनी कुछ ही इने-गिने आचार्यों एवं उनकी कृतियों को मिल पायी। प्रायः सर्वत्र ज्योतिष के पाठ्यक्रम में इस ग्रन्थ को स्थान दिया गया है। फिर भी एक समय ऐसा आया कि छात्रों को ग्रहलाघव ग्रन्थ बाजार में कहीं उपलब्ध नहीं था। अध्यापकों एवं छात्रों को अत्यन्त कष्ट हो रहा था। अन्तिम संस्करण पं० श्री सीताराम झा द्वारा सम्पादित था, वह भी अनुपलब्ध था। इस कठिनाई को देखकर सन् १९७६ में मैंने नवीन उदाहरण के साथ ग्रहलाघव का हिन्दी भाषानुवाद कर श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ से प्रकाशित किया, किन्तु वित्तीय नियमों एवं अन्य कारणों से केवल चन्द्रग्रहणाधिकार तक ही प्रकाशन हो पाया। शेष अंश का प्रकाशन सन् १९७७ में सम्भव हो पाया। द्वितीय खण्ड के प्रकाशन में व्याख्या के कुछ अंशों को निकाल देना पड़ा, जो मेरे मन में सदैव खटकता रहा। उस न्यूनता को दूर करते हुए तथा कुछ महत्त्वपूर्ण परिष्कारों के साथ सम्पूर्ण ग्रहलाघव 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, उदाहरण एवं मल्लारि कृत संस्कृत व्याख्या के साथ प्रकाशित करते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है। मुझे विश्वास है कि यह संस्करण सभी ज्योतिषानुरागी छात्रों के लिए सहयोगी सिद्ध होगा।

वाराणसी
१९९३

रामचन्द्र पाण्डेय

प्रस्तावना

भास्वद् रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचो रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वन्वै दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णप्रभाभिः ।
विश्वाकाशावकाशग्रहपतिशिखरं भाति यश्चोदयाद्रौ,
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः ॥

अनन्त ब्रह्माण्ड में अनसुलझे रहस्य भी अनन्त हैं। किसी भी रहस्य को सुलझाने के लिए मानव जीवन अत्यन्त स्वल्प प्रतीत होता है। यही कारण है कि एक वैज्ञानिक अपने जीवन में किसी भी उपलब्धि के एक या एकाधिक अंश को ही ज्ञात कर पाता है। उसके आगे का कार्य दूसरे वैज्ञानिक को जीवनसाधना का अंग बन जाता है। आविष्कार का यही क्रम सदियों से चला आ रहा है, आगे भी चलता रहेगा। भारतीय दैवज्ञों को मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा असीम ज्ञानराशि सरलता से उपलब्ध हो गयी थी। इस ज्ञानभण्डार को हृदयंगम कर लेने तथा उसके व्यवहार कर लेने मात्र से भारतीय मनीषा अपने आपको तृप्त मान लेती है। परिणामतः अनुसन्धान की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती रही, इसका दूरगामी प्रभाव पड़ा। जितना ज्ञान प्राप्त हो चुका था, हम उसे आगे उस सीमा तक नहीं बढ़ा सके, जहाँ तक ले जाने की क्षमता थी। इतना ही नहीं, अपितु इस विशाल ज्ञानभण्डार की सुरक्षा भी संदिग्ध हो गयी।

ज्योतिष शास्त्र त्रिपथा (गंगा) की तरह अपनी प्रमुख तीन धाराओं में अनादि काल से प्रवाहित हो रहा है। इसकी ज्ञानधारा कभी भी अवरुद्ध नहीं हुई, अपितु समय-समय पर हमारी पिपासा ही शान्त हो गयी और हम संकुचित क्षेत्र में अपने आपको सीमित कर लिये। ज्योतिष तो अनन्त है। इसमें संकोच की नहीं, विकास की आवश्यकता है। मेरी दृष्टि में पण्डितराज जगन्नाथ की यह पँक्ति—

सुधातः स्वादीयं सलिलमिदमातृप्ति पिबतां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम् ॥

इस ज्योतिष रूपी गंगालहरी में अधिक चरितार्थ हो रही है। त्रिपथगा की एक धारा आकाशगंगा है, जिसे गैलेक्सी (Galaxy) या मिल्की वे (Milkyway)

आदि नामों से आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिष में कहा गया है। इसका एक लघुखण्ड हमारा ब्रह्माण्ड या सौरमण्डल है। ऐसे-ऐसे करोड़ों सौरमण्डल इस आकाशगंगा में छिपे हुए हैं, जिनका स्पष्ट ज्ञान आज के सर्वसाधनसम्पन्न वैज्ञानिक युग में भी अत्यन्त कठिन है। हमारा सौरमण्डल ही अनन्त एवं रहस्यमय है, अभी हम इसी का पूर्णज्ञान नहीं कर पाये हैं। जब हम प्राचीन आचार्यों की तरफ दृष्टि डालते हैं तो आश्चर्य होता है कि साधनहीन होते हुए भी इन महापुरुषों ने आकाशगंगा में इतने गोते लगाये और अपने अनुभवों को लिपिबद्ध कर हम लोगों तक पहुँचाया। आचार्यों ने अनवरत वेध किया। आवश्यक एवं यथासम्भव वेध उपकरणों का निर्माण भी किया तथा ग्रहगति को अच्छी तरह पहचान कर एक सिद्धान्त स्थिर किया। कालान्तर में गणित के विकास एवं सिद्धान्तों के संशोधन द्वारा ज्योतिष शास्त्र को उन्नत स्थान प्राप्त हुआ। वेध-प्रक्रिया को सर्वसुलभ न समझकर ग्रहसाधन को गणित का रूप देकर करण ग्रन्थों की रचना की गयी। इस पद्धति से साधनहीन व्यक्ति भी ग्रहगति को समझने एवं सिद्ध करने योग्य हो गया। पश्चात् यह करण-प्रक्रिया बहुत लोकप्रिय हो गयी तथा इसी आधार पर पञ्चांगादि का निर्माण प्रारम्भ हो गया।

कुछ विद्वानों ने इस पद्धति को सुगम तो स्वीकार किया, किन्तु इसके प्रचार का विरोध भी किया, क्योंकि सुगम पद्धति प्रचलित हो जाने से वेध-प्रक्रिया नष्टप्राय हो गयी। वेध के अभाव में ज्योतिष के क्षेत्र में नवीन कार्य बन्द हो गये। समय का कुछ ऐसा दुर्विपाक है कि आज करणपद्धति भी नष्ट हो रही है। कुछ इने-गिने करण-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था के अभाव में उन उपलब्ध ग्रन्थों का भी दिनों-दिन अभाव होता जा रहा है। कुछ स्थानों में ग्रहलाघव को पाठ्यक्रम में रखा गया है। इससे यह ग्रन्थ अभी भी प्रचलित है, किन्तु आचार्य विश्वनाथ के बाद किसी ने नवीन उदाहरण नहीं लिया। इसका कारण मेरी समझ में यही आता है कि ग्रहलाघव की सारणि बन चुकी है। जब किसी को आवश्यकता होती है सारणि से ग्रह-साधन कर लेता है। परन्तु छात्रों में सक्रियता लाने के लिए तथा करणपद्धति को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि नये-नये उदाहरणों को ग्रन्थोक्त रीति से समझाया जाय। यही सोचकर मैंने इस ग्रन्थ की हिन्दी टीका एवं नवीन उदाहरण शक १८९६ का प्रस्तुत किया है। साथ ही प्रयास किया गया है कि पाठक स्वयं भी इस ग्रन्थ का अध्ययन कर ग्रहगणना में सक्षम हो सकें।

करण—यह एक पद्धति का नाम है, जो सिद्धान्त-ज्योतिष के अन्तर्गत परिगणित की गयी है। सिद्धान्त-ग्रन्थों में जो अहर्गण द्वारा ग्रहानयनादि की विधि बतायी गयी है, उसी का प्रायोगिक स्वरूप करण पद्धति कहलाता है। अतः इसे हम प्रायोगिक सिद्धान्त भी कह सकते हैं। पूर्वाचार्यों ने सिद्धान्त ज्योतिष को भी तीन भागों में विभक्त किया है, यथा—१. सृष्टि के आरम्भ से ग्रहगणना जिस शास्त्र में की गयी हो, उसे सिद्धान्त, २. युग के आरम्भ से जिसमें ग्रहादि की गणना हो, उसे तन्त्र तथा ३. किसी नियत लघुकालखण्ड या किसी शक से ग्रहगणना जहाँ हो, उसे करण कहते हैं। इसका विश्लेषण प्रकृत ग्रन्थ की टीका में मल्लारि[1] ने भी किया है।

ग्रहलाघवम् नाम रखने का अभिप्राय यही था कि इस ग्रन्थ में ग्रहों को अत्यन्त सरल ढंग से साधित किया गया है। अतः अन्य करण-ग्रन्थों की अपेक्षा ग्रहलाघव करण अतीव सरल एवं सुगम है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ का विद्वन्मण्डल ने अधिक आदर किया तथा अध्ययन अध्यापन द्वारा इसका प्रसार भी किया।

टीका—ग्रहलाघव की बहुत सी टीकाएँ हुईं, किन्तु सभी उपलब्ध नहीं हैं। उपलब्ध एवं मुद्रित टीकाओं में सर्वश्रेष्ठ मल्लारि की ही टीका है। सन् १९२५ ई० में वेंकटेश्वर प्रेस से एक बार प्रकाशित भी हुई है। मल्लारि की टीका, विश्वनाथ के उदाहरण को लेकर पं० सुधाकर द्विवेदी ने सम्पादन किया था तथा इसके साथ-साथ श्री द्विवेदीजी ने स्थान-स्थान पर उपपत्ति भी दी है। इनके अतिरिक्त ग्रहलाघव की दो हिन्दी टीकाएँ मुझे देखने को मिली हैं। दोनों ही टीकाकारों ने विश्वनाथ के उदाहरण को अंगीकार करते हुए उनका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। द्वितीय (परवर्ती) टीका स्व० पं० श्री सीताराम झा की है। इन्होंने उदाहरण तो विश्वनाथ का ही दिया है, किन्तु उपपत्ति में अपनी मौलिकता भी प्रस्तुत की है।

प्रस्तुत टीका में मैंने मल्लारि की संस्कृत टीका तथा उपपत्ति का नवीन पद्धति से यथासम्भव उद्धरणों के संकेत पूर्वक सम्पादन करते हुए छात्रों के हित के लिए स्वरचित चन्द्रिका नामक हिन्दी टीका एवं नवीन उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। इसके साथ-साथ मार्ग में आने वाली गुत्थियों को भी सुलझाने का यथासम्भव प्रयास किया है। यथा—मध्यम चन्द्रसाधन के प्रसंग में श्री गणेश दैवज्ञ ने देशान्तर संस्कार के लिए लिखा है—

निज-निजपुररेखान्तःस्थिताद्योजनौघाद्
रसलवमितलिप्ता स्वर्णमिन्दौ परे प्राक् ॥[1]

किन्तु यह संस्कार छात्रों को तब तक समझ में नहीं आ सकता, जब तक उन्हें देशान्तर योजन का ज्ञान न हो। यद्यपि यह गूढ़ विषय नहीं है, परन्तु सुकुमार-मति छात्रों को सार्वदेशिक चन्द्रसाधन हेतु स्पष्ट देशान्तर साधन की विधि भी प्रस्तुत हिन्दी (चन्द्रिका) टीका में प्रदर्शित की गयी है। इसी प्रकार आवश्यक विषयों का निर्देश भी किया गया है।

त्रिप्रश्नाधिकार में सावयव अंकों के वर्गमूल की कमलाकर भट्टकृत पद्धति लगभग सभी टीकाकारों ने उद्धृत की है। उन्हीं विद्वानों द्वारा उद्धृत श्लोक मैंने भी उद्धृत किया है, किन्तु उस पद्धति के अतिरिक्त उससे समता रखती हुई एक और पद्धति का ज्ञान मुझे टीका लिखते समय हुआ, उसे भी छात्रों के हितार्थं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सर्वप्रथम सामान्य विधि से ही मूलसाधन कर उसे प्रथम अवयव मान लें, पश्चात् शेष में १ जोड़कर ६० से गुणा कर गुणनफल में द्विगुणित प्रथम अवयव में दो मिलाकर भाग देने से लब्धि द्वितीय अवयव होगी। यथा—३३३६।२२ का वर्गमूल निकालना है। लीलावती में बताये हुए त्यक्त्यान्त्याद् विषमादित्यादि[2] विधि से अथवा आधुनिक प्रचलित वर्गमूलानयन पद्धति से वर्गमूल निकालेंगे—

	५५
	−। −।
५×२=१०	३३३६।२२
	२५
७×७=४९	८३
	७०
	१३६
	४९
	८७

√

सामान्य नियमानुसार ५७ वर्गमूल प्रथम अवयव हुआ। शेष ८७ में १ जोड़कर ६० से गुणा कर गुणनफल में संख्या का द्वितीय अवयव २२ जोड़ेंगे—

८७ + १ = ८८ × ६० = ५२८० + २२ = ५३०२

१. पू० द्र० ६   २. ग्रा० ला० १.९

प्रथम मूल ५७ को २ से गुणाकर २ जोड़ने से (५७×२=११४+२)= ११६ हुआ। इससे ५३०२ में भाग देने से लब्धि ४५ वर्गमूल का द्वितीय अवयव हुआ। अर्थात् ३३३६।२२ का सावयव वर्गमूल ५७।४५ हुआ। विश्वनाथ, सुधाकर आदि आचार्यों ने भी 'षष्टिवर्ग गुणादङ्कानित्यादि' सूत्र से जो विधि बताई है, उससे भी उक्तराशि का वर्गमूल ५०।४५ ही आता है। प्रस्तुत विधि में कदाचित् द्वितीय अवयव में १ संख्या का अन्तर आ सकता है, किन्तु अशुद्ध नहीं होगा। क्योंकि षष्टिवर्गगुणादङ्कान् इत्यादि पद्धति से आनीत वर्गमूल भी सूक्ष्म नहीं है। अतः दोनों ही क्रिया उपयोग में लाई जा सकती है।

ग्रन्थकार श्रीगणेशदैवज्ञ—यह तो सर्वविदित है ही कि ग्रहलाघव की रचना श्रीगणेश दैवज्ञ ने की है, किन्तु ग्रहलाघव के प्रथम श्लोक को देखकर सन्देह भी पैदा होता है। वहाँ स्पष्ट लिखा है—"जयति केशववाक्श्रुतिश्श्च" अर्थात् ग्रहलाघव रूपी वाणी केशव दैवज्ञ की है। यह मानना असंगत भी नहीं है, क्योंकि केशव दैवज्ञ ने भी 'ग्रहकौतुक' नामक एक करण ग्रन्थ की रचना की है। ग्रहकौतुक तथा ग्रहलाघव का प्रायः अभिप्राय एक ही है। अतः सम्भव है केशव दैवज्ञ की पद्धति को गणेश दैवज्ञ ने सम्पादित किया हो। केशव दैवज्ञ बहुत प्रतिभाशाली गणितज्ञ थे इन्होंने जातकपद्धति भी बनाई है तथा उसमें भी कुछ नई दिशायें दी हैं। आज वह जातकपद्धति केशवीय जातकपद्धति नाम से प्रसिद्ध है।

केशव दैवज्ञ गणेश दैवज्ञ के पिता थे। यद्यपि ज्योतिष शास्त्र के इतिहास में दो केशवदैवज्ञ का नाम आता है। प्रथम शक ११६५ के आसन्न हुए थे। इनका प्रमुख ग्रन्थ विवाहवृन्दावन आज भी प्रचलित है। द्वितीय केशव शक १४१८ के आसन्न हुए थे। इनका जन्म स्थान कोंकण प्रान्त में समुद्र के किनारे नन्दिग्राम (आज का प्रचलित नांदगाँव) में हुआ था। इनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी तथा पुत्र का नाम गणेश था। इन्होंने जातक, ताजिक तथा करण तीनों प्रकार की रचनायें की हैं। ये वेधक्रिया में भी पूर्ण दक्ष थे। अतः ग्रहलाघव जैसी रचना उनके लिए असंगत नहीं है। परन्तु गणेश दैवज्ञ की रचनाओं में सर्वप्रथम ग्रहलाघव का ही नाम आता है। अतः प्रायः सभी लोगों ने ग्रहलाघव के रचयिता में सन्देह नहीं किया है। परम्परा का अनुसरण करते हुए मैं भी 'जयति केशव वाक्श्रुतिश्च' का अभिप्राय यही ले रहा हूँ कि केशव दैवज्ञ ने अपने पुत्र गणेश दैवज्ञ को ज्योतिष की शिक्षा दी इसीलिए उन्होंने मङ्गलाचरण में पिता एवं गुरु की वाणी को श्रुतिस्वरूप मानकर ग्रन्थरचना की।

पहले बताया जा चुका है कि गणेश दैवज्ञ केशव (द्वितीय) के पुत्र हैं। इनकी माता का नाम लक्ष्मी है। शक १४२० के आसन्न इनका जन्म कोंकण प्रदेश के नन्दिग्राम में कौशिक गोत्र में हुआ था। इनका जन्म-स्थल बम्बई महानगर से लगभग ४० मील दक्षिण है।

ये बहुत परिश्रमी तथा अध्यवसायी थे। इन्होंने बहुत-सी टीकायें तथा स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं। इनकी रचनाओं में सर्वाधिक प्रचलित ग्रहलाघव ही है। इसके अतिरिक्त लघुतिथिचिन्तामणि, बृहत्तिथिचिन्तामणि, सिद्धान्तशिरोमणि टीका, लीलावती टीका, विवाहवृन्दावन टीका, मुहूर्त्ततत्त्व टीका, श्राद्धनिर्णय, छन्दार्णव टीका, तर्जनी यन्त्र इत्यादि रचनायें हैं। इन पुस्तकों एवं टीकाओं का उल्लेख विश्वनाथ ने किया है तथा इस सम्बन्ध में नृसिंह दैवज्ञ द्वारा लिखित श्लोक भी उद्धृत किया है।[1] गणेश दैवज्ञ ने भी अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कुछ संकेत किया है—

कृत्वादौ ग्रहलाघवाख्यकरणं तिथ्यादिसिद्धिद्वयम्,
श्लोकैः श्राद्धविधिं सवासनतया लीलावतीव्याकृतिम्।
सप्रक्षेपमुहूर्त्ततत्त्वविवृतिं पर्वादिसन्निर्णयं,
तस्मान्मङ्गलनिर्णयाद्यथ कृता वैवाहसद्दीपिका॥[1]

गणेश दैवज्ञ ने न केवल ग्रहलाघव की रचना कर ग्रहगणित को सरल बनाया, अपितु इन्होंने भारतीय ज्योतिष की नींव को भी सुदृढ़ किया है। इन्होंने प्राचीन सिद्धान्तों का अन्धानुकरण न करके पद-पद पर ग्रहों का वेध कर गणितागत और वेधोपलब्ध मानों का समन्वय करते हुए एक तृतीय मार्ग अपनाया, जिससे बिना वेध किये भारतीय पद्धति से ही शुद्धग्रहों का साधन किया जा सकता है। प्राचीन प्रचलित ब्राह्म-आर्य-सौर सिद्धान्तों को अपनाया तथा जहाँ कुछ संशोधन अपेक्षित था, वहाँ संशोधन भी किया। सिद्धान्तों में जो पद्धति दृश्य के आसन्न थी, उसका ही यहाँ संग्रह किया गया है। इसका संकेत भी ग्रहलाघव में ही मध्यमाधिकार के अन्त में किया गया है।

सौरऽर्कोऽपि विधूच्चमङ्कलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजोऽसृग् राहू च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्ये सेषुभागः शनिः॥[2]

१. द्र० भारतीय ज्योतिष पृ० ३५९।

१. वि० वृ० उद्धृत भा० ज्यो० पृष्ठ ३६०।

२. यू० सि० १.१६

सर्वाधिक दूरवर्ती ग्रह शनि भी गणेश दैवज्ञ ने शुद्ध साधित किया। यह कार्य भारतीय ज्योतिष का मस्तक उन्नत करने वाला है।

मल्लारि—इनके पिता का नाम दिवाकर था। ये पाँच भाई थे। इनमें विष्णु दैवज्ञ, विश्वनाथ तथा मल्लारि ये तीनों ही यशस्वी हुए। मल्लारि और विश्वनाथ दोनों ने ग्रहलाघव को ही अपना क्षेत्र बनाया। विश्वनाथ ने उदाहरण प्रस्तुत किया, जिससे जिज्ञासु व्यक्तियों को बड़ा लाभ हुआ। मल्लारि ने बहुत ही सरल एवं सुबोध संस्कृत टीका लिखी। इसके साथ-साथ ग्रहलाघव की उपपत्ति भी लिखी, जो सर्वाधिक जटिल कार्य था। इस कार्य को भी इन्होंने बड़ी कुशलता, पूर्वक निभाया है। ग्रहलाघव के अतिरिक्त भी बहुत-से अन्य ग्रन्थों की टीकाएँ इन्होंने की हैं।

इनका जन्म शक १५०० के आसन्न हुआ था। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इनके टीकाकाल के प्रसंग में एक श्लोक उद्धृत किया है, जिससे मल्लारि का नाम 'बालगणक' भी लक्षित होता है। यथा—

बाणोनाच्छकतः कुरामविहृतान्मूलं हि मासः स युक्
बाणैर्भेश्च दशोनितं दिनमितिस्तस्या दलं स्यात्तिथिः।
पक्षः स्यात्तिथिसंमितोऽखिलयुतिः सप्ताब्धि तिथ्युन्मिता
बालाख्यो गणको लिलेख च तथा टीकां परार्थत्विमाम्॥[1]

यह काल संकेत बहुत क्लिष्ट पद्धति से किया है। इसका अभिप्राय यह है कि शक १५२४ आश्विन मास की शुक्ल प्रतिपदा सोमवार उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र में बाल नामक गणक ने दूसरों के लिए यह टीका की।

यह संस्करण प्रमुख रूप से छात्रों के लिए ही प्रस्तुत किया गया है। अतः परीक्षोपयोगी ग्रन्थ परिचय, ग्रन्थकार-टीकाकार परिचय भी यथासम्भव सन्निविष्ट किया गया है। इस कार्य से यदि छात्र लाभान्वित हुए तथा ग्रहगणना के प्रति उनकी रुचि बढ़ी तो मैं अपना प्रयास सार्थक समझूँगा।

आभार—सर्वप्रथम मैं कीर्तिशेष पूज्य पिता पं० श्री बलदेवपाण्डेयजी के चरणों में श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ, जिनके तपःपूत आशीष से मैं ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त हुआ। अनन्तर परम पूज्य गुरुदेव ज्योतिषशास्त्रार्णव में मन्दरगिरि के समान विद्वद्वरेण्य स्व० पं० श्री अवधविहारी त्रिपाठी के चरणों में

१. भा० ज्यो०।

शतशः प्रणाम करता हूँ, जिनके ज्ञानलव के प्रकाश में लेखन कार्य में प्रवृत्त हो सका हूँ। प्राच्य-प्रतीची ज्योतिष शास्त्र एवं गणित के मूर्धन्य विद्वान् गुरुवर्य स्व० डा० मुरारिलाल शर्माजी को प्रणामाञ्जलि अर्पित करते हुए उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता अर्पित करता हूँ, जिनका स्नेहपूर्ण सहयोग मुझे सतत मिलता रहा है। साथ ही अपने अभिन्न मित्र डा० श्री सुधाकर मालवीयजी के प्रति भी आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जो प्रायः प्रकाशन कार्य में मुझे सतत प्रेरित करते रहते हैं। इस संस्करण के मुद्रण में श्रीकृष्णदास अकादमी परिवार के सदस्यों को मैं हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूँ, जिनके उत्साह एवं सहयोग से यह ग्रन्थ प्रकाश में आया है। अन्त में प्रिय पुत्री कु० मीनाक्षी पाण्डेय को सस्नेह आशीष प्रदान करता हूँ, जिसने प्रूफ संशोधन एवं प्रेस कापी तैयार करने में सहयोग किया है।

कष्टसाध्य प्रूफ संशोधन कार्य में सावधानी एवं प्रयास के अतिरिक्त भी त्रुटियाँ सम्भव हैं, अतः ज्योतिषानुरागी विद्वज्जनों से प्रार्थना है कि वे त्रुटियों के मार्जन का प्रयास करेंगे। अन्त में सुजन गणितज्ञों के प्रति प्रार्थना रूप भास्कराचार्य की ये पँक्तियाँ मैं भी उद्धृत कर रहा हूँ—

तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा विशेषान् मदुदीरितान्।
अबोधेन हसन्तो मां तोषमेष्यन्ति दुर्जनाः॥

दीपमालिका
संवत् २०५०

विद्वद्विधेय
रामचन्द्र पाण्डेय



विषयानुक्रमणिका

विषयाः पृष्ठांकाः

विषयाः पृष्ठांकाः

———

गणेशदैवज्ञविरचितं

ग्रहलाघवम्

'मल्लारि' 'चन्द्रिका'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयोपेतम्



१. मध्यमाधिकारः

चन्द्रिका*—

आद्योंकारप्रकारं भखचरगणनाम्भोधिनौकर्णधारं
नत्वाथो विघ्नवारं गणपतिमनिशं वक्रतुण्डावतारम्।
वीणापाणिं च वाणीं नवमतिवरदां शारदां शास्त्रसारां
पाण्डेयो रामचन्द्रः शिशुमतिगतिदां संविधत्ते सुटीकाम्॥

मल्लारिः—नाके नाकेशमुख्याः सुरवरनिवहाः सन्ति येऽनन्तसंख्या।
नाख्यामाख्यात्यमीषां कथमपि च मनः पूर्वकं वाङ्मदीया।
एकं हित्वैकदन्तं सकलसुरशिरःसङ्घसङ्घर्षिताङ्घ्रिम्।
शीघ्रं भक्तेष्टसिद्धिप्रदमिह हि सुरं सादरं तं नमामि॥ १॥
मल्लारिं कुलनायकं रविमुखान् खेटांश्च नत्वा गुरोः।
स्मृत्वा पादयुगं ह्यवाप्य च तत कञ्चित् सुबोधांशकम्।
मल्लारिर्ग्रहलाघवस्य कुरुते टीकां ससद्वासनां।
यस्मादल्पमतिश्च कुण्ठितमतिः स्यात् पूर्ववैचित्र्यवाक्॥ २॥
मध्यस्फुटास्तोदयवक्रपूर्वं कर्माखिलं यद्गणिते खगोत्थम्।
जीवाधनुः संश्रयकं विना तन्न स्यादयं निश्चय एव गोले॥ ३॥
कथमत्र कृतं विना धनुर्ज्ये खगकर्माखिलमल्पकर्मणा।
उपपत्तिविचारणाविधौ गणका मन्दधियो विमोहिताः॥ ४॥
तस्माद् वच्म्युपपत्तिमस्य विमलां तन्मोहनाशाय तां।
ज्ञात्वा मन्मतिकौशलं च गणका पश्यन्तु तुष्यन्तु ते।
हे वर्या गणका विलोक्य यदिहाशुद्धं च संशोध्यतां।
किं वा प्रार्थनया परोपकृतिषु स्वाभाविकस्तद्गुणः॥ ५॥

---

*टीकाकारकृतं मंगलाचरणम्

त्रैकालं कालकालं भज-भज रजनीनायको यत्प्रियस्तं ।
जन्तो सन्तोषतो हि त्रिनयनजनकं नाकलोकप्रकर्षम् ।
गेयज्ञं यज्वयज्ञं वरसुरशिरसा सेवितं वित्तविद्या-
दातारं ताम्रताभं भवभवनवशो नो नरो नम्रनत्या ।। ५ ।।

हे जन्तो प्राणिन् तं ताम्रताभं सिन्दूरवर्णं गणाधीशं हीति निश्चयेन सन्तोषतो भज-भज सेवस्व-सेवस्वेति । स कः । यस्य नम्रनत्या नम्रनमस्कारेण नरः पुरुषो भवः संसारः स एव यद् भवनं तस्य वशो वश्यो नो स्यात् । मुक्त एव स्यादित्यभिप्रायः तमेव विशेषणद्वारा स्तौति । त्रिषूत्पत्ति-स्थितिनाशकालेषु वर्त्तते स तथा त्रिकालावस्थायिनमविनाशिनमित्यर्थः । कालमपि कलयत्याकलयति स तथा पुनः स कः । रजनीनायको रात्रिनाथश्चन्द्रमा यस्य प्रियः सुहृत् तत्सुहृत्त्वं तु चतुर्थीव्रतादौ प्रसिद्धम् । त्रिनयनो जनको यस्य तं शिवतनयमित्यर्थः । यद्वा त्रिनयनस्य जनकं पितरं गणेशम् । तत्सृष्टिकथनम् । "गणेशाच्छङ्करोऽभूदिति" गणेशकल्पादौ प्रसिद्धम् । नाकलोके स्वर्गलोके प्रकर्ष उत्कर्षो यस्य तम् । गेयज्ञं गेयं गानं जानातीति तथा गानाद्यसङ्गीतशास्त्रप्रवर्त्तकम् । यज्वयज्ञं यज्वनां यागकर्त्तॄणां यज्ञं यज्ञरूपं यज्ञांशभोक्तारमित्यर्थः । वरसुरशिरसा वराः सुरा श्रेष्ठा इन्द्रादयो देवास्तेषां शिरसा मस्तकेन सेवितम् । वित्तविद्यादातारं वित्तं द्रव्यं विद्याचतुर्दशम् ।

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।। इति

तद्दातारमभीष्टफलप्रदायकमित्यर्थः ।

अथश्रीमज्जलनिधितटनिकटस्थितनानोपवन-विराजित-नन्दिग्रामाभिधाननगर - निवासि सकलभूपतिसेवितचरणयुगलकमलगणिताटवीविघटनपटुतराखिलदैवविन्मातंगकुम्भपीठलुण्ठनोत्कण्ठकण्ठीरवश्रीमदुमारमणचरणद्वयपङ्कजावाप्तमहामतिर्दैवदवै - भवित्केशवदैवज्ञात्मजा गणेशदैवज्ञवर्या ग्रहलाघवाख्यं ग्रहकरणं चिकीर्षवस्तत्रादौ निर्विघ्नेन ग्रन्थसमाप्तिप्रचयगमनाभ्यां शिष्टाचारपरिपालनायाशीर्नमस्कारवस्तुनिर्देशात्मकानां मंगलादीनि मंगलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथयन्त इति शिष्टनियमाच्चात्र वस्तुनिर्देशरूपमंगलसहितं ग्रन्थारम्भं वसन्ततिलकवृत्तेनाहुः ।।

मङ्गलाचरणम्—

ज्योतिःप्रबोधजननी परिशोध्यचित्तं
तत्सूक्तकर्मचरणैर्गहनाऽर्थपूर्णा ।

स्वल्पाक्षराऽपि च तदंशकृतैरुपायै-
र्व्यक्तीकृता जयति केशववाक् श्रुतिश्च ॥ १

श्रुतिर्वेदो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते । तमेव विशेषणद्वारा स्तौति किं विशिष्टा केशवस्य विष्णोर्वाक् "यस्य निश्वसितं वेदाः" इत्याद्युक्तत्वात् ज्योतिषस्तेजसः प्रकाशकस्य गुणत्रयातीतस्य तेजो रूपस्य परब्रह्मणः प्रबोधो ज्ञानं तं जनयत्युत्पादयीति तथा । मायावेष्टितस्य जन्तोर्देहात्ममानिनोऽसौ देहो नश्वर आत्मा नित्यो व्यापको निराकार इत्यादि ज्ञान वैदिककर्मद्वारा श्रवणमनननिदिध्यासनसाक्षात्कारैर्भवतीत्यर्थः । किं कृत्वा ॥ तत्सूक्तकर्मचरणैः । तस्यां श्रुतौ सुष्ठु उक्तानि यानि सन्ध्यास्नानदानजपहोमयज्ञादीनि कर्माणि तेषां चरणैराचरणैरनुष्ठानैश्चित्तं मनः संशोध्य शुद्धं कृत्वा । यतः मनः शुद्धौ जातायामेवात्मज्ञानं भवति । गहनार्थेन गम्भीरार्थेन पूर्णा अर्थपूर्णा चेत् तर्हि बह्वक्षरा स्यात् तदपि न । यतः स्वल्पाक्षरा । स्वल्पाण्यक्षराणि यस्यां सा । नन्वर्थपूर्णा स्वल्पाक्षरा या श्रुतिस्तस्या अर्थावबोधः कस्यापि न स्यात् । अर्थावबोधं विना श्रुत्युक्तकर्माचरणं कथं स्यात् अत एवाह । तदंशकृतैस्तस्य परमेश्वरस्य येंऽशा रावणाद्यास्तैः कृता ये उपाया भाष्यादयस्तैर्व्यक्तीकृता प्रकटीकृता रावणभाष्याद्यवलोकनेन तदुक्तकर्माचरणं सम्यगेव स्याद् इति विष्णुपक्षे । अथ पितृपक्षे । केशवस्य पितुर्वाक् ग्रहकौतुकादिग्रन्थरूपा जयतीति । तामेव विशेषण द्वारा स्तौति । श्रुतिः श्रुतिसमाना । यथा वेदोक्तं कर्म कार्यमेव सत्यत्वात् तथेयं केशववागपि । ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रादीनां प्रबोधं ज्ञानं जनयतीति तथा । किं कृत्वा । तस्यां केशववाचि सूक्तानि यानि ग्रहसाधनादीनि कर्माणि तैश्चित्तं मनः संशोध्य । गहनार्थेन पूर्णा स्वल्पाक्षरा च तदंशास्तच्छिष्यास्तैः कृताः ये उपायास्टीकाद्यास्तैः प्रकटीकृता ॥ १

चन्द्रिका—वेद के पक्ष में-वेदोक्त यज्ञानुष्ठानादि कार्यों के आचरण से मन को शुद्धकर, पर ब्रह्म के ज्ञान को उत्पन्न करानेवाली स्वल्पाक्षरा होते हुए भी गूढार्थों से युक्त सायण यास्कादि द्वारा किये गये भाष्यादि रूपी उपायों से स्पष्ट की गई केशव (विष्णु) की श्रुतिस्वरूप वाणी सर्वोत्कृष्ट है ।

(ग्रहलाघव के पक्ष मे)—उस (केशव दैवज्ञ) के द्वारा बताये हुए ग्रहकरणो के अभ्यास से मन को निर्मल कर ज्योतिष्पिण्डों (ग्रहनक्षत्रों) के ज्ञान को उत्पन्न कराने वाली संक्षिप्त किन्तु गूढ़ अर्थों वाली उनके पुत्रों-

शिष्यों द्वारा की गई टीका रूपी उपायों से स्पष्ट केशवदैवज्ञ की श्रुतिरूप वाणी सर्वोत्कृष्ट है। १

परिभग्नसमौर्विकेशचापं
दृढगुणहारलसत्सुवृत्ताबाहुः।
सुफलप्रदमात्तनृप्रभं तत्
स्मर रामं करणं च विष्णुरूपम्॥ २

मल्लारिः—अथ यथार्थभक्त्या भवतै रामस्मरणं कर्त्तव्यं गणैकरपि करण-स्मरणं कर्तव्यमित्यादि विषमवृत्तेनाह॥ हे शिष्य विष्णुरूपं स्मर। व्यापन-शीलो विष्णुः। तस्य भगवतोरूपमागमोक्तं चतुर्भुजादि स्मर मनसि धेहि। ननु व्यापकस्य निराकारस्य परब्रह्मणो रूपमेव नास्ति कस्य स्मरणं कर्त्तव्यमिति। यदुक्तं श्रीमद्भागवते—

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः[1] इत्यादि। एवं सन्देहं केचिदापादयन्ति। अत्रोच्यते। प्रकृतेः परेण निराकारेणेदं विश्वं स्वमायया सृष्टम्। या या सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका। ते गुणाः परब्रह्मणि न गुणातीतत्वात्। अत इयं सृष्ट्यादि माया केवलं भगवत् प्रयुक्तैव परे भगवति नास्त्येव। अत इदं आब्रह्मादि पिपीलिकान्तं सकलं त्वसत्यं सगुणत्वात्। अत इदं वेदोक्तमखिलं कर्मकाण्डसत्यम्। यतो यद्यत् कर्म तत् तत् प्राणिसाध्यं प्राणिनस्तु मायारूपिणोऽसत्याः। ननु एकेन वेदेन यदुक्तं कर्मकाण्डं तदसत्यम्। ज्ञानकाण्डमुपनिषद्भागाख्यं सत्यम्। एवं कथं स्यात्। उभयोः सत्यत्वमसत्यत्वं वा वक्तव्यम्। सत्यम्। असत्येनैव कर्मकाण्डेन कल्पितभगवद्रूपादि सेवनेन सत्यस्य व्यापकस्य परब्रह्मणो ज्ञानं भवति यथा मिथ्याभूते प्रतिबिम्बे सत्य-बिम्बानुमापकत्वम्। एवं भगवद्रूपमसत्यमपि सत्यमेव कल्पितम्। यथा बालानां प्रथममक्षरज्ञानार्थमोङ्कारशिक्षायां वर्तुलपाषाणादि स्थाप्यते। तद्वन्मायावेष्टित-लोकानां सत्यप्राप्त्यर्थं भगवद्रूपं दारुपाषाणमृदादि जनितं चतुर्भुजद्विभुजैव दन्तादि कल्प्यते तदपि युक्तम्। उक्तं च योगवासिष्ठे—

अक्षरावगमलब्धये यथा स्थूलवर्तुलदृषत्परिग्रहः।
शुद्धबुद्धपरिलब्धये तथा दारुमृन्मयशिलामयार्चनम्॥ इति

तदेव विशेषणद्वारेण विशिनष्टि। परिभग्नं कृतशकलं मौर्विकया जीवया सह ईशस्य शंकरस्य चापं धनुर्येन तत् तथा। जनकेन राज्ञा स्वगृहे शङ्करधनु-

१. भाग. पु. १०.२.३६।

मल्लारिः—अथ पूर्वकृतग्रन्थेभ्योऽस्य वैशिष्ट्यं द्योतयन् तदारम्भप्रयोजनं च प्रदर्शयन्नाह। यतः प्रयोजनादिकथनं विना ग्रन्थपठनाद्यौ प्रवृत्तिर्न स्यात्। उक्तं च—

सिद्धिः श्रोतृप्रवृत्तीनां सम्बन्धकथनाद्यतः।
तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु सम्बन्धः पूर्वमुच्यते॥
किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु केनचित्।
यदि न प्रोच्यते तस्मै फलशून्यं तु तद्भवेत्॥
सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यत इति॥

इति वृद्धोपदेशं मत्वा वदति।

अहं गणेशस्तथाऽपि ग्रहप्रकरणं ग्रहा ग्रहसम्बन्धीनि ग्रहणोदयास्तादीनि कर्माणि प्रक्रियन्ते साध्यन्ते यस्मिन्निति तत् कर्त्तुमुद्यत उदयं प्राप्तोऽस्मि। यत्र कल्पादेर्ग्रहानयनं स सिद्धान्तः। यत्र युगादेर्ग्रहानयनं तत् तन्त्रम्। यत्र शकाद् ग्रहानयनं तत् करणम्। ग्रहप्रकरणमित्यनेन शकाद्ग्रहानयनं करोमीति सूचितम्। तथापि कथं यद्यपि उरवो महान्तो धीरा गर्गाद्या ऋषयो भास्कराचार्याद्याचार्याश्च करणानि अकार्षुश्चक्रुः परं तेषु ज्यकाधनुरपास्य जीवाधनुषी त्यक्त्वा ग्रहादिसिद्धिर्यस्मान्न भवति अस्माद्धेतोरिदं मया क्रियते। किं विशिष्टम्। ज्या जीवा। चापं धनुः एतत्कर्मभ्यां रहितं सुतरां लघुप्रकारं स्फुटं स्पष्टार्थम्॥ ३

चन्द्रिका— यद्यपि (प्राचीन) महर्षियों एवं आचार्यों ने बहुत से करण ग्रन्थों की रचना की है (परन्तु) उनकी पद्धति से जीवा चाप आदि को निकाल देने से कार्य सिद्धि नहीं होती। (अतः) जीवा चाप आदि क्रियाओं से रहित सुन्दर एवं सरल विधि से स्पष्ट ग्रहप्रकरण (ग्रहसाधन,उदयास्तादि) की रचना के लिए उद्यत हूँ। ३

अहर्गणसाधनम्—

द्व्यब्धीन्द्रोनितशकईशहृत् फलं स्या-
च्चक्राख्यं रविहतशेषकं तु युक्तम्।
चैत्राद्यैः पृथगमुतः सदृग्घ्नचक्राद्-
दिग्युक्तादमरफलाधिमासयुक्तम्॥ ४

खत्रिघ्नं गततिथियुङ्निरग्रचक्रा-
ङ्गांशाढ्यं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धैः-

रानीयैवं प्रतिज्ञा कृता य एतद्धनुः सज्यं करिष्यति तस्मै जानकीं कन्यां दास्यामीति। एवं भगवता रामेण तत् सज्जीकृत्य शकलीकृतमिति रामायणादौ प्रसिद्धम्। दृढा गुणा रज्जवो यस्मिन् स चासौ हारश्च तेन लसत् शोभमानम्। सुतरां वृत्तौ वर्त्तुलौ बाहू यस्य तत् तथा। सुष्ठु फलं मोक्षादि तत् प्रकर्षेण ददातीति तथा। आत्ताऽङ्गी कृता नुर्मनुष्यस्य प्रभा येन तत् तथा। मनुष्यदेहधारीत्यर्थः॥

अथ करणपक्षे—हे गणक करणं स्मर। तदेव विशेषणद्वारा स्तौति ईशं ग्रहकर्त्तव्यतायां समर्थं यच्चापं मौर्विकया सह परिभग्नं यस्मिन् तत्। अस्मिन् करणे धनुर्ज्ये न कृते इत्यर्थः। दृढा अपवर्तिता ये गुणा हाराश्च तैर्लसत्। सुष्ठु वृत्ताबाहू यस्मिन् तत्। अत्र ग्रन्थे वृत्तं साधितमस्ति तत् तु चन्द्रमन्दकेन्द्रं, बाहुभुजः प्रसिद्धः। सुफलं ग्रहणादि ज्ञानरूपं फलं प्रददाति ~~तथा~~ आत्ता नुः शंकोः प्रभा छाया यस्मिन् तत् तथा। अत्र शंकुच्छायासाधनमपि कृतमस्तीत्यर्थः। रामं मनोरमं नाना छन्दोभिः॥ २

चन्द्रिका—(हे गणक!) विष्णुरूप राम को तथा करण* को स्मरण करो। (राम के पक्ष में)—मौर्वी (प्रत्यञ्चा) के साथ शंकर की धनुष को भङ्ग करने वाले दृढ़ सूत्र से निर्मित माला से सुशोभित सुन्दर गोल भुजाओं से युक्त सुन्दर मोक्ष आदि फलों को देने वाले मानव रूप धारी उस विष्णु स्वरूप राम का स्मरण करो।

(करण पक्ष में)—जीवा चाप आदि उच्च गणित को जहाँ भङ्ग (निरस्त) कर दिया गया है तथा जो अपवर्त्तन-गुण-भाज्य, सुन्दर छन्द एवं भुज-कोटि आदि से सुशोभित (युक्त) है, उस सुन्दर फल (मन्द फल, शीघ्र फल आदि) को देने वाली शंकुच्छायादि (ज्ञान) से युक्त विष्णु सदृश करण पद्धति का स्मरण करो। २

प्रयोजनम्—

यद्यप्यकार्षुरुरवः करणानि धीरा-
स्तेषु ज्यकाधनुरपास्य न सिद्धिरस्मात्।
ज्याचापकर्मरहितं सुलघुप्रकारं
कर्तुं ग्रहप्रकरणं स्फुटमुद्यतोऽस्मि॥ ३

---

* यहाँ करण शब्द का अभिप्राय करण पद्धति से है। प्रायोगिक एवं इष्ट शकारम्भ से गणना करने वाले सिद्धान्त ज्योतिष को 'करण' कहा गया है।

ऊनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद्वै
वारः स्याच्छरहतचक्रयुग्गणोऽब्जात् ॥ ५

मल्लारिः—अथ प्रकृतं ग्रहाणां साधनं तदर्थमहर्गणं वृत्तद्वयेन साधयति। द्व्यब्धीन्द्रोनितेति। शको वर्तमानः शालिवाहनशकयातवर्षगणः। द्व्यब्धीन्द्रोनितः। द्वौ अब्धयश्चत्वारः इन्द्राश्चतुर्दश तैर्द्विचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतैः १४४२ ऊनितो वर्जितः सन् ग्रन्थारम्भमारभ्येष्टकालपर्यन्तं वर्षसमूहः स्यात्। स ईशैरेकादशभिर्हृद्‍भक्तः एकस्थं यत् फलं तच्चक्राख्यं चक्रसंज्ञम्। रविहतशेषकं रविभिर्द्वादशभिः १२ गुणितं यच्छेषकं तच्चैत्राद्यैश्चैत्रमारभ्येष्टकालपर्यन्तं गत मासैर्युक्तं तत् पृथक् स्थाप्यम्। अमुतः पृथक्स्थात् सदृग्घ्नचक्रात्। दृग्भ्यां हन्यते तत् दृग्घ्नम्। एवं भूतं यच्चक्रं तेन सहितादिति। ततो दिग्भिः १०र्युतात्। अमरैस्त्रयस्त्रिंशदिर्भक्तात् यत् फलं तेऽधिमासास्तैस्तत्पृथक्स्थं युक्तं स मासगणः स्यात् ततस्तत् खत्रिघ्नं त्रिंशद्-३० गुणं सत् शुद्धप्रतिपदमारभ्य यावत्य इष्टकालपर्यन्तं तिथयो गतास्ताभिर्युक् युक्तं कार्यं ततस्तदेव निरग्रचक्रांगांशाढ्यं। निरग्रो निःशेषो नामैकस्थो यश्चक्रस्यांगांशः षडंषस्तेनाढ्यं युक्तं तत् पृथक् स्थाप्यम्। अमुतः पृथक्स्थात् अब्धिषट्कलब्धैः। अब्धयश्चत्वारः षट्कं षट्। एभिश्चतुष्षष्टिमितैर्भक्तात् ये लब्धा ऊनाहाः क्षयदिवसास्तैः पृथक्स्थं वियुतं हीनमहर्गणोऽह्नां दिवसानां सावनानां गणः समूहो भवेत्। सोऽहर्गणः शरैः पञ्चभिर्हतं गुणितं यच्चक्रं तेन युक् युक्तः सप्ततष्टो यच्छेषं तन्मितोऽब्जात् चन्द्रमारभ्य गतस्तद्दिनजो वारःस्यात् चेन्न तर्हि सोऽहर्गणो वारार्थे सैको निरेको वा कर्त्तव्यः। उक्तञ्च सिद्धान्तशिरोमणौ[1]।

'अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत् सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वदिति ॥

अत्रोपपत्तिः—अत्र ग्रन्थारम्भे द्विचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतमितः १४४२ शक आसीत् तच्छकमारभ्य ग्रहानयनार्थमनेन शकेनेष्टशक ऊनीकृतो गतवर्षगणः सौरो जातः। यत उक्तम्—

''वर्षायनर्त्तुयुगपूर्वकमत्रसौरादिति''[2]

अतस्तेषां वर्षाणां मासीकरणार्थमनुपातः—यद्येकस्मिन् वर्षे द्वादश सौरमासाः भवन्ति तदेष्टसौरवर्षैः किमिति वर्षाणां द्वादशगुणो रूपं हरः तस्याविकृतत्वान्नाशः। अत्र केचिन्मासानां चान्द्रत्वभ्रममारोप्य 'द्वादशमासाः

१. सि. शि. म. अ १ (अ. नि.)
२. सि. शि. म. अ. ३१ (का. मा.)

संवत्सरः' इति श्रुतेर्वैयधिकरण्यमापादयन्ते तदसत्। अत्र मासाः सौरा एव चान्द्रमासानां वर्षमध्ये सावयवत्वमस्त्यतस्ते न पठिताः सौरास्तु सूर्यद्वादशराशिभोगेन द्वादशैव भवन्ति। अतः श्रुतिरियं समीचीना। एवं सत्याचार्येण बहुषु वर्षेष्वहर्गणबाहुल्यं स्यादतो लाघवार्थं शिष्यक्लेशभयार्थं च प्रथमं वर्षाणि यानि तान्येवैकादशतष्टानि कृतानि यल्लब्धं तस्य चक्रसंज्ञा कृता यच्छेषं तद् द्वादशगुणितं यन्मासाः कृतास्ते सौरमासाः। चक्रादिमारभ्येष्टशकचैत्रादिपर्यन्तं जाताः। ततो यन्मासीयोऽहर्गणः साध्यते चैत्रादिमारभ्य तन्मासावधि ये यातमासास्तद्युक्तास्तन्मासावधि स्युरिति। अत्र क्रियावैषम्यं गणितदुष्टत्वं च दृश्यते। यतो वर्षाणि द्वादशगुणितानि सौरमासाश्चैत्रादि यातमासाश्चान्द्राः। अन्यजात्योर्योगसम्भवः। अत्र प्रथमं सौरमासेभ्योऽधिमासानानीय सौरेषु संयोज्य चान्द्रा कार्याश्चैत्रादिचान्द्रा योज्याः अत्राचार्येण पूर्वभिन्नजात्योर्योगः कृतः। तत्राधिकशेषकमधिकं जातमतोऽधिमासानयने शेषं त्यक्तमधिकत्वात्। तद्यथा चैत्रादिचान्द्राणां सौरीकरणार्थमधिशेषं न्यूनीकर्त्तव्यं यत एकस्मिन् वर्षे सौरदिनेभ्यश्चान्द्रदिनानि एकादशाधिकानि दृश्यन्ते। एवमधिमासाः सावयवा योज्याः अनुपातस्य सावयवत्वात् तत्राधिशेषं योज्यमत्रोनं तुल्ययोर्धनर्णयोर्नाशोऽतः सौरमासेभ्योऽधिमासानयनम्। यदि कल्पसौरमासैः ५१८४००००००० कल्पाधिमासाः १५९३३००००० लभ्यन्ते तदेष्टसौरमासैः किं? इति—

यथा—

$$\frac{\text{क. अ. मा. १५९३३००००० × इ. सौ मा.}}{\text{क सौ. मा. ५१८४०००००००}} = \text{इ. अ. मा.}$$

अत्र कल्पाधिमासैः कल्पसौरमासेषु भक्तेषु लब्धम् ३२।१६।४ एभिर्मासैरेकोऽधिमासः उक्तं च ब्राह्मसिद्धान्ते—

द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा।
घटिकानां चतुष्केण पतति ह्यधिमासकः॥ इति

ततोऽनुपातः — यद्येभिर्मासैः (३२।१६।४) रेकोऽधिमासस्तदेष्टैः किम्। अत्राचार्येण सुखार्थं हरस्थाने त्रयस्त्रिंशदेवगृहीता। एवं मासेभ्योऽमरफलाधिमासयुक्तमित्युक्तम्।

अत्र ग्रन्थारम्भे दशभिर्मासैरधिमासोऽभूदतो दिग्युक्तादिति इदं स्थूलं हरस्य स्थूलत्वात्। तदनन्तरं साध्यते। एकं चक्रमेकादशवर्षात्मकं तद्द्वादशगुणितं जाता मासाः १३२ तेभ्यः कल्पाद्यनुपातेन जाताः ४।२ त्रयस्त्रिंशद् भक्तेषु जाताः ४। अत्रान्तरमेकचक्रे द्विमासतुल्यं ततोऽनुपातः। यद्येकस्मिन् चक्रे द्विमासतुल्यमन्तरं

तदेष्टचक्रैः किमतः सदृग्घ्नचक्रादिति । एवमधिमासयुक्ताः सौराश्चान्द्रमासगणो जातः । ततो दिनीकरणार्थमनुपातः यद्येकमासस्य त्रिंशद्दिनानि तदेष्टमासैः किमतो मासास्त्रिंशद्गुणाः । अत्र रूपहरस्याविकृतत्वान्नाशः । एवं जाताश्चान्द्रदिवसास्ते तन्मासशुक्लप्रतिपदादिपर्यन्तमभीष्टतिथिकरणार्थं गतितिथियुता इति ततोऽनुपातः । यदि कल्पचान्द्रैः (१६०२९९९०००००००) कल्पदिनक्षया (२५०८२५४००००) लभ्यन्ते तदेष्टचान्द्रैः किमिति ।

$$\frac{\text{क. क्ष दि.} \times \text{इ. चा. दि.}}{\text{कल्प चा. दि.}} = \text{इ. क्ष. दि.}$$

कल्पदिनक्षयैः कल्पचान्द्रेषु भक्तेषु लब्धम् ६३।५४।३२। यद्येभिर्दिनैरेको दिनक्षयस्तदेष्टैः किमिति । अत्राचार्येण हरस्थाने चतुष्षष्टिरेव धृता । एवं चतुष्षष्टिभक्ताश्चान्द्रा दिनक्षयाः स्युरिति । अत्रान्तरज्ञाने चक्रषट्के वर्षाणि ६६ एषां दिनानि २४४८६ एकत्र६३।५४।३२ एभिरेकत्र च ६४एभिर्भक्तं लब्धे फले ३८३। ३८२ अवयवस्य त्यागः। फलान्तरम् १। तेनानुपातः—यदि षड्भिश्चक्रैरेकदिनतुल्यमन्तरं तदेष्टचक्रैः किमित्यतो निरग्रचक्राङ्गांशयुक् कार्यमित्युपपन्नम् । एवं दिनक्षयाश्चान्द्रेषु ऊनाकार्या यतो वर्षमध्ये चान्द्रदिवसेभ्यः सावनदिनानि पञ्चदिनाल्पकानि दृश्यन्तेऽत उक्तमूनाहैर्वियुतमिति । अत्र दिनक्षयाः सावयवा ग्राह्यास्ते न गृहीताः । यतः सावयवदिनक्षयोनचान्द्रेषु कृतेष्वहर्गणस्तिथ्यन्तकालीनः स्यात् गततिथियुक्तत्वात् ग्रहाः सूर्योदयिका कर्त्तव्याः एवं तिथ्यन्तसूर्योदययोर्मध्ये दिनक्षयशेषमेव तत् तेषु योज्यम् । यतस्तिथ्यन्तादग्रे सूर्योदयः । पूर्वं वियोज्यमधुना योज्यं तुल्यत्वात् तयोर्नाशः ।। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

तिथ्यन्तसूर्योदययोस्तु मध्ये सदैव तिष्ठत्यवमावशेषम् ।
त्यक्तेन तेनोदयकालिकः स्यात् तिथ्यन्तकाले द्युगणोऽन्यथाऽतः ।।[1] इति

एवं सावनोऽहर्गणो जातः सप्ततष्टः सन्नब्जाद्वारः स्यात् यतो ग्रन्थादौ सोमवार आसीत् । अत्र चक्रदिनानि ४०१६ सप्ततष्टानि शेषम् ५ । तत्रानुपातः यद्येकचक्रे पञ्चवारा अन्तरं तदेष्टचक्रैः किमित्यतः शरहतचक्रयुगिति ।। ४-५

चन्द्रिका—अभीष्ट शकाब्द की संख्या में १४४२ घटाकर शेष में ११ का भाग देने से प्राप्त लब्धि चक्र कहलाती है । शेष को १२ से गुणा कर (गुणनफल में) चैत्रादि गतमास संख्या को जोड़कर दो स्थानों में रखें, एक स्थान में द्विगुणितचक्र और १० जोड़कर ३३ का भाग देकर लब्धितुल्य अधिमास द्वितीय स्थान वाली संख्या में जोड़कर (योगफल को) ३० से गुणा कर (गुणनफल में) वर्तमान मास की शुक्ल प्रतिपदा से गततिथि

---

१. सि शि. गो. म. १८

संख्या जोड़कर उसमें चक्र का षष्ठांश (चक्र में ६ का भाग देकर केवल लब्धि) युक्तकर पुन: दो स्थानों में रखें। एक स्थान में ६४ का भाग देकर लब्धितुल्य क्षयदिन प्रथम स्थानवाली संख्या में घटाने से शेष अभीष्ट सूर्योदयकालिक अहर्गण होगा।

दिन का ज्ञान करने के लिए चक्र को पाँच से गुणाकर गुणनफल को अहर्गण में जोड़कर सात से भाग देने पर शेष संख्या तुल्य चन्द्रादि गत वार होगा। (अर्थात् यदि ० शेष हो तो गत रवि वर्तमान सोम एवं १ शेष हो तो गत सोम वर्तमान मंगल आदि)। ४-५

विशेष—कदाचित् ऐसी भी स्थिति आ सकती है कि अहर्गण से वार निकालने पर अभीष्ट दिन से अगला या पिछला वार आ जाय इस अवस्था में अहर्गण में १ घटा लें अथवा १ जोड़ लें तो शुद्ध अहर्गण हो जायेगा।

उदाहरण—संवत् २०३१ शक १८९६ कार्तिक शुक्ल १५ शुक्रवार को अहर्गण साधन करना है।

शक १८९६-१४४२ = ४५४ शेष

४५४ ÷ ११ = $\frac{४५४}{११}$ = ११)४५४(४१
४४
१४
११
३

लब्धि ४१ = चक्र

शेष ३ × १२ = ३६

३६ + ७ गत मास = ४३

४३ को दो स्थानों में रखा एक स्थान में २ × चक्र + १० जोड़कर योगफल में ३३ का भाग दिया।

४१ × २ = ८२ + १० = ९२ + ४३ = १३५

३३)१३५(४ अधिमास
१३२
३

लब्धि ४ अधिमास को द्वितीय स्थानस्थित ४३ में जोड़ा।

४३
+ ४ अधिमास
४७
× ३० (खत्रिघ्नं)

१४१०
+ १४ गततिथि
१४२४

६)४१(६ स्वल्पान्तरतः ७
  ३६
  ५

चक्र ४१ में ६ का भाग देकर लब्धि को जोड़ा।

१४२४
+ ७
१४३१

एक स्थान में १४३१ योगफल में ६४ का भाग देकर लब्धि क्षयदिन को द्वितीय स्थान में १४३१ से घटाया

६४)१४३१(२२ क्षयदिन
 १२८
 १५१
 १२८
  २३

१४३१
−२२ — क्षयदिन
१४०९ = अहर्गण

वार ज्ञान हेतु - चक्र ४१ को ५ से गुणा कर गुणनफल को अहर्गण १४०९ में जोड़कर ७ से भाग दिया—४१ × ५ = २०५

अहर्गण १४०९ + २०५ = १६१४

७)१६१४(२३०
 १४
  २१
  २१
  ×   ४ शेष

अतः चन्द्रादि गणना से गत गुरुवार वर्तमान शुक्रवार वार गणना शुद्ध होने से अहर्गण १४०९ शुद्ध है।

ग्रहाणां ध्रुवाः—

खविधुतानभवास्तरणेर्ध्रुवः खमनला रसवार्धय ईश्वराः।
सितरुचो भमुखोऽथ खगा यमौ शरकृता गदितो विधितुङ्गजः ॥ ६ ॥

शैला द्वौ खशरा अगोः क्षितिभुवो भूतत्त्वदन्ता विदः।
केन्द्रस्याब्धिगुणोडवः सुरगुरोः खं षड्यमा वस्विलाः॥
द्राक्केन्द्रस्य भृगोः कुशक्रयमला राश्यादिकोऽथो शनेः।
शैलाः पञ्चभुवो यमाब्धय इमेऽथ क्षेपकः कथ्यते॥ ७॥

मल्लारिः— एवमहर्गणं प्रसाध्येदानीं श्लोकद्वयेन ध्रुवानाह। खविध्विति। तरणेः सूर्यस्य भमुखः। भानि राशयो मुखे यस्य स तथा राश्याद्योऽयं ध्रुवः स्यात् अयं कः। खविधुतान्भवाः। खं शून्यम्०। विधुरेकः १ तान एकोन पञ्चाशत् ४९। भवा एकादश ११। सितरुचः सिता शुभ्रा रुग्दीप्तिर्यस्य तस्य चन्द्रस्य ध्रुवः। खं शून्यम्०। अनलास्त्रयः ३। रसवार्द्धयो रसाः षट् वार्धयश्चत्वारः एवं षट्-चत्वारिंशत् ४६। ईश्वरा एकादश ११ अत्र सर्वत्रांकानां वामतो गतिरिति न्यायः।

विधुतुङ्गजो विधोश्चन्द्रस्य यत् तुङ्गं मन्दोच्चं तस्य ध्रुवो गदित उक्तः। खगा ग्रहाः नव ९। यमौ द्वौ २। शरकृताः शराः पञ्च कृताश्चत्वार एवं पञ्च-चत्वारिंशत् ४५॥

शैला द्वाविति। अगो राहोर्ध्रुवः। शैलाः कुलाचलाः सप्त ७। द्वौ २ प्रसिद्धौ। खशरा खशून्यं, शराः पञ्च एवं पञ्चाशत् ५०। क्षितिभुवः क्षिते-र्भवतीति क्षितिभूस्तस्य मङ्गलस्यायं ध्रुवः। भूरेकः१ तत्त्वानि पञ्चविंशतिः २५। दन्ता द्वात्रिंशत् ३२। विदो बुधस्य केन्द्रस्यायं ध्रुवः। अब्धयश्चारः ४। गुणास्त्रयः ३। उडूनि नक्षत्राणि सप्तविंशतिः २७। सुराणां देवतानां गुरोर्बृह-स्पतेर्ध्रुवः। खं शून्यम्०। षड्यमाः षट्प्रसिद्धा यमौ द्वौ एवं षडविंशतिः २६। वस्विला वसवोऽष्टौ इला पृथ्वी एका एवमष्टादश १८। भृगोः शुक्रस्य यद्द्रा-क्केन्द्रं शीघ्रकेन्द्रं तस्य ध्रुवः। कुरेकः १। शक्राश्चतुर्दश १४। यमलौ द्वौ २। शनेरपि राश्याद्योऽयं ध्रुवः। शैलाः सप्त ७। पञ्चभुवः पञ्चदश १५। यमाब्धयो यमौ द्वौ अब्धयश्चत्वार एवं द्विचत्वारिंशत् ४२। एते ग्रहध्रुवा राश्याद्याः॥ ६-७

अत्रोपपत्तिः—आत्राचार्येण एकादशतष्टानि वर्षाणि कृत्वाऽहर्गणानयनं कृतम्। एवं योऽहर्गणः स एकादश वर्षमध्यस्थ एव। तदुत्पन्ना ये ग्रहास्ते एकादशवर्षमध्य एव भवन्ति। अतो यावन्ति चक्राणि युक्तानि तेषां ग्रहानानीय एतेषु प्रक्षिप्य ग्रन्थशकादिमारभ्य ग्रहाः स्युरिति। एवमाचार्येण एकमितचक्रा-देकादशवर्षात्मकाद् ग्रहाः साधिताः। ते यथा कल्पसौरवर्षैः कल्पग्रहभगणास्त-दैकादशवर्षैः कतीती अत्रागतानां भगणानां प्रयोजनाभावाद्राश्याद्या एव गृही-

तास्तेषां ध्रुवसंज्ञा कृता स्थिरत्वात् । अथवैकादशवर्षाणामहर्गणं प्रसाध्य पूर्वकरणोक्तरीत्या ग्रहाः साधितास्ते ग्रहेषु योज्याः अत्राचार्येण द्वादशराशिशुद्धान् कृत्वा ध्रुवसंज्ञा कृता । अतो दिनगणागतग्रहेषु ध्रुवा वियोज्या इत्यग्रे उक्तमस्ति चक्रशुद्धत्ववात् । अत्र बालावबोधार्थं धूलीकर्मणा एकादशवर्षाणामयमहर्गणः ४०१६ । अतोऽयमहर्गणो 'विश्वगुणस्त्रिखांकैर्भक्त' इत्यादिना जातो मध्यमोरविः ११। २८।१०।४९ । अयं द्वादशशुद्धो जातो रविध्रुवः ०। १। ४९ ।११। एवं सर्वेषां ग्रहाणां ध्रुवा उत्पाद्या ।।७

चन्द्रिका—सूर्य का ध्रुवा ख=०, विधु = १, तान=४९ भव=११ । चन्द्रमा का ख=०, अनल = ३, रसवार्धय = ४६, ईश्वर=११ । चन्द्रोच्च का भमुखा = राश्यादि खग=९, यम = २, शरकृता=४५, राहुका शैल=७, द्वौ=२ खशरा=५०, । भौमका भू = १, तत्त्व = २५, दन्ता =३२ । बुध केन्द्र का अब्धि=४, गुण = ३, उडु = २७ । बृहस्पति का ख= ०, षड्यमा=२६, वस्विला = १८ । शुक्रशीघ्रकेन्द्र का कु = १, शक्र=१४, यमला = २ शनि का शैल=७, पञ्चभुव=१५, यमाब्धय=४२, ये राश्यादि ध्रुव कहे गये हैं । इसके अनन्तर क्षेपक कह रहा हूँ । ६,७

सूर्यादि ग्रहों के राश्यादि ध्रुवा

सूर्य	०।१।४९।११	बुध केन्द्र	४।३।२७।०
चन्द्र	०।३।४६।११	गुरु	०।२६।१८।०
चन्द्रोच्च	९।२।४५।०	शुक्र केन्द्र	१।१४।२।०
राहु	७।२।५०।०	शनि	७।१५।४२।०
भौम	१।२५।३२।०		

क्षेपका :—

रुद्रा गोब्जाः कुवेदास्तपन इह विधौ शूलिनो गोभुवः षट् ।
तुङ्गेऽक्षात्यष्टि देवास्तमासि खमुडवोऽष्टाग्नयोऽथो महीजे ।
दिक्शैलाष्टौ ज्ञकेन्द्रे विभकलनवभं पूजितेऽद्रचश्विभूपाः ।
शौक्रे केन्द्रे गृहाद्योऽद्रिनखनवशनौ गोतिथिस्वर्गतुल्यः ॥८

मल्लारिः—एवं ध्रुवानुक्त्वा क्षेपकमाह । अथेति । शब्दोऽनन्तरवाची ध्रुवकथनानन्तरं क्षेपकः कथ्यत इत्यर्थ । रुद्रा इति । तपने सूर्ये 'तपनः सविता रवि'रित्यभिधानात् । गृहाद्यो गृहाणि राशय आदौ यस्येति राश्याद्यः क्षेपः स्यात् रुद्राएकादश ११ । गोब्जा गावो नव अब्जश्चन्द्र एक एवमेकोनविंशतिः १९ ।

कुवेदाः कुरेकः वेदाश्चत्वारः एवमेकचत्वारिंशत् ४१ इति। विधौ चन्द्रे शूलिन एकादश ११। गोभुव एकोनविंशतिः १९। षट् ६ प्रसिद्धाः। तुङ्गे चन्द्रमन्दोच्चेऽक्षाः पञ्च ५। अत्यष्टयः सप्तदश १७। देवास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। तमसि राहौ खं शून्यम्। उडवः सप्तविंशतिः २७। अष्टाग्नयोष्टात्रिंशत् ३८। अथ राहुक्षेपकथनानन्तरम् महीजे भौमे दिशो दश १०। शैलाः सप्त ७। अष्टौ ८ प्रसिद्धा। ज्ञकेन्द्रे बुधशीघ्रकेन्द्रे विभकलनवभं विगता भकलाः सप्तविंशतिकला यस्मात् एवं भूतं यन्नवभं राशिनवकं तेन राश्यष्टकं ८। एकोनत्रिंशद्भागाः २९ त्रयस्त्रिंशत् कलाः ३३ चेति। पूजिते गुरौ अद्रयः सप्त। अश्विनौ द्वौ २ भूपाः षोडश १६। शौक्रे शुक्रस्येदं तस्मिन् शुक्रकेन्द्रेऽद्रिनखनव। अद्रयः सप्त ७ नखा विंशतिः २०। नवप्रसिद्धाः ९। शनौ गोतिथिस्वर्गतुल्यः। गावो नव ९। तिथयः पञ्चदश १५। स्वर्गाः एकविंशतिः २१। एभिस्तुल्यः शनिक्षेपकः स्यात्। अत्र गुहाद्यमिति सर्वत्र सम्बध्यते॥ ८

अत्रोपपत्तिः —

येऽत्र ग्रहास्ते ग्रंथारम्भमारभ्य जाता अतो ग्रंथारम्भग्रहा अत्र योज्यास्ते कल्पादितः स्युरिति। तत्साधनं यथा। द्वयब्धीन्द्रतुल्यं १४४२ शकं प्रकल्प्य चैत्रशुक्लप्रतिपदि सूर्योदयिका मध्यमा ग्रहाः यस्माद्यस्मात् पक्षाद्ये घटन्ते तत्तत्क्षेप्यस्ते ते साधितास्तेषां क्षेपसंज्ञा कृता। यतः क्षिप्यते असौ क्षेपः। अस्य ग्रहेषु क्षेप्यत्वात् क्षेपत्वम्॥ ८

चन्द्रिका—तपन (सूर्य) का राश्यादि क्षेपक रुद्र=११, गोब्जा=१९, कुवेदा ४१। चन्द्रमा का शूलिन्=११, गोभुव=१९, षट्=६। चन्द्रोच्च का अक्ष=५, अत्यष्टि=१७, देवाः=३३। राहुका ख=०, उडव=२७, अष्टाग्नय=३८। महीज, (भौम) का दिक्=१०, शैला=७, अष्टौ=८। बुधकेन्द्र का विभकनलवभ=२७ कला रहित ९ राशि अर्थात् ९।०।०—०।०।२७=८ २९।३३। पूजित (गुरु) का अद्रि=७, अश्वि=२ भूप=१६, शुक्रकेन्द्रका राश्यादि अद्रि=७, नख=२०, नव=९, शनिका क्षेपक गो=९, तिथि=१५, स्वर्ग=२१ केतुल्य होता है। ८

सूर्यादि ग्रहों के राश्यादि क्षेपक —

सूर्य	११।१९।४१।०	राहु	०।२७।३८।०
चन्द्रमा	११।१९।६।०	भौम	१०।७।८।०
चन्द्रोच्च	५।१७।३३।०	बुध केन्द्र	८।२९।३३।०

गुरु ७।२।१६।० शनि ९।१५।२१।०
शुक्र केन्द्र ७।२०।९।०

अहर्गणोत्पन्नग्रहे संस्कारविधिः—

दिनगणभवखेटश्चक्रनिघ्नध्रुवोनो
दिवसकृदुदये स्वक्षेपयुङ् मध्यमः स्यात् ।
निज-निजपुररेखान्तः स्थिताद् योजनौघाद् ।
रसलवमितलिप्ताः स्वर्णमिन्दौ परे प्राक् ॥ ९

मल्लारिः एवं क्षेपानुक्त्वा क्रमप्राप्तादहर्गणात् मध्यमग्रहानयनमाह । दिनगणेति । दिनगणादहर्गणोद्भव उत्पन्नो वक्ष्यमाणरीत्याऽहर्गणात् साधितो ग्रहश्चक्रेण निघ्नो गुणितो यो ध्रुवस्तेन ऊनः स्वस्य क्षेपो य उक्तस्तेन युक्तो दिवसकृतः सूर्यस्य उदये मध्यमः स्यात् । लङ्कायां मध्यमार्कोदयासन्नसमये मध्यमो ग्रहः स्याद् इत्यभिप्रायः ।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ —

दशशिरः पुरि मध्यमभास्करे क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यमः[1] ।

अयमुदयान्तरसंस्कृतः सन् लङ्कामध्यमार्कोदयकालिको भवति उदयान्तरं तु स्वल्पत्वादाचार्येण त्यक्तमतो न दोषः । तस्य स्वदेशीयकरणार्थं संस्कारमाह । निजनिजेति । निजं निजं स्वीयं स्वीयं यत् पुरं ग्रहकर्त्तुर्गणकस्य यन्नगरं तच्च रेखा च अनयोरन्तर्मध्ये स्थितो वर्तमानो यो योजनौघो योजनानां समूहः तस्माद्यो रसैः षड्भिर्लवस्तेन मिता या लिप्ता यत् कलादि द्विष्ठं फलं तदिन्दौ चन्द्रे स्वं धनमृणं हीनं च कार्यम् । कस्मिन् सति परे 'प्राक् रेखातः स्वदेशे सति पश्चिमायां धनं पूर्वस्यामृणमित्यर्थः ॥

उपपत्तिः—अत्र पूर्वार्धस्योपपत्तिः पूर्वमेवोक्ताऽस्ति । उत्तरार्धोपपत्तिर्यथा । यः कृतो लङ्कायां मध्यमो ग्रहः स स्वदेशीयः कर्त्तव्योऽतो देशान्तरं देयम् । तद्देशान्तरं द्विविधम् । पूर्वापरं याम्योत्तरं च । याम्योत्तरं यत् तच्चरं तच्च रेखार्कोदयलङ्कार्कोदययोरन्तरं तदग्रेप्रतिपादयिष्यति पूर्वापरं रेखार्कोदयस्वपुरार्कोदयोरन्तरम् । रेखा मध्यरेखा भुव इतिशेषः ।

उक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ—

यल्लङ्कोज्जयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत् ।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः ॥[2] इति

---

१. सि. शि. ग. म. अ. ४ (ग्रहा०)
२. सि. शि. ग. म. अ. २ (भू० प०)

अत्र रेखार्कोदयात् स्वार्कोदय कदा भविष्यतीति ज्ञानार्थमुपायः। लङ्कायामुक्तः परमो भूपरिधिः सप्तारिनन्दाब्धितुल्यः ४९६७। मेरौ परिधेरभावः। मध्येऽनुपातः। स यथा लङ्कायामक्षज्याभावाल्लम्बज्या परमात्रिज्या तुल्या। अतो यदि त्रिज्या तुल्यया लम्बज्ययाऽयमुक्तो भूपरिधिस्त देष्टलम्बज्यया किमिति लम्बज्यायाः सर्वत्र त्रिज्यातोऽल्पत्वादुक्तात् सर्वत्रोन एव भूपरिधिः स्यात्। अतः सुखार्थमष्टचत्वारिंशच्छतमितो गृहीतः ४८००। ततोऽनुपातः यद्येभिः परिधियोजनैः ४८०० ग्रहो गतिकलाः क्रामति तदेष्टैः रेखा स्वदेशान्तरयोजनैः किमिति अत्रायं संस्कारश्चन्द्रस्यैव कृतः। अन्येषां गतेरल्पत्वान् न कृतः। स्वल्पान्तरत्वात् कर्मगौरवभयात् त्यक्तमतो न दोषाय।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

स्वल्पान्तरत्वादबहूपयोगात् प्रसिद्धभावाच्च बहुप्रयासात्।
ग्रन्थस्य तज्ज्ञै गुरुताभयेन यस्त्यज्यतेऽर्थो न स दूषणाय[1] ॥ इति ॥

अतो रेखा स्वदेशान्तरयोजनानां गतिः ७९० गुणः। परिधिः ४८०० हरः गुणहरौ गुणेनापवर्तितौ जातो हरः षट्। अत उक्तं निज निजेत्यादिः।

धनर्णोपपत्तिर्यथा—ये ग्रहास्ते मध्यरेखोदयजाः। मध्यरेखातः पूर्वदेशे रेखोदयात् पूर्वं सूर्योदयोऽत ऋणं क्रियते रेखायाः पश्चिमदेशे स्थितानां रेखोदयान्तरं स्वार्कोदयऽतो धनं क्रियते इत्युपपन्नम् ॥ ९

चन्द्रिका—चक्रगुणित (अपने-अपने) ध्रुवक को अहर्गणोत्पन्न ग्रह से घटाकर शेष में (अपने अपने) क्षेपक जोड़ने से सूर्योदय कालिक मध्यम ग्रह होते हैं।

अपने-अपने नगर के रेखान्तर योजन को ६ से भाग देकर लब्धि तुल्य कलादि फल को, स्वदेश रेखादेश से पश्चिम रहने पर मध्यमचन्द्र में जोड़ने तथा पूर्व होने पर घटाने से स्वदेशीय उदयकालिक मध्यमचन्द्र होता है। ९

विशेषः—किसी स्थान के देशान्तर योजन को जानना अभीष्ट हो तो मानचित्र से अभीष्ट स्थान का रेखांश (देशान्तर) ज्ञात कर रेखा देश से अभीष्ट रेखांश का अन्तर करलें फिर, ३६०° में भूपरिधियोजन तो अभीष्ट रेखांशान्तर में क्या ? इस अनुपात से देशान्तर योजन का ज्ञान हो जाएगा।

---

१. सि. शि. ग्र. त्र. छा. १६

भारतीय ज्योतिष में रेखादेश अर्थात ० देशान्तर उज्जैन कुरुक्षेत्र एवं सुमेरु को स्पर्श करने वाली रेखा को माना गया है। सारी ग्रहगणना लंका के आधार पर की गई है तथा देशान्तर आदि स्थानीय संस्कार उज्जैन से किये गये हैं। उज्जैन से किसी भी स्थान के देशान्तर योजन का ज्ञान अनुपात द्वारा किया जाता था। यथा ३६०° अंशों में भूपरिधियोजन तो देशान्तरांश में क्या ? लब्धि देशान्तर योजन।

प्राचीन मतानुसार भूपरिधिका मान ४९६७ योजन बतलाया गया है किन्तु प्रत्येक स्थान का देशान्तर ज्ञान सुगम नहीं है। अतः इस परिधि के आधार पर आधुनिक देशान्तर द्वारा अनुपात करने से शुद्ध फल नहीं प्राप्त होगा।

आधुनिक देशान्तरों के आधार पर उज्जैन के देशान्तर एवं अभीष्ट स्थान के देशान्तर का अन्तर ज्ञात कर आधुनिक भूपरिधि द्वारा अनुपात करने से सूक्ष्म एवं शुद्ध फल प्राप्त होगा।

आधुनिक मतानुसार पृथ्वी का भूमध्य रेखीय व्यास १२७५६ किलोमीटर तथा परिधि ४००९० किलोमीटर है।

ध्रुवीय व्यास १२७१३ कि० मी० तथा परिधि ३९९५५ कि० मी० है।

अतः अनुपात — $\frac{\text{भूपरिधि} \times \text{देशान्तरांश}}{३६०} = \text{देशान्तरयोजन}$

भूपरिधि=४००९० काशी और उज्जैन का रेखांशान्तर=७।१४

अतः $\frac{४००९० \times ७।१४}{३६०} = ८०५\cdot१$ देशान्तर

१·६ कि. मी. = १ मील
८ मी. = १ योजन

अतः

८०५·१ कि. मी.=५०३·१८ मील
५०३·१८ मील = ६२·९ योजन

उज्जैन और काशी का देशांतर ६२·९ योजन हुआ यह आधुनिक मान भास्कराचार्यादि प्राचीन आचार्यों के मान के आसन्न ही है। केवल १·१ योजन का अन्तर है।

इसीप्रकार किसी भी स्थानका देशान्तरयोजन ज्ञात किया जा सकता है।

रविबुधशुक्राणां साधनम्--

स्वखनगलवहीनो द्युव्रजोऽर्कज्ञशुक्राः
खतिथिहृतगणोनो लिप्तिकास्वंशकाद्याः ।
गणमनुहृतिरिन्दुः स्वाद्रिभूभागहीनः ।
खमनुहृतगणोनो लिप्तिकास्वंशपूर्वः ॥ १०

मल्लारिः—अथ सूर्यबुधशुक्रचन्द्रानेकवृत्तेन साधयति स्वखनगेति । स्वस्याहर्गणस्यैव खनगलवः सप्तत्यंशः । तेन हीनो द्युव्रजोऽहर्गणः स एवार्कज्ञशुक्रा सूर्यबुधशुक्रा भागाद्याः स्युस्तेषामयं संस्कारो लिप्तिकासु कलासु खतिथि हृतेन गणेन सार्धशतभक्ताहर्गणेन ऊन इति एतदुक्तं भवति अहर्गणः सप्तत्या ७० भाज्यः फलं भागा यच्छेषं तत् षष्ट्या ६० गुण्यं पुनः सप्तत्या ७० भाज्यं फलं कलाः पुनर्यच्छेषं तत् षष्टिगुणं सप्तति ७० भक्तं फलं विकलाः । ततोऽहर्गणः सार्धशतेन १५० भाज्या फलं कलाः शेषं षष्टिगुणं सार्धशत १५० भक्तं फलं विकलाः । तेन कलादिना तत्फलं हीनं सत् भागाद्या । मध्यमाःसूर्यबुधशुक्राः स्युरिति । अत्र विकलाः षष्टचा भाज्याः फलमूर्ध्वकलासु योज्यं कला अपि षष्टिभक्ताः फलं भागेषु योज्यं भागास्त्रिंशद्भक्ता फलं राशयः स्युः । ततस्तत्र चक्रहृतः स्वध्रुवको हीनः कार्यः क्षेपः संयोज्यः । ततस्तद् राशयो द्वादशभक्तः भगणाः स्युस्ते प्रयोजनाभावात् त्याज्याः । रविराह्वोभर्गणाः ग्रहणे पर्वेशानयनायोपयुक्ताः सन्त्यतस्ते स्थाप्या ।

अत्रोपपत्तिः—अत्र पूर्वगत्या ग्रहसाधनं कर्त्तव्यम् । तत्रपूर्वगतिज्ञानोपायो यथा पूर्वं ब्रह्मणा चैत्रादौ रविवासरे भचक्रं क्रान्तिमण्डलादिवृत्ताढ्यं प्रवहानिले पश्चिमगतौ क्षिप्तं तत्र ग्रहाः प्रवहानिलवशेन भचक्रं क्रामयित्वा भिन्नभिन्नया पूर्वगत्या स्वस्थानात् किंचित् किंचिच्चलिताः । एवं प्रत्यहं विलोक्यमाने ग्रहाणां पूर्वगतिर्भिन्ना-भिन्ना दृष्टा अत्र ग्रहानयने कश्चिदुपायो न दृश्यते प्रतिदिनं विलक्षणगतित्वात् । तत्रेत्थं ब्रह्मणा विरचितं गोलं चक्रविकलाङ्कितं कृत्वा प्रत्यहं ग्रहा वेधिताः । एवमद्यतनश्वस्तनयोरन्तरं ग्रहस्य गतिः । एवं ग्रहभगणभोगपर्यन्तं ग्रहणगतिरानीय तासु मध्ये या परमाधिका गतिर्या च परमाल्पा तयोर्योगार्धं मध्यगतिरेवाङ्गीकृता । सा दुःसाध्या सूक्ष्माणां विकलाकोट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात् । सा स्थूला जाता सैवाङ्गीकृता । एवं कियत्यपि काले जाते वसिष्ठादिर्विलोक्यमाने गतेरन्तरं दृष्टम् । एवमन्यैरपि । आर्यभटब्रह्मगुप्तभास्कराद्यै-

स्तस्यैव युक्त्या गतयो भिन्ना दृष्टास्ताभ्यो भगणा आपि साधितास्ते यथा । यद्येकदिनेनैतावती गतिस्तदा कल्पकुदिनैः किमिति एवं सिद्धान्ते ग्रहभगणाः भिन्नाभिन्नाः पाठपठितास्ते तत्कालमेव घटन्ते स्म । इदानीं महदन्तरिता दृश्यन्ते । उक्तं च वराहिसंहितायाम्—

उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिरिति ।

वसिष्ठसिद्धान्तेऽपि—

इत्थं माण्डव्य संक्षेपादुक्तं शास्त्रं मयोदितम् ।
विस्रस्तौ रविचन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे ॥

युगे युगे महति काले विस्रंसनं विस्रस्तिः शिथिलत्वमिति यावत् ।
उक्तञ्च सूर्यसिद्धान्ते[1]

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत् पूर्वं प्राह भास्करः ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥

ब्राह्मसिद्धान्तेऽपि—

ध्यानग्रहोपदेशाद् बीजं ज्ञात्वा सुदैवज्ञः ।
तत्संस्कृतग्रहेभ्यः कर्त्तव्यौ निर्णयादेशौ ॥ इति ॥

अमुनाऽऽचार्येण नलिकाबन्धेन ग्रहानावेध्य ग्रहान्तराणि लक्षितानि । तद्यथा सौरपक्षीयः सूर्यश्चन्द्रोच्चं च । नवकलान्यूनः सौरपक्षीयश्चन्द्रो घटते । अस्मिन् काले एते दृग्गोचराः । एवमग्रेऽपि भविष्यन्महागणकैर्नलिकाबन्धादिना ग्रहवेधं कृत्वाऽन्तराणि लक्षयित्वा ग्रहकरणानि कार्याणीत्यग्रे ग्रन्थसमाप्तावाचार्येणाप्युक्तमस्ति । अतोऽस्मिन् कालेऽत्रत्या एव ग्रहा घटन्ते । एवमनया वर्तमानघटनया ज्ञाता मध्यमा रविगतिर्भागाद्या ०।५९।८।३४।१७।९ तत्रानुपातः । यद्येकदिनेनैतावती गतिस्तदाहर्गणेन किमिति अहर्गणस्य गतिर्गुणः अत्र खण्डगुणनार्थं गतेरेकं खण्डं गत्यपेक्षया अधिकं गृहीतम् । रविगतिः = ०।५९।८।३४।१७।९ अत्रैको धृतः । अन्तरम् ०।०।५१।२५।४२।५१ अनेनाहर्गणो गुण्यः रूपगुणाहर्गणाच्छोध्यः । अत्र कर्मगौरवम् । लाघवार्थमिदम् ०।०।५१।२५।४२।५१ यथैकसंख्यं स्यात् तथा केनापि गुण्यं एवं सप्तति गुणिते ऊर्ध्वं रूपं निःशेषं भवति । अतो गणो रूपगुणः सप्ततिभक्तः फलेन रूपगुणोऽहर्गणो हीनः कार्यः यतोऽधिकं गृहीतम् । उभयत्र रूपतुल्यस्य गुणस्याविकृतत्वान्नाशः । एवं स्वखनगलवहीन इति । अथ गतेरपेक्षयाऽधिकं गृहीतम् यत् खण्डम् ०।०।०।२४।०।० ।

१. सू. सि. १.९

अनेन गणो गुण्यः फलं रवौ हीनं कार्यमधिकत्वात् । अत्रापि लाघवार्थमिदं खतिथिभिः १५० सवर्णितं जातम् कलास्थाने रूपम् अतः कलासु खतिथि हृतगणेन इति । या मध्यार्कगतिः सैवः बुधशुक्रयोर्दृष्टा । अतो रविबुधशुक्रा मध्यमास्त एव ।

अथ चन्द्रं साधयति—गणमनुहतिरिति । गणोऽहर्गणः मनवश्चतुर्दश १४ अनयोर्हतिर्नाम चतुर्दशगुणोऽहर्गणोंशपूर्वो भागाद्य इन्दुश्चन्द्रः स्यात् । किं विशिष्टः स्वाद्रिभूभागेन स्वसप्तदशांशेन हीनः । पुनर्लिप्तकासु कलासु खमनुभिश्चत्वारिंशदधिकशतेन हृतो यो गणस्तेनोनः स कार्य इत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः—अत्र चन्द्रस्य मध्यमागतिः १३।१०।३४।५१।५६।० । अनया गणो गुण्यः । तत्र गतेरधिकं खण्डं गृहीतम् १३।१०।३५।१७।३८।५१ । अत्रापिलाघवार्थं पूर्णाश्चतुर्दशगृहीता । अत उक्तं गणमनुहतिरिन्दुरिति । इदं चतुर्दशेभ्यः कियदल्पमस्तीति चतुर्दश शुद्धम् ०।४९।२४।४२।२१।९ । इदं सप्तदशगुणितं जातमूर्ध्वस्थाने १४ अत्रोभयत्र चतुर्दशतुल्यगुणोऽतः स्वाद्रिभूभागहीन इत्युक्तम् । ततो गतेरपेक्षया यद् गृहीतमधिकं खण्डं तदिदम् । ०।०।०।२५।४२।५१ । खमनुभिः सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपं स गुणः खमनवो हरः । रूपगुणस्याविकृतत्वात् खमनुहृतगणोनो लिप्तिकास्तीति स्व स्व ध्रुवः स्वस्वक्षेप संस्कारः सर्वेषां ग्रहाणां कार्य एव ॥ १० ॥

चन्द्रिका—अहर्गण में ७० का भाग देने से प्राप्त अंशादि फल को अहर्गण में घटाने से शेष अंशादि ही रहता है। पुनः अहर्गण में १५० का भाग देने से फल कलादि होगा। दोनों का अन्तर करने से अंशादि सूर्य-बुध-शुक्र होंगे। [अंश में ३० का भाग देने से फल राश्यादि होगा]। राशिस्थान में यदि १२ से अधिक संख्या हो तो उस १२ से भाग देकर शेष को राशि के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

अहर्गण को १४ से गुणा कर उसमें १७ का भाग देने से लब्धि अंशादि फल को गुणनफल में घटाने से शेष अंशादि फल आएगा। उसमें अहर्गण को १४० से भाग देकर लब्धि तुल्य कलादि फल घटाने से शेष अंशादि चन्द्रमा होता है। १०

उदाहरण—अहर्गण १४०९। इसे ७० से भाग देने पर लब्धि २०।७।४३ प्राप्त हुई। इसे अहर्गण में घटाया—

१४०९
२०। ७।४३

१३८८।५२।१७ शेष अंशादि

पुनः अहर्गण में १५० का भाग देने से लब्धि ९।२३ कलादि प्राप्त हुई। इसे उक्त शेष से घटाया

१३८८।५२।१७
−९।२३

१३८८।४२।५४ अंशादि सूर्यबुधशुक्र हुये।

अंश में ३० का भाग दिया तो ४५।८।४२।५४। हुआ राशि स्थान में १२ से अधिक संख्या होने से ४६ में १२ का भाग दिया तो शेष १० बचा। अतः सूर्य बुध शुक्र का मान राश्यादि १०।८।४२।५४। हुआ। अहर्गणोत्पन्न ग्रह में 'दिनगणभव खेटः' इत्यादि श्लोक के अनुसार ध्रुव-क्षेपक संस्कार किया—

सूर्य का ध्रुवा ०।१।४९।११ इसे चक्र ४१ से गुणा किया २।१४।३६।३१ गुणनफल को अहर्गणोत्पन्न ग्रह१०।८।४२।५४ से घटाया तो शेष ७।२४।६।२३ बचा। इसमें सूर्य का राश्यादि क्षेपक ११।१९।४१।० जोड़ने से ७।१३।४७।२३ मध्यम सूर्य-बुध-शुक्र हुए।

मध्यम चन्द्र साधन—अहर्गण १४०९ इसमें १४ का गुणा करने से १९७२६ हुआ। इसमें १७ का भाग देने से प्राप्त लब्धि ११६०।२१।१० को १९७२६ में घटाने से १८५६५।३८।५० शेष बचा। पुनः अहर्गण १४०९ में १४० का भाग दिया तो कलादि लब्धि १०।३ हुई इसे १८५६५।३८।५० में घटाया—

१८५६५।३८।५०
−१०। ३

१८५६५।२८।४७ अंशादि चन्द्र हुआ

नोट—चन्द्रस्पष्टीकरण में कुछ लोगों ने भ्रम पैदा कर दिया है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि अहर्गण को १४ से गुणा कर उसे अंशादि मान कर उसमें अहर्गण का सत्रहवाँ भाग घटा दें पुनः अहर्गण में १४० का भाग देकर कलादि फल घटा दें तो अहर्गणोत्पन्न चन्द्र होगा किन्तु यह प्रक्रिया असङ्गत है।

इसे राश्यादि बनाने से ६।२५।२८।४७ दिनगण भव चन्द्र हुआ।

चन्द्रमा के ध्रुवा ०।३।४६।११ को चक्र ४१ से गुणा कर ५।४।३३।३१ को अहर्गणोत्पन्न चन्द्र में घटाने तथा शेष में क्षेपक जोड़ने से—

६।२५।२८।४७
५।४।३३।३१ चक्र गुणित ध्रुवा
१।२०।५५।१६
११।१९।६।० क्षेपक
१३।१०।१।१६ राश्यादि मध्यम चन्द्र हुआ।

देशान्तर संस्कार—काशी का देशान्तर योजन ६४ इसमें ६ का भाग देने से लब्धि कलादि १०।४० प्राप्त हुई। रेखादेश से काशी पूर्व है अतः पूर्वसाधित चन्द्र से घटाया—

१।१०।१।१६
– १०।४०
१।९।५०।३६ मध्यम चन्द्र हुआ।

चन्द्रोच्चराह्वोरानयनम्—

नवहृतदिनसङ्घश्चन्द्रतुङ्गं लवाद्यं
भवति खनगभक्तद्युव्रजोपेत लिप्तम्।
नवकुभिरिषुवेदैर्घस्त्रसंघाद्द्विधाप्तात्।
फललव कलिकैक्यं स्यादगुश्चक्रशुद्धः॥ ११॥

मल्लारिः—अथ चन्द्रं प्रसाध्येदानीं चन्द्रोच्चराह्वोः साधनमेकवृत्तेनाह नवहृतेति। नव ९ भिर्हृतो भक्तो यो दिनसंघोऽहर्गणः स एव लवाद्यं चन्द्रतुङ्ग चन्द्रमन्दोच्चं भवति। किं विशिष्टं खनगैः सप्तत्या ७० भक्तो यो द्युव्रजोऽहर्गण-स्तेनोपेता युक्तालिप्ताः कलाः यस्य तत्। तथा गणस्य सप्तत्यंशेन कला-विकलारूपेण युक्तमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—मन्दोच्चशीघ्रोच्चादिगतिज्ञानं तत् स्थानं चाग्रे स्पष्टी-करणोपपत्तौ सविस्तरं वक्ष्यामः। अत्र तु केवलामुच्चगतिमङ्गीकृत्योपपत्ति-रुच्यते। तत्र चन्द्रोच्चगतिः ०।६।४०।५।१।२५।४३। अत्रैकं खण्डं गतेर्न्यूनं

* काशी का देशान्तर योजन प्राचीन भारतीय रेखादेश के आधार पर साधित किया गया है।

गृहीतम् ।०।६।४०। अनेन गणो गुण्यः। तत्र लाघवार्थमिदं नव ९ सवर्णितं जातमूर्ध्वस्थाने रूपं १ स गुणोऽविकृतत्वात्। अतो नवहृत इत्युक्तम्। अवशिष्टं खण्डम् ०।०।५१।२५।४३। इदं सप्तत्या ७० सवर्णितं जातमूर्ध्वं कलास्थाने रूपम्। अतः खनगभक्तयुग्रजोपेतलिप्तमिति। यतः पूर्वखण्डं न्यूनं गृहीतमतो युक्तम्।

एवं चन्द्रोच्चं प्रसाध्येदानीं राहुं प्रसाधयति। नवकुभिरिषुवेदैरिति। नवकुभिरेकोनविंशत्या १९। इषुवेदैश्च इषवः पञ्चवेदाश्चत्वारः ऋग्वेदाद्याः प्रसिद्धा अनया पञ्चचत्वारिंशता ४५ द्विधा गणादाप्तात्। गण एकत्रैकोनविंशतिभक्तमंशादि फलं ग्राह्यम् अन्यत्र च पञ्चचत्वारिंशद्भक्तः फलं कलाद्यम्। एवं फललवकलिकैक्यं। उभयोर्भागादिककलादिकफलयोर्योगश्चक्रशुद्धो द्वादश १२ शुद्धस्ततो ध्रुवक्षेपसंस्कृतोऽगू राहुःस्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—राहुर्नाम पातः। पातो नाम क्रान्तिमण्डलविमण्डलयोः सम्पातः। सूर्यो यस्मिन् वृत्ते भ्रमति तत् क्रान्तिमण्डलम्। क्रान्तिमण्डलात् ग्रहो यावतान्तरेण दृश्यते तस्यान्तरस्य शरसंज्ञा कृता। एवं रविव्यतिरिक्ताः ग्रहाः क्रान्ति मण्डले न भ्रमन्ति। शरतुल्यान्तरेण ग्रहा यत्र भ्रमन्ति तद्वृत्तस्य विमण्डलसंज्ञा। एवं क्रान्तिवृत्तशरवृत्तसम्पातस्य विलोमगतिर्दृष्टा। तज्ज्ञानं यथा। गोले पूर्वसम्पातादन्यसम्पातः कियद्भिर्भागैः पृष्ठतो दृष्टस्ते भागाः षष्टि ६० गुणाःकलाः। ततोऽनुपातः। यद्येभिः सम्पातद्वयान्तरदिनैरेता अन्तरकलाः लभ्यन्ते तदैकदिनेन कतीति लब्धा पातस्य विलोमगतिः। एवं चन्द्रपातगतिः। अन्येषां ग्रहाणां पातसाधनं नोक्तम्। यतस्तेषां गतिर्वर्षेणापि विकला न लभ्यतेऽतश्चन्द्रपात एव साध्यते। तद्गतिः ०।३।१०।४८।२५।१५। अतोऽनुपातादहर्गणो गुण्यः। अत्र गतेरपेक्षया ऊनं खण्डं धृतम् ०।३।९।२८।२५।१५। अनेन सावयवेन खण्डेन गणो गुण्य इति कर्मगौरवम् अतो लाघवार्थमिदमेकोनविंशत्या १९ सवर्णितं जातमूर्ध्वस्थाने रूपम्। एवं नवकुभिर्गणो भाज्यः फलं भागा इति। अवशिष्टं गतिखण्डम् ०।०।१।२०।०।०। इदं पञ्चचत्वारिंशता सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपम्। अत इषुवेदैर्भक्त इति फलैक्यं कार्यं यतः पूर्वखण्डं गतेरूनं धृतम्। एवं जातः पातः स चक्रशुद्धो राहुर्भवतीत्यागमः॥ ११

चन्द्रिका—चन्द्रोच्च साधन—दिनसंघ (अहर्गण) को नव से भाग देकर लब्ध अंशादि फल में, अहर्गण में ७० का भाग देने से प्राप्त कलादि लब्धि जोड़ने से चन्द्रोच्च होता है।

राहुसाधन—दो स्थानों में स्थित अहर्गण को क्रम से १९ और ४५ से अलग-अलग भाग देने पर लब्धि अंशादि एवं कलादि आयेगी। अर्थात् १९ से भाग देने पर अंशादि, तथा ४५ से भाग देने पर कलादि फल होगा। दोनों के योग को १२ राशि में घटाने से राहु होता है। ११।

उदाहरण—चन्द्रोच्चानयन—अहर्गण १४०९ को ९ से भाग देने से १५६।३३।२० अंशादि फल प्राप्त हुआ। पुनः १४०९ को ७० से भाग दिया तो कलादि फल २०।७ हुआ। दोनों का योग १५६।५३।२७ इसका राश्यादि बनाया ५।६।५३।२७। अहर्गणोत्पन्नचन्द्रोच्च हुआ। इसमें चक्रनिघ्न ध्रुवा ०।२२।४५।० घटाया तो ४।१४।८।२७ शेष रहा इसमें क्षेपक ५।१७।३३।० जोड़ने से १०।१।४१।२७ मध्यमचन्द्रोच्च हुआ।

राहुसाधन—अहर्गण १४०९ को दो स्थानों में रखकर एक स्थान में १९ का भाग दिया तो ७४।९।२८ अंशादि लब्धि तथा द्वितीय स्थान में ४५ का भाग देने से कलादि लब्धि ३१।१९ प्राप्त हुई। दोनों का योग

७४।९।२८ + ०।३१।१९ = ७४।४०।४७

इसे राश्यादि बनाकर १२ में घटाया—

१२	०	०	०
२	१४	४०	४७
९	१५	१९	१३

इसमें चक्रगुणित ध्रुवा २।२६।१०।० घटाकर क्षेपक ०।२७।३८ जोड़ने से मध्यम राहु ७।१६।४७।१३ हुआ।

कुजस्य बुधकेन्द्रस्य चानयनम्—

दिग्घ्नो द्विधा दिनगणोऽङ्कुकुभिस्त्रिशैलै-
र्भक्तः फलांशककलाविवरं कुजः स्यात्।
त्रिघ्नो गणः स्ववसुदृग्लवयुग्ज्ञशीघ्र-
केन्द्रं लवाद्यहिगुणाप्तगणोनलिप्तम्॥ १२

मल्लारिः—एवं पातं प्रसाध्येदानीं भौमं बुधशीघ्रोच्चं चैकवृत्तेन साधयति दिग्घ्न इति। दिनगणो दिग्घ्नो दिग्भिर्दशभिः १० हन्यते गुणयते स तथा एवंभूतो द्विधा स्थानद्वये स्थाप्यः। एकत्रांककुभिरंका नव कुरेक एवमेकोनविंशत्या १९ भक्तः। अन्यत्र च त्रिशैलैस्त्रयः प्रसिद्धाः शैलाः सप्त एवं त्रिसप्तत्या ७३

भक्तः फलांशककलाविवरं पूर्वफलमत्रांशा भागाद्यं द्वितीयं कलाद्यं तयोर्विवरमन्तरं कुजो भौमः स्यात् ॥

अत्रोपपत्तिः—भौमगतिः ०।३१।२६।३१।३६ अत्राधिकं खण्डं गृहीतम् ०।३१।३४।४४।१२।३६ अनेन गणो गुण्यः। अत्र लाघवार्थमिदमेकोनविंशत्या सवर्णितं जाता भागस्थाने दश अत उक्तं दिग्घ्नो गणोऽङ्ककुभिर्भाज्य इति। अस्मात् खण्डाद्गतिमपास्य शेषम् ०।०।८।१३।९ इदं त्रिसप्तत्या सवर्णितं जाता कलास्थाने दश १० उभयत्र दशतुल्यो गुणोऽतो दिग्घ्नो द्विधेत्युक्तं फलयोरन्तरं कार्यं यत् पूर्वखण्डं गतेरधिकं धृतम्।

एवं भौमसाधनं कृत्वेदानीं बुधशीघ्रकेन्द्रसाधनमाह त्रिघ्न इति। त्रिभिर्गुण्यते हन्यते स तथा एवंभूतो यो गणः स स्ववसुदृग्लवयुक् स्वस्य त्रिगुणिताहर्गणस्य यो वसुदृग्भिरष्टाविंशत्या २८ लवो भागस्तेन स एव त्रिगुणितो गणो युग्युक्तः सन् लवादि ज्ञस्य बुधस्य शीघ्रकेन्द्रं स्यात्। किंविशिष्टम्। अहिगुणाप्तगणोनलिप्तम्। अहयोऽष्टौ गुणास्त्रय एवमष्टत्रिंशद्भिः ३८ आप्तो भक्तो यो गणस्तेन ऊना लिप्ताः कला यस्येति तत् तथा गणस्याष्टत्रिंशद्भागो द्विष्ठः कलादिस्तेन तदूनं कार्यमित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः— बुधशीघ्रकेन्द्रगतिः ३।६।२४।८।७।०३ अनया गणो गुण्य इत्येकं खण्डं त्रयः ३ त्रिभिर्गुण्योऽतस्त्रिघ्नो गण इति। अवशिष्टं खण्डं किञ्चिदधिकं गृहीतम् ०।६।२५।४२।५१।२५ अनेन गणो गुण्य इत्यत्रेदमष्टाविंशत्या २८ सवर्णितं भागस्थाने त्रयः ३। उभयत्रापि गुणस्त्रितुल्योऽतः स्ववसुदृग्लवयुगिति। अत्राधिकमेव तत् खण्डम् ०।०।१।३४।४४।१२ इदमष्टत्रिंशद्भिः ३८ सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपं १ तस्याविकृतत्वादहिगुणाप्तगणोनलिप्तमिति पूर्वखण्डमधिकं गृहीतमत इदं हीनं कृतम् ॥ १२

चन्द्रिका—अहर्गण को १० से गुणा कर दो स्थानों में रखकर एक स्थान में १९ का भाग देने से लब्धि अंशादि तथा द्वितीय स्थान में ७३ का भाग देने से फल कलादि आयेगा दोनों का अन्तर करने से अंशादि मंगल होता है।

एवमेव अहर्गण को ३ से गुणा कर २८ का भाग देने से जो लब्धि प्राप्त हो उसे गुणनफल में जोड़ने से अंशादि होता है तथा अहर्गण में ३८ का भाग देने से लब्धि कलादि फल होता है। अंशादि फल से कलादि फल को घटाने से शेष अंशादि बुध केन्द्र होता है। १२

उदाहरण—मङ्गल साधन—अहर्गण १४०९ को १० से गुणा कर गुणन फल १४०९० को दो स्थानों में रखा। एक स्थान में १९ का भाग दिया तो अंशादि लब्धि ७४१।३४।४४ प्राप्त हुई द्वितीय स्थान में ७३ का भाग दिया तो १९३।१ कलादि फल प्राप्त हुआ। इसे भी अंशादि बनाया तो ३।१३।१ हुआ।

दोनों का अन्तर ७४१।३४।४४
−३।१३।१
७३८।२१।४३ अंशादि

राश्यादि बनाने से ०।१८।२१।४३ दिनगणभव भौम हुआ। इसमें चक्रगुणित ध्रुवा ३।२६।५२।० घटाकर क्षेपक १०।७।८।० जोड़ने से ६।२८।३७।४३ मध्यम मङ्गल हुआ।

बुधकेन्द्र साधन—अहर्गण १४०९ को ३ से गुणा किया गुणनफल ४२२७ में २८ का भाग दिया लब्धि १५०।५७।५१ अंशादि को गुणनफल ४२२७ में जोड़ने से ४३७७।५७।५१ हुआ। पुनः अहर्गण १४०९ में ३८ का भाग देकर लब्धि ३७।५ कलादि फल को पूर्व साधित अंशादि में घटाया—

४३७७।५७।५१
—३७। ५
४३७७।२०।४६ शेष

अंशादि को राश्यादि बनाने से १।२७।२०।४६ अहर्गणोत्पन्न बुध केन्द्र हुआ। इसमें चक्रगुणित ध्रुवा ०।२१।२७।० घटाकर, क्षेप ८।२९।३३।० जोड़ने से १०।५।२६।४६ राश्यादि बुध केन्द्र हुआ।

गुरोः शुक्रकेन्द्रस्य चानयनम्—

द्युपिण्डोऽर्कभक्तो लवाद्यो गुरुः स्याद्
द्युपिण्डात् खशैलाप्तलिप्ताविहीनः।
त्रिनिघ्नाद्द्युपिण्डाद्द्विधाऽक्षैः क्विभाब्जै-
रवाप्तांशयोगो भृगोराशुकेन्द्रम्॥ १३

मल्लारिः—एवं बुधशीघ्रकेन्द्रं प्रसाध्येदानीं गुरुं शुक्रशीघ्रकेन्द्रं चैकवृत्तेन साधयति द्युपिण्ड इति। द्युपिण्डोऽहर्गणोऽर्कैर्द्वादशभिः १२ भक्तः सन् लवाद्यो भागाद्यो गुरुर्बृहस्पतिः स्यात् किंविशिष्टः द्युपिण्ड इति। अहर्गणात् खशैलैः

सप्तत्या ७० आप्ता लब्धा या लिप्ताः कलादि फलं तेन फलेन विहीनो विवर्जितः कार्य इत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः । गुरोर्गतिः ०।४।५९।८।३४।१७ अनया गणो गुण्य इति । अत्रैकखण्डम्०।५ इदं द्वादशभिः १२ सवर्णितं जातं भागस्थाने रूपं १ हरस्थाने द्वादश १२ । अत उक्तं द्युपिण्डोऽर्कभक्त इति । अस्माद्गतिमपास्य शेषम् ०।०।०।५१।२५।४३ इदं सप्ततिसवर्णितं जातं कलास्थाने रूपं १ हरस्थाने सप्ततिः ७० पूर्वखण्डमधिकं गृहीतमत उक्तं खशैलाप्तलिप्ताविहीन इति ।

अथ शुक्रकेन्द्रं साधयति । त्रिनिघ्नाद्द्युपिण्डाद्द्विधेति । त्रिभिः ३ हन्यते गुण्यते एवम्भूतो यो द्युपिण्डोऽहर्गणस्तस्मात् द्विधा स्थानद्वये स्थापितात् एकत्र अक्षैः पञ्चभिः ५ अन्यत्र ५ विवभाब्जैः कुरेक इभा अष्टौ अब्ज एक एभिरेकाशीत्यधिकशतमितैरङ्कैः १८१ अवाप्तांशयोग अवाप्ता लब्धा ये अंशास्तेषां योगो भृगोः शुक्रस्य शीघ्रकेन्द्रं भवति ॥

अत्रोपपत्तिः—शुक्रशीघ्रकेन्द्रस्य गतिः ०।३६।५९।४०।६।३७ अनया गणो गुण्यः । अत्रैकं खण्डम् ०।३६ इदं पञ्चभिः सवर्णितं जातं भागस्थाने त्रयं ३ हरस्थाने पञ्च ५ । अत उक्त त्रिनिघ्नाद्द्युपिण्डात् अक्षैर्भक्तात् अवाप्तांशा ग्राह्या इति । अवशिष्टखण्डम् ०।०।५९।४०।६।३७ इदमेकाशीत्यधिकशतेन १८१ सवर्णितम् । अत्रापि जातं भागस्थाने त्रयम् । उभयत्रापि गणस्त्रिभिर्गुण्यः । एकत्र पञ्चभिः ५ भाज्यः अपरत्र चैकाशीत्यधिकशतेन १८१ भाज्यः फलैक्यं कार्यमेव यतः पूर्वखण्डं न्यूनं गृहीतमस्ति । अत एवोक्तं त्रिनिघ्नाद्द्युपिण्डादित्यादि ॥ १३

चन्द्रिका—अहर्गण में १२ का भाग देने से अंशादि तथा (अहर्गण) में ७० का भाग देने से कलादि फल आयेगा। दोनों का अन्तर करने से अंशादि गुरु होता है।

अहर्गण को ३ से गुणा कर दो स्थानों में रखकर एक स्थान में ५ से तथा दूसरे स्थान में १८१ से भाग देने पर प्राप्त अंशादि लब्धियों का योग करने से अंशादि शुक्र केन्द्र होता है। १३।

[**विशेष** – शुक्र केन्द्र साधन में दोनों ही लब्धियाँ अंशादि होती हैं।]

उदाहरण—गुरुसाधन—अहर्गण १४०९ में १२ का भाग देने से अंशादि लब्धि ११७।२५।० तथा १४०९ में ७० का भाग देने से कलादि लब्धि २०।७ दोनों का अन्तर करने से शेष ११७।४।५३ अंशादि गुरु हुआ

इसे राश्यादि बनाने से ३।२७।४।५३ दिनगणभव गुरु हुआ। इसमें चक्र गुणित ध्रुवा ११।२८।१८।० घटाकर क्षेपक ७।२।१६।० जोड़ने से ११।१।२।५३ राश्यादि औदयिक मध्यम गुरु हुआ।

शुक्रकेन्द्र साधन—अहर्गण १४०९ को ३ से गुणा कर गुणनफल ४२२७ को दोनों स्थानों में रखकर एक स्थान में ५ से भाग दिया तो अंशादि लब्धि ८४५।२४।०। प्राप्त हुई द्वितीय स्थान में **१८१ से भ**ाग दिया तो २३।२१।१३ अंशादि लब्धि प्राप्त हुई दोनों का योग ८६८।४५।१३ अंशादि शुक्रकेन्द्र तथा ४।२८।४०।१३ राश्यादि दिनगणभव शुक्रकेन्द्र हुआ। इसमें चक्रगुणितध्रुवा ०।५।२२।० घटाकर क्षेप ७।२०।९।० राश्यादि जोड़ने से औदयिक मध्यमशुक्रकेन्द्र ०।१३।३२।१३ हुआ।

शनिसाधनम्—

खाग्न्युद्धृतो दिनगणोंऽशमुखः शनिः स्यात्
षट्पञ्चभूहृतगणात् फललिप्तिकाढ्यः ॥ १३½

मल्लारिः—अथेदानीं श्लोकार्धेन शनिं साधयति खाग्न्युद्धृत इति। दिनगणोऽहर्गणः खाग्निभिस्त्रिंशद्भिः ३० उद्धृतो भक्तः सन् अंशमुखो भागाद्यः शनिः स्यात्। किंविशिष्टः षट्पञ्चभूहृतगणात् षट्पञ्चाशदधिकशत १५६ भक्तादहर्गणात् याः फललिप्तिका यत् कलादि द्विष्ठं फलं तेन आढ्यो युक्तः शनिः स्यादित्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः। शनेर्मध्यमागतिः ०।२।०।२३।४।०।३७ अनया गत्या अहर्गणो गुण्य इति। अत्रैकं खण्डं धृतम् ०।२ इदं त्रिंशता सवर्णितं भागस्थाने रूपं १ जातं तस्याविकृतत्वात् खाग्न्युद्धृतो दिनगण इत्युपपन्नम्। एतत् खण्डं गतेरपास्य शेषम् ०।०।०।२३।४।३७। इदं षट्पञ्चाशदधिकशतसवर्णितं जातं कलास्थाने रूपं तस्याप्यविकृतत्वात् षट्पञ्चभूहृतगणादित्युक्तम्। फलयोर्योगः कार्यो यतः पूर्वखण्डं गतेरूनं धृतमत उक्तं फललिप्तिकाढ्य इति॥ १३½

चन्द्रिका—अहर्गण को ३० से भाग देने पर अंशादि फल तथा अहर्गण को १५६ से भाग देने पर कलादि फल आयेगा। दोनों का योग अंशादि शनि होता है। १३½

उदाहरण—शनिसाधन—अहर्गण १४०९ को ३० से भाग दिया लब्धि अंशादि ४६।५८।० हुई एवं १५६ का भाग १४०९ में दिया तो लब्धि कलादि ९।२ हुई। दोनों का योग ४७।७।२ अंशादि शनि हुआ। राश्यादि

करने से १।१७।७।२ अहर्गणोत्पन्न शनि हुआ। इसमें चक्रगुणित ध्रुवा ८।१३।४२।० घटाकर क्षेपक ९।१५।२१।० जोड़ने से २।१८।४६।२ औदयिक राश्यादि मध्यम शनि हुआ।

ग्रहाणां मध्यमागतिः—

गोऽक्षा गजा रविगतिः शशिनोऽभ्रगोश्वाः
पञ्चाग्नयोऽथ षडिलाब्धय उच्चभुक्तिः॥ १४
राहोस्त्रयं कुशशिनोऽसृज इन्दुरामा-
स्तर्काश्विनो ज्ञचलकेन्द्रजवोऽर्यहिक्ष्माः।
लिप्ता जिना विकलिकाश्च गुरोः शरः खं
शुक्राशुकेन्द्रगतिरद्रिगुणाः शनेर्द्वे॥ १५

मल्लारिः—एवं रेखार्कोदयकालीनान् मध्यमान् ग्रहान् प्रसाध्येदानीं सार्धश्लोकेन मध्यमग्रहाणां दिनगतीः कलाद्या वदति। गोऽक्षा इति। राहोरिति। इयं कलाद्या रविगतीः। गोऽक्षाः। गावो नव अक्षाः पञ्च एवमेकोनषष्टिः ५९ कलाः। अष्टौ ८ विकलाः। शशिनश्चन्द्रस्येयं गतिः। अभ्रगोश्वाः। अभ्रं शून्यं गावो नव अश्वाः सप्त। एवं नवत्यधिकशतसप्तकमिताः ७९० कलाः। पञ्चाग्नयः पञ्चत्रिंशत् ३५ विकलाः। अथ शब्दोऽनन्तरवाची। चन्द्रगतिकथानन्तरमियमुच्चभुक्तिश्चन्द्रमन्दोच्चगतिः षट् ६ कलाः। इला एक अब्धयश्चत्वार एवमेकचत्वारिंशत् ४१ विकलाः॥ १४

राहोरियं गतिः। त्रयं तिस्रः ३ कलाः। कुशशिन एकादश ११ विकलाः। असृजो भौमस्य इन्दुरामा एकत्रिंशत् ३१ कलास्तर्काश्विनस्तर्काः षट् अश्विनौ द्वौ एवं षड्विंशतिः २६ विकलाः। ज्ञस्य बुधस्य यच्चलकेन्द्रं शीघ्रकेंद्रं तस्य जवो गतिरियमर्यहिक्ष्माः अरयः षट् कामक्रोधादयः। अहयोऽष्टौ। क्ष्मा एक एवं षडशीत्यधिकशतमिताः १८६ कलाः। जिनाश्चतुर्विंशतिः २४ विकला। गुरोर्बृहस्पतेः शराः पञ्च ५ कलाः। खं शून्यं ० विकला। शुक्रस्य यदाशुक्रकेन्द्रं शीघ्रकेन्द्रं तस्य गतिरद्रिगुणाः। अद्रयः सप्त गुणास्त्रय एवं सप्तत्रिंशत् ३७ कलाः। विकलाभावः शनेर्द्वे २ कले तस्यापि विकलाभावः। एता ग्रहाणां मध्यमगतय प्रत्यहं मध्यमा ग्रहा एताः कलाः पूर्वगत्या क्रामन्तीति भावः। आसां गतिकलानां ज्ञानोपायवासना पूर्वमेव प्रतिपादिताऽस्ति तथापि बालावबोधार्थं विस्तार्योच्यते। रूपमहर्गणं प्रकल्प्य सर्वे ग्रहाः पूर्वोक्तवन्मध्यमाः साधितास्ता एव गतिकलाः। राशिवृत्तस्य एतावतीः कलाः प्रत्यहं प्राच्यां ग्रहाः पृथक् पृथक् स्वस्वकक्षायां क्रामन्तीति भावः। तत्कथं

राशिमण्डलं प्रवहानिले क्षिप्तमतिवेगेन नियतं पश्चिमाभिमुखं भ्रमति शीघ्रमन्द-भेदेन भिन्नगत्या ग्रहा विचरन्तीति यद्येवं तर्हि तेषां ग्रहाणामेकमार्गस्थानां मध्य-मगतेः शीघ्रत्वमन्दत्वमित्यन्यथात्वं कथं संभवतीति। अतः पृथक् पृथङ्मार्गगता भ्रमन्तीति भावः। गतेविसदृशत्वं कस्मादित्युच्यते। यो हि भूमेरासन्नः स स्वल्पेन कालेन भगणं भुङ्क्ते तस्य शीघ्रगतित्वं सम्भवति यो हि दूरगः स महता कालेनेति तस्मात्तस्य मन्दगतित्वमिति। एकस्मादेकस्मादन्योऽन्यो मन्दगतिः सम्भवति। तथा चोक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ।[1]

"कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिप्ताङ्कितास्ता
वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः।
तस्मादेते शशिजभृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा
मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भ्रान्ति यान्तः क्रमेण॥"

एव ग्रहाणां कक्षाः सप्त। ग्रहकक्षोपरि अष्टमं नक्षत्रमण्डलं तदेव राशिमण्डलं तत्र समा द्वादश राशयः। तदंशास्ते क्षेत्रांशास्तस्य पूर्वाभिमुखनियतगतेरभावः प्रवहानिलाक्षिप्तं पश्चिमाभिमुखमेव परिभ्रमतीति तदा राश्यंशकलाद्यवयवभोग-वशात् ग्रहाणां शीघ्रमन्दत्वमुक्तं ननु यो हि योजनात्मको दिनगतिमार्गः स सर्वेषां ग्रहाणां समान एव। अत एवाह भास्करः।[2]

'समा गतिस्तु योजनैर्नभःसदां सदा भवेत्।
कलादिकल्पनावशान्मृदुर्द्रुता च सा स्मृता॥

अत्र भचक्रमेकत्र स्थिरत्वेन स्थातुं न शक्नोति अतः किञ्चित् प्राक् पश्चादपि चलतीत्यवगम्यते। कस्मात्। विषुवायनचिह्नोदयस्थानानां नैकत्रावस्थितत्वात्। विषुवायनचिह्नानि स्वदेशस्थानादतिक्रान्तानि दृश्यन्ते तदा चक्रं प्रत्यक्चलितं भवति। अनागतप्राप्तानि तदा प्राक् चलितमिति ज्ञेयम्। अत उक्तं सूर्यसिद्धान्ते।

'प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात् करणागते।
अन्तरांशैः समावर्त्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिकः॥'[3] इति।

कस्मात्स्थानात्प्राक्पश्चाच्चलितं दृश्यते तथा यत्र विषये दक्षिणोत्तरध्रुवौ क्षितिजस्थौ भवतः स निरक्षदेशस्तस्मिन् समं यत्पूर्वापरवृत्तं तद्विषुवद्वृत्तसंज्ञं ततो यस्मिन् मार्गे रविः पूर्वगत्या द्वादश राशीन् भुङ्क्ते तद्वृत्तस्य क्रान्तिमण्डल-

---

१. सि. शि. ग. म. अ. २७ (प्र. शु.)
२. सि. शि. ग. म. अ. २६ (प्र. शु.)
३. सू. सि. ३. ११

संज्ञा कृता। एवमुभयोः क्रन्तिवृत्तविषुवद्वृत्तयोः षड्भान्तरे पातद्वयं वर्त्तते तौ सम्पातौ राशिमण्डले मेषादितुलादिसंज्ञौ ज्ञेयौ। तयोर्विषुवत्सम्पातयोः प्रागपरत्र क्षितिजस्थयोस्त्रिभे तद्विषुवद्वृत्ताद्दक्षिणोत्तरतश्चतुर्विंशत्यंशान्तरे क्रान्तिस्तद्दक्षिणोत्तरवृत्तयोः सम्पातद्वयं तन्मृगकर्क्यादिसंज्ञम्। अनयोरयनचिह्नसंज्ञा कृता। एवं विषुवायनचिह्नचतुष्टयं राशिमण्डलस्थं प्रत्यग्भ्रमणवशात् क्षितिजे यत्रोदेति तत्र तत्र क्षितिजेऽपि तेषां ता एव संज्ञाः कृताः। तस्माद्भचक्रं चलितमित्यवगम्यते। यथा सर्वोपरि राशिमण्डलं तत्र द्वादश राशीन् समानान् सावयवान् परिकल्प्य भूमध्यात्तदवयवप्राप्तानि सूत्राणि सलक्ष्याणि यस्मिन् सूत्रे स्वकक्षास्थितो ग्रहस्तिष्ठति स तस्मिन् राशौ तदंशाद्यावयवस्थो ज्ञेयः। एवं श्रीब्रह्मणा राशिचक्रं सनक्षत्रं तदधिष्टितग्रहकक्षासहितं दक्षिणोत्तरध्रुवयोर्बद्ध्वा तत्र सर्वान् ग्रहान् मेषादिचिह्नसूत्रगान् संस्थाप्य एवं भचक्रं सृष्ट्वा प्रवहानिलस्य पश्चिमाभिमुखभ्रमत्वे नियुक्तं ग्रहास्तु पूर्वाभिमुखभ्रमत्वे नियुक्तः। ततः सर्वे ग्रहाः स्वस्वमार्गं प्रत्यग्भ्रमन्तोऽपि पूर्वाभिमुखमेकादशसहस्राणि अष्टशतानि च पादोनैकोनषष्टिसहितानि योजनानि प्रत्यहं गन्तुं प्रवृत्ताः। उक्तञ्च। सृष्ट्वा भचक्रमित्यादि। तत्र स्वस्वकक्षास्थितलिप्तानां लघुमहत्त्वात् लिप्तावशेन शीघ्रमन्दत्वमुच्चवशेन च गतीनामुपपन्नम्। तत्र भचक्रस्य प्राक् पश्चाच्चलनं तेऽयनांशा एव तद्वशेन तत्र स्थितराशीनां विषुवद्वृताद् दक्षिणोत्तरदूरासन्नत्वं यावद्भिरंशैर्भवति तेषामंशानां क्रान्ति संज्ञा तत्र क्रान्तिवशेन यत्कर्म क्रियते तत्सायनग्रहादेव कर्तुं प्रयुज्यते तेषामवस्थितिरयनांशाः। येषां मते राशिचक्रं भचक्रादन्यत्र स्थितं तेषां साधनमेव प्रमाणम्। स्वस्वगतिकलानामुपपत्तिरेवमपि सक्षिप्तोक्ता पूर्वं प्रतिपादितप्रमेयाच्च ॥ १५ ॥

चन्द्रिका—सूर्य की (मध्यम) कलादि गति गो ९ अक्ष ५=५९१ गज ८, चन्द्रमा की अभ्र० गो ९ अश्व ७=७९०, पञ्च ५ अग्नि ३=३५, चन्द्रोच्च की षट् = ६, इला १ अब्धि ४=४१, राहु की त्रय = ३, कु १ शशि १ = ११, भौम की इन्दु १ राम ३=३१, तर्क ८ अश्विन २ = २६ बुधकेन्द्रकी अरि ६, अहि ८ क्ष्मा १ = १८६ कला, जिना = २४ विकला, गुरु की शर = ५, खं = ० शुक्र केन्द्र की आद्रि ७ गुण ३ = ३७, तथा शनि की द्वि = २ मध्यम गति होती है। १४, १५।

सूर्यादिगहों की मध्यम कलादि गति

सूर्य	५९।८	चन्द्रमा	७९०।३५
चन्द्रोच्च	६।४१	राहु	३।११

मङ्गल	३१।२६	बुध केन्द्र	१८६।२४
गुरु	५।०	शुक्र केन्द	३७।०
शनि	२।०		

सौरादिसिद्धान्तानां वैशिष्ट्यम्—

सौरोऽर्कोऽपि विधूच्चमङ्ककलिको नाब्जो गुरुस्त्वार्यजो—
ऽसृग्राहू च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्ये सेषुभागः शनिः ।
शौक्रं केन्द्रमजार्यं मध्यगमितीमे यान्ति दृक्तुल्यतां
सिद्धैस्तैरिह पर्वधर्मनयसत्कार्यादिकं त्वादिशेत् ॥ १६ ॥

मल्लारिः—अथ कस्मिन् पक्षे को ग्रहो घटत इत्येकवृत्तेनाह सौर इति । अर्कः सूर्य; सौर पक्षायो घटत इति सर्वत्र । विधूच्चमपि सौरपक्षीयम् । अंककलाभिर्नव ९ कलाभिरूनोऽब्जश्चन्द्रः सौरपक्षोयः । गुरुरार्यज आर्यपक्षीयो गुरुरित्यर्थः । असृग्राहू मङ्गलराहू चार्यपक्षीयौ । के ब्रह्मपक्षे जायते तत्तथा एवंभूतं ज्ञस्य बुधस्य केन्द्रम् । अथ शब्दोऽनन्तरवाची । आर्य आर्यपक्षे शनिः सेषुभागः पञ्च ५ भागयुक्तो घटते । शुक्रस्येदं शौक्रम् । एवंभूतं यत्केन्द्रं तदजार्यमध्यगम् । अजो ब्रह्माऽऽर्यः प्रसिद्धः । अनयोः पक्षौ तयोर्मध्ये गच्छतीति तथा । उभयोः प्रसाध्यैतद्योगार्द्धतुल्यं घटत इत्यर्थः । इति तेभ्यः पक्षेभ्यः साधिता इमे ग्रहाः दृशि तुल्यतां दृग्गणितैक्यं यान्ति प्राप्नुवन्तीति । एवं ग्रहणोदयास्तजातकादौ ग्रहाणां साधनं बहुभ्यो ग्रन्थेभ्यः कर्त्तव्यमिति जडकर्म दृष्ट्वा आचार्यो लाघवार्थममुं ग्रन्थं कृतवान् । इहास्मिन् ग्रंथे सिद्धैस्तैर्ग्रहैः पर्वधर्मनयसत्कार्यादिकमादिशेत् । पर्व ग्रहणं, धर्म्मो यज्ञानुष्ठानैकादशीव्रतादिकम् । नयो नीतिः । राजनीतिः दण्डनीत्यादिकः । सत्कार्यं शुभं कार्यं व्रतबन्धविवाहादि । एभ्यो ग्रन्थेभ्य एतदुत्पन्नतिथ्यादेरेवादिशेद् अयं भावः । एकादश्यादिनिर्णयोऽस्मादेव तिथेः कार्यः । जातकादिषु सर्वत्र ग्रहा अत्रत्या एव ग्राह्याः । यतो यस्मिन् यस्मिन् काले यद्यद् दृग्गणितैक्यकृत्तदेव ग्राह्यं घटमानत्वात् । अत्र युक्तिर्ग्रहान्तरलक्षणोपायश्च पूर्वमेव प्रतिपादितोऽस्ति ॥ १६

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य जातं खगानामिति मध्यकर्म ॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञकृतग्रहलाघवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञविरचितायां मध्यमग्रहसाधनाधिकारः प्रथमः ॥ १ ॥

चन्द्रिका—किस सिद्धान्त में किस ग्रह की स्पष्टता दृग्गणित के आसन्न होती है इसका विवेचन करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं—सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार साधित सूर्य तथा चन्द्रोच्च दृश्य गणित से साम्य रखते हैं। सूर्य सिद्धान्त से साधित स्पष्टचन्द्र मे नव ९ कला घटाने पर दृश्य चन्द्र हो जाता है। आर्य सिद्धान्त के अनुसार साधित मङ्गल गुरु तथा राहु दृक्तुल्य होते हैं। ब्रह्म सिद्धान्तानुसार बुधकेन्द्र शुद्ध होता है। आर्यसिद्धान्तानुसार साधित स्पष्ट शनि में ५ अंश जोड़ दिये जाय तो वह भी दृक्तुल्य हो जाता है। शुक्र केन्द्र ब्रह्म सिद्धान्त और आर्य सिद्धान्त के मध्यम मान के तुल्य शुद्ध होता है। इस ग्रन्थ (ग्रहलाघव) में शुद्धसिद्धान्तों के ही आधार पर ग्रहसाधन बताया गया है अतः पर्व, धर्म, नीति एवं शुभकार्यों का आदेश इसी सिद्धान्त के अनुसार करना चाहिए।

श्रीगणेश दैवज्ञविरचित ग्रहलाघव के मध्यमाधिकार की डॉ० रामचन्द्र पाण्डेय कृत चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण। १

२. रविचन्द्र-स्पष्टाधिकारः

भुजकोट्यादीनामानयनम्—

> दवस्त्रिभोनं त्रिभोर्ध्वं विशोध्यं रसै-
> श्चक्रतोऽङ्काधिकं स्याद् भुजोनं त्रिभम् ।
> कोटिरेकैकक त्रित्रिभैः स्यात् पदं
> सूर्यमन्दोच्चमष्टाद्रयोंऽशा भवेत् ॥ १

मल्लारिः—अथ रविचन्द्रस्पष्टीकरणपञ्चाङ्गानयनाधिकारः। तत्रादौ भुजकोटिपदार्कमन्दोच्चानां साधनमेकवृत्तेनाह दोरिति। त्रिभाद्राशित्रयाद् ३ ऊनं यत् केन्द्रं ग्रहादि वा स एव दोर्भुजः स्यात्। त्रिभाद्राशित्रयादूर्ध्वमधिकं चेत्तर्हि रसैः षड्भिः ६ विश्लेष्यान्तरितं कार्यम्। चेत् त्रिभाधिकं षड्भोनं षड्भाच्छोध्यम्। षड्भाधिकं नवपर्यन्तं षड्भोनं भुजः स्यात्। अङ्कतो नव९ राशिभ्योऽधिकं चेत्तदा चक्रतो द्वादशराशिभ्य शोध्यं भुजः स्यात्। भुजोनं भुजेन ऊनं त्रिभं राशित्रयं कोटिः स्यात्। त्रित्रिभैस्त्रिभिस्त्रिभी राशिभिरेकैकं पदं स्यात्। तद्यथा। प्रथमं राशित्रयं विषमं पदं स्यात् ततो द्वितीयं समपदं ततस्तृतीयं विषमं पदं चतुर्थं समपदमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। तत्रादौ दोर्ज्याकोटिज्यास्वरूपमुच्यते। समायां भूमौ इष्टत्रिज्याव्यासार्धेन वृत्तं दिगङ्कितं कृत्वा षष्टचधिकशतत्रयमिताद् ३६० भागानङ्कयेत्। तत्र तिर्य्यगूर्ध्वरेखे च। एवं चतुर्भागाः स्युस्तेषां पदसंज्ञा। एवं चक्रे चत्वारि पदानि तत्रैकैकस्मिन् पदे नवतिर्नवतिर्भागाः। प्रथमपदे यद्गतं स एव दोः। द्वितीये एष्यं दोः। एष्यत्वार्थं षड्भशुद्धम्। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

'अयुग्मे पदे यातमेष्यं युग्मे भुजो बाहुहीनं त्रिभं कोटिरुक्ते'[१]

अत्र दोर्ज्याकोटिज्ये एकपदमध्ये अतो दोस्त्रिभात् शुद्धः कोटिर्भवतीति युक्तमुक्तम्। एवं भुजकोटिपदान् प्रसाध्येदानीं सूर्यमन्दोच्चं वदति। सूर्यमन्दोच्चमिति। सूर्यस्य मन्दोच्चमष्टाद्रयोऽष्टसप्तति ७८ मिता भागा भवेत्। राशिद्वयमष्टादशभागाः।

---

१. सि. शि. स्प. अ. १९

अत्रोपपत्तिः—अहर्गणत् साधितो यो ग्रहः स मध्यमो यतो यन्त्रवेधेनाकाश-विलोक्यमाने तावत् ग्रहो न दृष्टः किञ्चिदन्तरं दृष्टं प्रत्यहं गतेर्विसदृशत्वात्। एवं प्रत्यहं ग्रहान् गोलेन चक्रयन्त्रेण वा विद्ध्वा अहर्गणोत्पन्नमध्यमग्रहवेधित-स्पष्टग्रहयोरन्तराणि साधितानि। एवं प्रत्यहं ग्रहाणां याम्योत्तरगमनानि क्रान्ति मण्डलाद्यावद्भागमितानि दृष्टानि तानि शरसंज्ञानि ज्ञातानि। एवं परमशरपरमाल्प शरयोर्योगार्धं मध्यमः शरो ज्ञातः। त एवं ग्रहाणां शरा अग्रे आचार्येणोदयास्ताधि-कारे पठिताः सन्तिः ततोऽनुपातेनेष्टशरःप्रसाधितोऽस्ति। स यथा। यदि त्रिज्या तुल्यसपातग्रहदोर्ज्यया एते शरास्तदेष्टदोर्ज्यया क इति। एवं दोर्ज्या त्रिज्याभक्ता पठितशरगुण इष्टः शरःस्यात् सोऽपि ग्रहस्थानीयः। ग्रहस्थानानि त्रीणि तद्वृत्तानि च। मध्यमो ग्रहो मन्दप्रतिमण्डलेऽस्तीति कल्पना। मन्दस्पष्टो ग्रहः शीघ्रप्रति मण्डले भ्रमतीति। स्पष्टो ग्रहः स्वस्वविमण्डलेऽस्तीति कल्प्यते। शरः साधितो मन्दस्पष्टग्रहात् यतः पाताः प्रतिमण्डलस्था वेधिताः सन्ति। अतः शराः शीघ्र-प्रतिमण्डलस्था ग्रहस्थानीयास्तत्र शीघ्रकर्णे व्यासार्धे तदग्रे शराः साधितास्ते तु त्रिज्याग्रहस्थानीयाः कार्या ज्यारूपत्वात्। अतो द्वितीयोऽनुपातो यदि शीघ्रकर्णाग्रेऽयं शरस्तदा त्रिज्याग्रे कः पूर्वं त्रिज्या हर इदानीं गुणस्तुल्यत्वात् तयोर्नाशः। एवं दोर्ज्या पठितशरगुणा शीघ्रकर्णभक्ता शरः स्यात्। शीघ्रकर्णो नाम किं तदुच्यते। दोर्ज्या भुजः कोटिज्यान्त्यफलज्योर्मृगकर्यादिकेन्द्रे यद्योगान्तरं सा कोटिः। तद्वर्गैक्यपदं कर्णः तस्य कर्णस्य त्रिज्यातः परमन्यूनाधिकं यदन्तरं साऽन्त्यफ-फलज्यैव तद्धनुः परमफलमित्यर्थः। अत्र शराद्विलोमविधिना कर्णः साधितः। स यथा दोर्ज्या पठितशरगुणा शीघ्रकर्णेन परमाधिकेन यावद्भज्यते तावत् पर-माल्पशरो भवति परमाल्पशीघ्रकर्णेन यावद्भज्यते तावत् परमाधिकशरो भवति। अतो वैपरीत्याद्दोर्ज्यात्रिज्या तुल्या पठितशरगुणा परमाधिकशरेण परमाल्पशरेण च भक्ता सती क्रमेण परमाल्पपरमाधिकौ शीघ्रकर्णौ लभ्येते। उभयत्र त्रिज्यया सहान्तरे कृते जाता परमशीघ्रफलज्या तुल्यैव। तस्या धनुः परमं शीघ्रफलम्। एवं यद्दिनजाच्छरादेवं शीघ्रफलं साधितं तद्दिनजं मध्यग्रहस्पष्टग्रहान्तरमपि ज्ञात्वे-दमन्तरं परमफलं शीघ्रफलतुल्यं नासीत्। अतोऽन्यत् फलं कल्प्यम्। मध्यस्पष्टांतरं फलयोगः। अस्मात् परमं शीघ्रफलं विशोध्य जातं द्वितीयं फलं तस्य मन्दफल-संज्ञा कृता। एवं प्रत्यहं विलोक्यामाने यस्मिन् दिने परमं मन्दफलं तस्य ग्रहस्य दोर्ज्या त्रिज्याऽभूत। पुनर्दृष्टिप्रतीत्यर्थं विलोक्यमाने परमफलस्थाने दोर्ज्या ग्रहस्य त्रिज्यातुल्या नाभूत्। परमफलदिने दोर्ज्यया त्रिज्यातुल्यया भवितव्यम्। परमत्वात् सा न जाता। अतस्तस्मिन् ग्रहे तथोनं कार्यं यथा राशित्रयं भुजःस्यात्। यन्न्यूनं कार्यं तस्योच्चसंज्ञा। मन्दफलशीघ्रफलानयने मन्दोच्चशीघ्रोच्चसंज्ञे कृते। पुनर्वि-

लोक्यमाने तावतोच्चेन परमत्वं न भवति । अतस्तस्योच्चस्य गतिर्ज्ञाता । तत्रोपायो यथा । अद्यतनश्वस्तनमन्दस्पष्टग्रहयोरन्तरालं मन्दस्पष्टा गतिः । स्पष्टयोरन्तरालं स्पष्टा गतिः । एवमुभयोरुच्चयोरन्तरं कृत्वाऽनुपातः कृतः । स यथा । यद्येभिः परमफलान्तरदिनैरेतावत्य उच्चान्तरकलाः लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन केति ज्ञाते मन्दोच्चशीघ्रोच्चगती । एवं मन्दोच्चगतिश्चन्द्रस्यैव । अन्येषां वर्षेणापि विकला नोत्पद्यते । अस्या गतेः कल्पे उच्चभगणाः पठितास्ते यथा । यद्येकदिनेनैतावती गतिस्तदा कल्पकुदिनैः किमिति एवं प्रसाध्योच्चभगणाः कल्पसौरवर्षैरेते ४८० लभ्यते तदा कल्पगताब्दैः किमिति । अनुपाताद्ग्रन्थादौ रवेर्मन्दोच्चं २।१७।४६। ४१। सप्तभिर्वर्षैरवेर्मन्दोच्चगतिरेका १ विकला लभ्यते । अत आचार्येण स्थिरं निबद्धम् । बहुकाले ये गणकतिलका उत्पत्स्यन्ते ते अनेनैवानुपातेन रचयिष्यन्ति एवं मन्दोच्चशीघ्रोच्चवासना सर्वेषां ग्रहाणां संक्षिप्तोक्ता ग्रन्थविस्तरभयात् ॥ १

चन्द्रिका—ग्रह या ग्रहकेन्द्र यदि ३ राशि से न्यून हो तो वही भुज होता है। यदि ३ राशि से अधिक हो तो ६ राशि के साथ अन्तर करने से तथा यदि ९ राशि से अधिक ग्रह या केन्द्र हो तो उसे १२ राशि में घटाने से शेष भुज होता है। भुज को ३ राशि में घटाने से कोटि होती है। तीन-तीन राशियों का एक-एक पद होता है। सूर्य का मन्दोच्च ७८ अंश अर्थात् २ राशि १८ अंश होता है। १

उदाहरण—बुध केन्द्र १०।५।२६।४६। यह ९ राशि से अधिक है अतः इसे १२ राशि में घटाने से भुज होगा।

१२।०। ०। ०
१०।५।२६।४६
———————
१।२४।३३।१४

यह भुज हुआ। इसे ३ राशि में घटाने से कोटि होगी।

३। ०। ०। ०
१।२४।३३।१४
———————
१। ५।२६।४६=कोटि

सूर्यमन्दफलानयनम् —

मन्दोच्चं ग्रहवर्जितं निगदितं केन्द्रं तदाख्यं बुधैः
केन्द्रे स्यात् स्वमृणं फलं क्रियतुलाद्येऽथो विधेयं रवेः ।
केन्द्रं तद्भुजभागखेचरलवोनघ्ना नखास्ते पृथक्
तद्गोंशोननगेषुभिः परिहृतास्तेंशादिकं स्यात् फलम् ॥ २

मल्लारिः—एवं सूर्यमन्दोच्चमुक्त्वेदानीं केन्द्रं सूर्यमन्दफलसाधनं चैकवृत्तेनाह मन्दोच्चमिति । ग्रहेण वर्जितं हीनं यन्मन्दोच्चं तत् तदाख्यं मन्दमेवाख्या नाम यस्येति मन्दकेन्द्रं बुधैरतीन्द्रियदृग्भिराचार्यैर्निगदितं प्रोक्तम् । क्रियतुलाद्ये केन्द्रे क्रियो मेषस्तुला प्रसिद्धा एतदाद्ये फलं मन्दफलं शीघ्रफलं वा वक्ष्यमाणं स्वमृणं स्यात् । एतदुक्तं भवति । केन्द्रे मेषादिषड्राशिस्थे फलं धनं तुलादिषड्राशिस्थे फलमृणम् । अत्र केन्द्रवासना । मन्दोच्चस्याल्पगतित्वात् ग्रहगतिबाहुल्याच्च मन्दोच्चरहितो ग्रहः कृतस्तस्य केन्द्रसंज्ञा । अत्र मुहुर्व्यावृत्तितः केन्द्रशब्दस्यार्थो न ज्ञायते केन्द्रशब्देन वृत्तस्य मध्यमुच्यते । अथ ग्रहस्फुटस्थानं ज्ञातुं बुद्धिमद्भिराचार्यैरतीन्द्रियज्ञैर्यन्त्रादिवेधेन वृत्तत्रयं कल्पितं तेषां यानि मध्यचिह्नानि तानि केन्द्रसंज्ञानि वृत्तस्य मध्यं किल केन्द्रमुक्तमिति भास्कराचार्यवचनात् । प्रथमं कक्षावृत्तं तत्परिधौ द्वितीयं मन्दनीचोच्चवृत्तं तत्परिधौ तृतीयं शीघ्रनीचोच्चवृत्तं तत्परिधौ ग्रहः स भूमध्याद्राशिमण्डलगामिसूत्रस्थो यस्मिन् राश्यवयवे दृश्यते तत्रस्थः स्फुटो ज्ञेयः कक्षापरिधिस्थितमन्दनीचोच्चवृत्तपरिधौ शीघ्रनीचोच्चवृत्तमध्यपरिधिज्ञानाय मन्दकेन्द्रकल्पितम् । भूमध्याद् दूरे नीचोच्चवृत्तस्य यः प्रदेशस्तस्योच्चसंज्ञा तदुच्चं यावद्ग्रहाद्विशोध्यते तावन्मन्दनीचोच्चवृत्तयोरन्तरज्ञानं भवति । तस्मादपि शीघ्रनीचोच्चवृत्तपरिधाववस्थितस्फुटज्ञानाय शीघ्रकेन्द्रं कल्पितं तस्मिन् केन्द्रचिह्ने ग्रहस्तिष्ठतीति भावः । यद्यप्यत्र ग्रहभगणापेक्षया मन्दोच्चभगणा अल्पा इति मन्दोच्चेन हीनो ग्रहो मन्दकेन्द्रमिति वक्तुमुचितं तथापि ग्रहवर्जितमुच्चं केन्द्रमिति यदुक्तं तदपि भगणानां प्रयोजनाभावाद्दोर्ज्यादिसाम्येन फलेऽपि वैलक्षण्याभावादेकोक्त्या मन्दफलयोर्धनर्णताकथनलाघवाच्च युक्तमेवेति ध्येयम् । एवं केन्द्रवासना ।

अथ केन्द्रकथनानन्तरं रविमन्दफलं साधयति । तद्भुजभागखेचरलवोनघ्ना नखा इति । तस्य रविमन्दकेन्द्रस्य ये भुजभागास्तेषां यः खेचरलवो नवमांशस्तेन ऊना ये नखा विंशति २० मितास्ते तेनैव नवमांशेन गुण्यास्ततस्ते पृथक् अन्यत्रैकान्ते स्थाप्यास्तेषां गोंशेन नवमांशेनोना ये नगेषवः सप्तपञ्चाशत् ५७ तैर्लब्धांशैः परिहृता भक्तास्ते पृथक्स्था अंशादिकं भागादिकं रवेर्मन्दफलं स्यात् ॥

अत्रोपपत्तिः। समायां भूमावभीष्टत्रिज्यामितेन कर्कटेन वृत्तमालिख्य दिगङ्कितं कुर्यात् पूर्वात् प्रभृति मेषादीन् राशीन् परिकल्प्य राशौ च त्रिंशद्भागानङ्कयेत् ततो ग्रहमन्दोच्चं यत्र राशौ भागे लिप्तायां वर्तते तत्र चिह्नं कृत्वा ततो भूमध्यं यावद्रेखां कुर्यात् तत्र मध्यात् ग्रहपरममन्दफलज्यापरिमितं सूत्रं प्रतीपं निःसार्य चिह्नं कार्यं ततश्चिह्नात् पूर्वकर्कटेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तन्मन्दप्रतिमण्डलं तस्य तत्रात्युच्चता तत्रोच्चव्यपदेशः। एतदपि पूर्ववदत्युच्चतायां राश्यादिभिरंकयेत्। एवं स्थिते कक्षायां ग्रहो यत्र वर्त्तते मध्यमस्तत्र चिह्नं कारयेत् ततो हि परममन्दफलज्याव्यासार्धेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तन्मन्दनीचोच्चवृत्तं तद्भागांकितं च। ततः प्रतिमण्डलोच्चप्रदेशात् तद्वृत्तमनुलोमं ग्रहप्रदेशमानीय ग्रहचिह्नं तस्य मध्यं कारयेत्। एवं स्थिते परिधेः प्रतिमण्डलपरिधेश्च सम्पातो यस्तत्र पारमार्थिको ग्रहः। ननु सम्पातत्रयं तिष्ठति तेषां मध्ये कतमेनैव भवितव्यम्। अत्रोच्यते। उच्चरेखायाः कक्षामण्डलपरिधेश्च यः सम्पातस्तस्माद्यावति दूरे मध्यमो ग्रहः स्थितस्तावत्येव दूरे प्रतिमण्डलमतोच्चतो भुजज्या गृहीता कक्षामण्डलप्रतिमण्डलयोस्तुल्या भवति। सा भुजज्या स्वमन्दपरिधिवृत्ते तच्चापं मन्दफलम्। अत्र रवेर्मन्दपरिध्यंशाः १३।४३।४२ अस्मादनुपातः। यदि भांशपरिधेः ३६० त्रिज्यामितं १२० व्यासार्धं लभ्यते तदा एषां परिधिभागानां किमिति तेषां त्रिज्या १२० गुणो भगणांशः ३६० भागहारः। अत्र गुणहारौ गुणेनापवर्त्य हरस्थाने त्रयो लब्धास्तस्मात् त्रिभक्ताः परिधयः परिधीनां व्यासार्धानि स्युस्ताः परमफलज्या एवं रवेः परमफलज्या ४।३४।३४ यस्या धनुः सूर्यस्य परममन्दफलम् २।१०।४५। एवं चन्द्रादीनामपि परममन्दफलानि साध्यानि। इयं फलोपपत्तिः पूर्वोक्तफलयुक्तिमूला। यथेष्टफलं साध्यते। तत्र त्रिज्यातुल्यया दोर्ज्यया यदेदं परममन्दफलं तदेष्टकेन्द्रदोर्ज्यया किमिति एवमिष्टफलानि साध्यानि। तत्राचार्येणास्मिन् ग्रंथे धनुर्ज्ये न साधिते जीवां विना फलादिसिद्धिर्न स्यात् भागेभ्यस्त्रैराशिकासम्भवात् वृत्तक्षेत्रे यत् परिध्याश्रितं तत् त्रैराशिकेन न सिध्यति वर्गात्मकत्वात्। अत एवाह भास्करः—'वर्गं वर्गपदं घनं घनपदं सन्त्यज्य यद्गण्यते तत् त्रैराशिक' मिति। अतो जीवां विना फलसिद्धिर्न। अत्र धनुर्ज्ये न क्रियेते इत्याचार्येण ग्रन्थादौ प्रतिज्ञा कृताऽस्ति फलसिद्धिरपि कृताऽस्ति तत्र का युक्तिरिति केचिदल्पमतयोऽत्र मुह्यन्ति। अत्रोच्यते। तत्राचार्येण जीवाप्रतिफलं खण्डैर्विना फलमध्ये साधितमस्ति॥

उक्तं च—

कोट्यंशवर्गेण तदङ्घ्रिणा च द्विघ्नोनयुक्ताः खखभूगजाश्च।
आद्यो गुणस्तेन गुणाः खसूर्यास्त्वन्यो हरस्तेन हृता क्रमज्या॥

अथ वा भुजभागानां नवांशेन ऊना हता द्वाविंशतिः २२ खार्क १२० मिते व्यासार्धे क्रमज्या भवति। अत्राचार्येण रविमन्दफलानयने त्रिज्या शत–१०० मिता धृता तत इष्टजीवा साधिता। सा यथा। परमभुजांशा नवतिः ९०। एषां नवांशेन १० विंशतिः २० ऊना ततस्तेनैव हता जाता त्रिज्या १००। एवमिष्ट-भागेभ्योऽपि इष्टा जीवा स्यात्। अत एवोक्तं तद्भुजभागखेचरलवोनघ्ना नखा इति। इयं त्रिज्या केन भक्ता परमं मन्दफलं स्यात्। अत इयमेव परमफलभक्तो जातो हारः सावयवः ४५।५३।२०। अत्र लाघवार्थं नगेषवो गृहीताः। अत्र हारान्तरम् ११।६।४० इदं नवभिः सवर्णितं जातमूर्ध्वस्थाने निःशेषं शतं १०० सैव त्रिज्या। एवं दोर्ज्यानवांशहीननगेषुभिर्भक्ता लब्धं फलं स्यादत उक्तं ते पृथगित्यादि। अथ धनर्णोपपत्तिमाह-मन्दप्रतिमण्डलपरिधेर्मन्दोच्चपरिधेश्च सम्पाताद्यत् सूत्रं भूमध्यं नीयते तस्य कक्षामण्डलपरिधेश्च मध्यमग्रहादपरेण सम्पातस्तत्र पारमार्थिको ग्रहः स च मध्यादूनोऽपरेण स्थितत्वात् मध्यग्रहस्य कक्षायाः सूत्रयोगस्य च यदन्तरं तत्फलमतस्तेनोनो मध्यमः स्फुटो भवति। प्रथम-पदे भुजज्या वर्द्धते फलमपि वर्द्धते द्वितीयपदे प्रथमानीतं फलमपचीयते तच्चाल्पं भवति पदादर्वाक् पदान्ते च तुल्यं तुल्यत्वात् ऋणधनयोर्नाशे सति फलाभाव-स्तृतीयपदे भुक्तस्य भुजज्या भवति तत्र मध्यमग्रहप्रदेशे प्रतिमण्डलोच्चप्रदेशान्नी-चोच्चवृत्तं यावदानीयते। तस्य कक्षापरिधेश्च यः सम्पातः स मध्यग्रहात् पूर्वेणैव भवति तस्य मध्यग्रहस्य चान्तरं फलं तेन मध्यमोऽधिकः सन् स्फुटो भवति स्फुटग्रहात् मध्यस्योनत्वात् तृतीयपदे भुजज्या वर्द्धते चतुर्थपदे फलमप चीयते पदान्ते फलाभावोऽतो मेषादिकेन्द्रे ऋणं तुलादिकेन्द्रे धनमित्युपपन्नाम्। परमिदं मृदूच्चेन हीनो ग्रहो मन्दकेन्द्रमिति पक्षे च कल्प्यते। इह तु केन्द्रस्यैव व्यत्यस्तत्वाद्धनर्णत्वयोरपि व्यत्यासेन भाव्यमत उक्तं केन्द्रे स्यात् स्वमृणं फलं क्रियतुलाद्य इति॥ २

चन्द्रिका—मन्दोच्च से (मध्यम) ग्रह को घटाने से मन्द केन्द्र होता है। केन्द्र यदि मेषादि ६ राशियों में हो तो फल धन तथा तुलादि ६ राशियों में हो तो फल ऋण होता है। सूर्य केन्द्र का भुज बनाकर अंशादि भुज में ९ का भाग देने से प्राप्त अंशादि लब्धि को २० में घटाकर शेष को लब्धि से ही गुणा करके पृथक्-पृथक् दो स्थानों में रखें। एक स्थान में ९ का भाग देकर लब्धि को ५७ में घटाकर शेष से द्वितीय स्थान वाली संख्या में भाग देने से सूर्य का अंशादि मन्दफल होता है। [भाग देते समय दोनों राशियों को सजातीय कर लेना चाहिए]। २

सूत्र—

$$\frac{\left(२० - \frac{\text{अंशादि भुज}}{९}\right)\frac{\text{अंशादि भुज}}{९}}{९} = \text{लब्धि}$$

५७ − लब्धि = शेष

$$\frac{\left(२० - \frac{\text{अंशादि भुज}}{९}\right)\frac{\text{अंशादि भुज}}{९}}{\text{शेष}} = \text{मन्दफल}$$

उदाहरण – मध्यमसूर्य ७।१३।४७।२३ मन्दोच्च ७८ अंश मन्दोच्च को राश्यादि बनाया तो २।१८ हुआ। इसमें सूर्य को घटाकर मन्द केन्द्र ज्ञात किया। यथा—

२।१८
७।१३।४७।२३
―――――
७। ४।१२।३७   सूर्य का मन्द केन्द्र

केन्द्र ३ राशि से अधिक है अतः ६ राशि के साथ अन्तर करके भुज बनाया--

७।४।१२।३७
६
―――――
१।४।१२।३७   भुज
३४।१२।३७   अंशादि भुज

९) ३४।१२।३७ (३।४८।४
२७
―――
७ × ६०
४२०
१२
―――
४३२
३६
―――
७२
७२
―――
× ३७
३६
―――
१

अंशादि लब्धि को २० में घटाकर लब्धि से गुणा किया।

२०
३।४८।४
―――――
१६।११।५६
३।४८। ४
―――――
४८। ३३।१६८
७६८।५२८।२६८८
६४। ४४।२२४
―――――
४८।८०१।७६०।२७३२।२२४

६० से अपवर्तित करने से गुणनफल ६१।३४।२५।३५। ४४।

गुणनफल ६१।३४।२५ को दो स्थानों में स्थापित कर एक स्थान में ९ का भाग दिया—

९) ६१।३४।२५ (६।५०।२९
५४।
———
७ × ६०
४२०
३४
———
४५४
४५
———
४ × ६०
२४०
२५
———
२६५
१८
———
८५
८१
———
४

लब्धि को ५७ में घटाकर शेष से द्वितीय स्थान वाली संख्या में सजातीय करके भाग दिया——

५७। ०। ०
६।५०।२९
———
५०। ९।३१
५० × ६० = ३०००
९
———
३००९
× ६०
———
१८०५४०
३१
———
१८०५७१ विकला

६१।३४।२५
६०
———
३६६०
३४
———
३६९४ × ६०
२२१६४०
२५
———
२२१६६५ विकला

```
180571) 221665 (1।1३।३९
```

१८०५७१) २२१६६५ (१।१३।३९
१८०५७१
———
४१०९४
× ६०
———
२४६५६४०
१८०५७१
———
६५९९३०
५४१७१३
———
११८२१७
× ६०
———
७०९३०२०
५४१७१३
———
१६७६८९०
१६२५१३९
———
५०७५१

लब्धि १।१२।३९ अंशादि सूर्य का मन्द फल हुआ।

मन्द केन्द्र तुलादि ६ राशियों में होने से साधित मन्दफल ऋण होगा। अतः इसे मध्यमसूर्य में घटाएँगे।

मध्यम सूर्य ७।१३।४७।२३
—१।१३।३९
———
७।१२।३३।४४ मन्दफल संस्कृत सूर्य सिद्ध हुआ।

चन्द्रमन्दफलानयम्—

विधोः केन्द्रदोर्भागषष्ठोननिघ्नाः
खरामाः पृथक् तन्नखांशोनितैश्च।
रसाक्षैर्हृतास्ते लवाद्यं फलं स्याद्
रवीन्दू स्फुटौ संस्कृतौ स्तश्च ताभ्याम्॥ ३

मल्लारिः—एवं रविमन्दफलं प्रसाध्येदानीमेकवृत्तेन चन्द्रफलं साधयति विधोरिति विधोश्चन्द्रस्य यत्केन्द्रं तस्य दोष्णो भुजस्य भागास्तेषां षष्ठेन षडंशेन ऊना रहिता निघ्ना गुणिताश्च खरामास्त्रिशत् ३० ते पृथक् भिन्नस्थाने स्थाप्यास्तेषां पृथक्स्थानां यो नखांशो विंशत्यंशस्तेनोनितो रसाक्षैः षट्पञ्चाशद्भिः ५६ तैः पृथक्स्था हृता भक्ताः सन्तो लवाद्यं भागाद्यं स्पष्टं चन्द्रमन्दफलं स्यात्। ताभ्यां स्व-स्वमन्दफलाभ्यां संस्कृतौ सूर्यचन्द्रौ धनं चेत् तदा युक्तावृणं चेत् तदा

हीनौ तौ स्फुटौ स्पष्टौ स्तः।

अत्रोपपत्तिः। परमं चन्द्रफलं भागाद्यम् ५। ४०। अत्र चन्द्रमन्दफलानयने त्रिज्या पञ्चविंशत्यधिकशतद्वयमिता धृता यांवद्यावदधिका तावत्तावत् फलस्य सूक्ष्मत्वमतः सूक्ष्मत्वार्थमेतावती त्रिज्या २२५। परमभागाः नवतिः ९०। अत्रैषां भुजभागानां षडंशेन १४ ऊनास्त्रिंशत् १५ ततस्तेनैव हृता परमदोर्ज्या भवति २२५। एवमिष्टभागेभ्योऽपीष्टजीवा भवन्ति। अत उक्तं केन्द्रदोर्भागषष्ठोननिघ्नाः खरामा इति। सा त्रिज्या केन भक्ता परमं मन्दफलं स्यादिति ज्ञानार्थं परमफलेनैव भक्ता जातो हरः सावयवः ४४।४५। ० असौ सावयवोऽतो लाघवार्थं रसाक्षाः गृहीताः। अनयोरन्तरं ११।१५। ० एतद्विंशत्या २० सवर्णितं त्रिज्या भवति २२५। अत एवोक्तं तन्नखांशोनितै रसाक्षैस्ते हृता इति स्वस्वमन्दफलसंस्कृतावेव सूर्येन्दू स्फुटौ भवतस्तयोः शीघ्रफलाभावात्॥ ३

चन्द्रिका—चन्द्रमा के केन्द्र को भुज बना कर अंशादि भुज में ६ का भाग देने से जो लब्धि प्राप्त हो उसे ३० में घटा कर शेष को लब्धिगत संख्या से गुणा कर गुणनफल को दो स्थानों में रखें। एक स्थान में २० का भाग देकर लब्धि को ५६ में घटाकर शेष से द्वितीय स्थान वाली संख्या में भाग देने से लब्धि अंशादि चन्द्रमा का मन्दफल होता है। अपने-अपने मन्द फलों से संस्कृत सूर्य और चन्द्र स्पष्ट होते हैं। ३

विशेष—चन्द्रमा का वास्तविक मन्दफल साधन त्रिफल (देशान्तर, चरान्तर, भुजान्तर) संस्कृत चन्द्र से किया जाता है। अतः इसका उदाहरण उक्त संस्कारों के पश्चात् दिखलाया जायेगा।

रविचन्द्रयोः गतिफलानयनम्—

केन्द्रस्य कोटिलवखाश्विलवोननिघ्ना
रुद्रा रवेस्त्रिकुहृताः शशिनो द्विनिघ्नाः।
स्वाङ्गांशकेन सहिताश्च गतौ धनर्णं
केन्द्रे कुलीरमृगषट्कगते स्फुटा सा॥ ४

मल्लारिः—एवं सूर्यचन्द्रयोः स्फुटत्वमुक्त्वेदानीं तयोर्गतिस्पष्टीकरणमेकवृत्तेनाह केन्द्रस्येति। केन्द्रस्य रवेर्वा चन्द्रस्य यन्मन्दकेन्द्रं तस्य कोटिलवा भुजोनं त्रिभं कोटिस्तस्या लवा भागास्तेषां यः खाश्विलवो विंशत्यंशस्तेन ऊना हीना निघ्ना गुणिताश्च रुद्रा एकादश ११ कार्याः। ततस्ते चेद्रवेस्तदा त्रिकुभिस्त्रयोदश-१३ भिर्हृता भक्ताः सन्तो रवेर्गतिफलं कलाद्यं स्यात्। शशिनश्चन्द्रस्य चेत्

तर्हि द्विनिघ्ना द्वाभ्यां निहन्यते गुण्यते तथाभूताः सन्तः स्वाङ्गांशकेन सहिता युक्तास्तच्चन्द्रगतेः फलं तत्फलद्वयं स्वस्वमध्यमगतौ कुलीरमृगषट्कगते केन्द्रे। कुलीरः कर्कः। मृगो मकरः। ततः षट्के धनर्णं कार्यं कर्कादिषड्राशिस्थे केन्द्रे धनं मकरादिषड्राशिस्थे ऋणं कार्यं सा गतिः स्फुटा भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अद्यतनश्वस्तनस्पष्टग्रहयोरन्तरं स्पष्टगतिस्तथाऽद्यतनश्वस्तनयोर्ग्रहफलयोरन्तरं गतिफलं तज्ज्ञानार्थमुपायः। प्रथमपदादौ भुजज्या शून्यं तत्र ग्रहफलमपि शून्यं तत्र कोटिज्या परमा तत्र गतिफलमपि परमं यथा-यथा ग्रहफलस्य वृद्धिस्तथा-तथा गतिफलस्यापचयो दृश्यते। एवं कोटिज्यायाः परमत्वे गतिफलस्य परमत्वं कोटिज्याऽभावे गतिफलाभावः। अतः केन्द्रकोटिज्यातो गतिफलसाधनं कर्त्तुं युज्यते। तद्यथा। अत्रोभयत्रापि त्रिज्या सपादैकोनत्रिंशन्मिता २९।१५ धृता। तत्साधनं यथा। कोटिभागानां परिमाणं ९० नखांशेन २०।३० ऊना रुद्रास्ततो हता जाता त्रिज्या २९।१५ एवमिष्टांशेभ्य इष्टा स्यादेव। अत एवोक्तं कोटिलवखाश्विलवोननिघ्ना इति। ततो दोर्ज्यातः फलसाधनं रवेः परमं गतिफलं २।१५त्रिज्या २९।१५केन भक्ता सतीदं स्यादतस्तेनैव त्रिज्या भक्ता जातो हरस्त्रयोदश१३। अतो रवेस्त्रिकुहृता इति। एवं चन्द्रस्य परमगतिफलम् ६८।१५। अत्र दोर्ज्या केन गुणिता सतीदं फलं स्यादतस्त्रिज्या भक्तं फलं जातं गुणस्थाने २।२० अत्र द्वावेव गृहीतावत उक्तं शशिनो द्विनिघ्ना इति। एवं द्विगुणत्रिज्यायां जातं ५८।३० अस्य परमगतिफलस्य चान्तरमिदं ९।४५ षड्भिः सवर्णितं जातं तत्तुल्यमेव। अतः स्वाङ्गांशकेन सहिता इति। तच्चन्द्रगतेः फलम् तत्फलद्वयं स्वस्वमध्यगतौ देयमेवं स्फुटा गतिः अथ धनर्णोपपत्तिः। तत्र तावदुच्चोनो ग्रहः केन्द्रमित्यस्मिन् पक्षे मकरादिकेन्द्रे ग्रहस्य धनफलस्यापचयान्मृगादिकेन्द्रे गतिफलमृणं वर्धते। मेषादिकेन्द्रे ग्रहस्य ऋणफलवृद्धौ सत्यां गतिफलमृणमपचीयते। अतो मृगादिके षड्भे केन्द्रे गतिफलमृणम्। कर्क्यादिकेन्द्रे ग्रहस्य ऋणफलह्रासे गतेर्धनफलम् वर्धते। तुलादित्रये केन्द्रे ग्रहधनफलवृद्धौ गतेः फलमपचीयते। अतः कर्क्यादिषड्भे धनमिति युक्तम्। ग्रहोनमुच्चं केन्द्रमित्यस्मिन्नपि पक्षे मकरादित्रिके ऋणफलवृद्धिर्मेषादित्रिके धनफलह्रासः। अतो मकरादिषड्भे गतिफलमृणमेव। एवं कर्क्यादिषट्के धनमिति। अतो युक्तियुक्तं धनर्णं केन्द्रे कुलीरमृगषट्कगत इति ॥ ४

चन्द्रिका—सूर्य और चन्द्रमा का गतिफल साधन--

सूर्य और चन्द्रमा के केन्द्र से कोटि बनाकर उसके अंशादि मान में २० का भाग देकर लब्धि को ११ में घटाकर शेष को लब्धि से ही गुणाकर

गुणनफल में १३ से भाग देने पर सूर्य का गतिफल होता है। तथा उक्त गुणनफल को २ से गुणा कर उसमें उसी का षष्ठांश मिलाने से चन्द्रमा का गतिफल होता है। मन्द केन्द्र यदि कर्कादि ६ राशियों में हो तो गति-फल धन तथा मकरादि ६ राशियों में हो तो फल ऋण होता है। ४

उदाहरण——चन्द्रमन्दफल के साथ दिया गया है।

पलभाज्ञानाच् चरखण्डज्ञानम्——

मेषादिगे सायनभागसूर्ये
दिनार्द्धभा या पलभा भवेत् सा।
त्रिष्ठा हता स्युर्दशभिर्भुजङ्गै-
र्दिग्भिश्चरार्धानि गुणोद्धृताऽन्त्या ॥ ५

मल्लारिः—एवं रविचन्द्रगतिस्पष्टीकरणं कृत्वेदानीं पलभाचरखण्डकानि चैकवृत्तेनाह। मेषादिग इति। अयनस्य भागा अयनांशा अग्रे वक्ष्यमाणाः तैः सह वर्तमानो युक्तो यः सूर्यस्तस्मिन् सूर्ये मेषादिगे राशिभागकलादिना शून्यमिते सति तस्मिन् दिने दिनार्धे मध्याह्ने समभुवि द्वादशांगुलशंकुर्निवेश्यः शंकुलक्षण-मुक्तं भास्करेण—

'समतलमस्तकपारिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शंकुरिति।'[1]

एवं तस्य शंकोर्मध्याह्ने भा छाया या भवति सा पलभा भवेदित्यर्थः। सा पलभा त्रिष्ठा त्रिषु स्थानेषु तिष्ठतीति त्रिष्ठा। दशभिः १० भुजङ्गैरष्टाभिः ८ दिग्भिः १० हता गुणिता ततोऽन्तिमा गुणैस्त्रिभिः ३ उद्धृता भक्ता सती त्रीणि चरखण्डकानि भवन्ति।

अत्रोपपत्तिः—सायनसूर्यो यद्दिने मेषादौ तद्दिने सूर्यस्य नाडिकामण्डले स्थितिः। नाडिकामण्डलं लंकापूर्वापरम्। अतस्तद्दिने मध्याह्ने लंकायां शंकुच्छाया नास्ति खमध्यस्थितत्वात्। अन्यदेशं तु पूर्वापरं सममण्डलमतस्तद्दिनेऽपि मध्याह्नेऽन्यदेशे शंकुच्छाया भवति सैव पलभा। तस्याः पलभा विषुवतीति च पर्यायः। एवमत्रैकांगुलां पलभां प्रकल्प्य "अक्षप्रभा सङ्गुणिताऽपमज्ये" त्याद्युक्त प्रकारेण राशित्रयस्य चराणि प्रसाध्य तान्यधोऽधः शुद्धानि जातानि चरखण्ड-कानि १०।८।३। ततोऽनुपातः यद्येकांगुलयाऽक्षप्रभया एतावन्मितानि चरखण्ड-कानि तदेष्टाक्षप्रभया कानीति। एवमक्षप्रभा त्रिष्ठा एभिः पृथग्गुणिता हरेण हृता सतीष्टचरखण्डानि भवन्तीति। अत्रैतत् त्रैराशिकं सुखार्थमङ्गीकृतम्।

१. सि. शि. गो. य. अ. ९

अप्राप्तावपि प्राप्तिः कृता वृत्तक्षेत्रे परिध्याश्रितत्वात्। अतो विरोधः प्रतिभाति स वक्तुं न शक्यते यन्महद्भिराचार्यैरङ्गीकृत तद्दोषयुक्तमप्यदुष्टम्। यावदष्टांगुलाक्षप्रभा तावदन्तरं नास्ति तत्परतः सान्तराणि भवन्तीति बुद्धिमद्भिर्विलोक्यम्॥ ५

चन्द्रिका--मेषादि विन्दु पर जिस समय सायन सूर्य जाता है उस समय मध्याह्नकालिक शङ्कुच्छाया पलभा कहलाती है। पलभा को तीन स्थानों में रखकर क्रम से एक स्थान में १० से, दूसरे स्थान में ८ से तथा तीसरे स्थान में १० से गुणा करें। तीसरे स्थान के गुणन फल में ३ का भाग दें। इस प्रकार तीन चर खण्ड होंगे।

विशेष - प्रत्येक स्थान की पलभा भिन्न-भिन्न होगी अतः चरखण्ड भी अलग-अलग ही आयेंगे।

उदाहरण—वाराणसी की पलभा ५।४५ है। इसे तीन स्थानों में रख कर क्रम से १०, ८ और १० से गुणा किया—

५।४५	५।४५	५।४५
× १०	× ८	× १०
५०।४५०	४०।३६०	५०।४५०
५७।३०	४६।०	५७।३०

तृतीय गुणनफल को तीन से भाग दिया

३)५७।३०(१९।१० इस प्रकार ५७, ४६, १९ ये तीन चर खण्ड हुये।
३
२७
२७
× ३०
३०
×

चरफलसाधनम्—

स्यात् सायनोष्णांशुभुजर्क्षसङ्ख्या-
चरार्धयोगो लवभोग्यघातात्।
खाग्न्याप्तियुक्तस्तु चरं धनर्णं
तुलाजषट्के तपनेऽन्यथाऽस्ते॥ ६

मल्लारिः—अथ चरसाधनमेकवृत्तेनाह स्यादिति। सायनोऽयनांशयुक्तो य उष्णांशुः सूर्यस्तस्य भुजस्तस्य ऋक्षाणि राशयस्तत्सङ्ख्यानि यानि चरार्धानि चरखण्डानि तेषां योगो लवैर्भागैर्भोग्यस्य खण्डस्य यो घातो गुणनं तस्माद् या खाग्न्याप्तिस्त्रिशद्भागाप्तिस्तस्या युक्तः स खण्डयोगश्चरं पलात्मकं स्यात्। तच्चरं तपने सूर्ये तुलाजषट्के धनर्णं स्यात्। तुलादिषट्के धनं मेषादिषट्के ऋणम्। इदमुदये सूर्योदयकालीनग्रहसाधने। अस्तं सायंकालीनग्रहसाधनेऽन्यथा उक्तवैपरीत्यं तुलादावृणं मेषादौ धनम्।

अत्रोपपत्तिः। चरं नाम लकार्कोदयरेखार्कोदययोरन्तरमतस्तद्दक्षिणोत्तरम्। तत्साधनायोपायः। अत्र प्रतिराशिखण्डानि सन्त्यतो भुजराशिमितखण्डयोगः कर्त्तव्यः शेषात् त्रैराशिकम्। यदि त्रिशद्भिः ३० भागैरेष्यखण्डतुल्यं चरं लभ्यते तदा शेषभागैः किमिति सुगमम्।

अथ धनर्णोपपत्तिः—जाता ग्रहा लंकार्कोदयकालीना रेखार्कोदयकालीनाः कार्याः। तच्च लंकायां यद् क्षितिजं तस्योन्मण्डलसंज्ञा। अन्यदेशीयस्य क्षितिजस्य क्षितिजसंज्ञैव। उत्तरगोले उन्मण्डलार्कोदयात् पूर्वं क्षितिजार्कोदयः। उन्मण्डलास्तात् पश्चात् क्षितिजास्तमयो यतः क्षितिजादुपर्युन्मण्डलम्। अत उत्तरगोले उदये चरमृणमस्ते च धनम्। दक्षिणगोलेऽस्माद्विपरीतम्। तद्यथा। उन्मण्डलार्कोदयानन्तरं क्षितिजार्कोदयः। उन्मण्डलास्तमयात् पूर्वं क्षितिजास्तमयो यतः क्षितिजादधः उन्मण्डलमतो दक्षिणगोले उदये चरं धनमतस्ते ऋणमित्युपपन्नम्॥ ६

चन्द्रिका—सायन सूर्य का भुज बनाने पर राशिस्थान में जितनी संख्या हो उतने चरखण्डों का योग कर लें। पुनः अंशादि सायन सूर्य को भोग्य चरखण्ड से गुणा करके गुणनफल ३० का भाग देकर लब्धि को पूर्वसाधित योगफल में जोड़ने से चरफल होता है। तुलादि ६ राशियों में सायन सूर्य हो तो चरफल धन तथा मेषादि ६ राशियों में हो तो ऋण होता है। ६

उदाहरण—आगे दिखाया गया है।

चरफलसंस्कारः—

देयं तच्चरमरुणे विलिप्तिकासु
मध्येन्दौ द्विगुणनवोद्धृतं कलासु।
भाप्तं च द्युमणिफलं लवेऽथ वेदा-
ब्ध्यब्ध्यूनः खरसहृतः शकोयऽनांशाः॥ ७

मल्लारिः—अथास्य चरस्य संस्कारं सूर्येन्द्वोश्चन्द्रे द्युमणिफलसंस्कारं-मयनांशसाधनं चैकवृत्तेनाह । देयमिति । तदानीते चरपलात्मकमरुणे सूर्ये विलिसिकासु विकलासु देयम् । तदेव चरं द्विगुणं सन्नवोद्धृतं नव ९ भक्तं मध्येन्दौ मध्यमचन्द्रे कलासु देयम् । भाप्तं सप्तविंशति–२७ भक्तं यत्द्युमणि-फलं सूर्यस्य मन्दफलं तदपि यथागतं धनर्णं भागेषु देयं ततः स्वमन्दफलं देयं स स्फुटश्चन्द्रः स्यात् । अथ सूर्येन्दु स्फुटीकरणानन्तरमयनांशान् साधयति शको वर्त्तमानः शालिवाहनशकः । वेदाब्ध्यब्ध्यूनश्चत्वारिंशदधिकचतुःशत ४४४ हीनस्ततः खरसहृतः षष्टि-६० भक्तोऽयनांशाः स्युः ।

अत्रोपपत्तिः—यदानीतं चरं पलं पलात्मकं तद् ग्रहाणां स्वस्वगतिवशाद्दे-यम् । तद्यथा । यदाऽहोरात्रपलैः ३६०० एभिर्गतिकला लभ्यन्ते तदेष्टचरपलैः किमिति । एवं सर्वेषां ग्रहाणां देयम् । तत्राचार्येणायं संस्कारो रवीन्द्वोरेव कृतः । अन्येषां स्वल्पगतित्वात् स्पल्पान्तरत्वात् त्यक्तः । तत्र रविगतिः षष्टिः ६० तुल्या तयाऽपवर्त्तिते चरपलानि षष्टचा भाज्यानीति जातम् । एवं ताः कला विकलार्थं षष्टिगुणाः षष्टितुल्ययोर्गुणहारयोर्नाशे कृते चरपलतुल्या एवं विकला रवौ देया इत्युपपन्नम् । एवं चरपलानां चन्द्रमध्यगतिः७९० गुणो हरः स एव ३६०० । अत्र गुणहरौ गुणार्धेनापवर्त्त्य जातो गुणः २ । हरः किञ्चिदधिका नव तत्र सुखार्थं नवैव गृहीताः । अतो द्विगुणं नव–९ भक्तं चरं चन्द्रे कलासु देयमिति युक्तमुक्तम् ।

अथ दोः फलोपपत्तिः । देशान्तरफलेन स्वदेशमध्यमार्कोदयकालीना ग्रहाः कृताः । सूर्यस्य मन्दफलेन स्फुटार्कोदयकालीनाः क्रियते । अस्माकं स्फुटार्कोद-येन भवितव्यं मध्यमार्कस्यादृश्यत्वात् । अतस्त्रैराशिकम् । यदि चक्रकलाभिः २१६०० नित्यं प्रवहानिलेन पश्चान्नीयमानाभिर्ग्रहा अहोरात्रवृत्तेन स्वीयगति-तुल्याः कलाः स्वव्यापारेण प्रापयन्ति तदा रविमन्दफलकलाभिरपरेण नीय-मानाभिः किमिति । फलं ग्रहेषु ऋणधनमतः क्रियते । ऋणफले स्फुटार्कस्योन्न-तत्वाद्भुजफलेनोनाः सन्तः स्फुटार्कोदयकालिका भवन्ति । धनफले स्फुटार्काधि-कत्वान्मध्यमार्कात् फलेनाधिकाः सन्तः स्फुटार्कोदयकालीना भवन्ति । एवमत्रा-चार्येणायं संस्कारश्चचन्द्रस्यैव कृतो गतिबाहुल्यात् । अन्येषां स्वल्पगतित्वान्नोक्तः । एवं रविफलं लवाद्यं षष्टिगुणं कलाद्यं स्यात् । तच्चन्द्रमध्यगत्या गुण्यम् । एत्रं गुणघातो गुणाः ४७४३५ चक्रकला २१६०० हारो लवादिफलार्थं षष्टिः ६० च । एवं हरघातो हरः १२९६००० गुणहारौ गुणेनापवर्त्य जातो हरः २७ । अत उक्तं प्राप्तं च द्युमणिफलं लव इति ॥

अथायनांशोपपत्तिः---इष्टदिने दिनार्धे यन्त्रादिवेधेन सावयवानुन्नतांशान् प्रसाध्य तान् नवतेर्विशोध्य शेषांशस्वाक्षांशयोरेकान्यदिशोरन्तरं योगं विधाय तेभ्यः क्रान्तिभागेभ्यः क्रान्तिखण्डकैश्चापं कुर्यात्। स सायनसूर्यस्य भुजः स्यात् तात्कालिकगणितागतस्फुटार्कस्यापि भुजः कार्यस्तद्भुजप्राग्भुजयोरन्तरं तेऽयनांशाः। यदि गणितागतान्मध्याद्भुजोऽधिकस्तदा ते धनाख्याः। ऊनास्तदा ऋणाख्याः। एवमत्रोपलब्धिरेव वासना। एषां प्रतिवर्षमेकैका कला गतिरुत्पद्यते चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशत-४४४मिते शकेऽयनांशाभावोभूत्। प्रतिवर्षं कलावृद्धिरतो वेदाब्ध्यब्ध्यूने शके यावन्ति वर्षाणि तावत्य एवायनांशकलास्ताः षष्टिभक्ता भागा अतः खरसहृत इति। चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतवर्षैं १४४० परमायनचलनस्य व्यावृत्तिर्भवति। तत्र यस्मिन् पक्षे कलोपचयस्तस्मिन्पक्षे चतुर्विंशत्यंशाः परमायनचलनांशाः। यस्मिन् पक्षे चतुःपञ्चाशद्५८ विकला उपचीयन्ते तत्पक्षे सप्तविंशत्यं-२७ शाः परमा उत्पद्यन्ते। अष्टादशशत-१८०० वर्षमध्ये एवमेषां चयापचयवशात् प्रागपरवशाच्च धनर्णसंभवः स्यात्॥ ७

चन्द्रिका--उस (पूर्वसाधित) चरफल का सूर्य की विकला में संस्कार करना चाहिए। उक्तचरफल को २ से गुणाकर ९ का भाग देकर लब्धितुल्य फल का मध्यम चन्द्र को कला विकला में संस्कार करें। सूर्य के मन्द फल को २७ से भाग देकर अशादि लब्धि का चन्द्रमा के अंशादि में संस्कार करें। (इनसे संस्कृत चन्द्रमा त्रिफल संस्कृत चन्द्र कहलाता है।) इष्ट शक में ४४४ घटाकर ६० का भाग देने से लब्धि अंशादि अयनांश होता है। ७

विशेष--उक्तरीति से साधित अयनांश चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का होगा अतः स्वल्पान्तर से यदि वार्षिक अयनगति ५० विकला मान ले तो एक मास की ४।१० विकलादि गति होती है। अतः सूर्य के राशि अंश को ४।१० से गुणाकर गुणनफल को पूर्व साधित अयनांश में जोड़ देने से इष्ट कालिक अयनांश होगा।

उदाहरण--अयनांश साधन--इष्टशक १८९६

१८९६-४४४=१४५२÷६०	६०)१४५२(२४।१२	७२०
लब्धि २४।१२=अयनांश (चैत्र	१२०	६०
शुक्ल प्रतिपदा) इष्टकालिक	२५२	१२०
अयनांश ज्ञात करने के लिए	२४०	१२०
इष्टकालिक सूर्य के राशि अंश	१२×६०	×

७।१२ को ४।१० से गुणा कर गुणनफल ३० विकला को पूर्व साधित अयनांश में जोड़ने से २४।१२।३० इष्टकालिक अयनांश हुआ।

चरसाधन—

मन्दफल संस्कृत सूर्य ७।१२।३३।४४ + अयनांश २४।१२।३०=८।६।४६।१४ = सायनसूर्य।

सायनसूर्य का भुज = २।६।४६।१४ भुज के राशि स्थान में २ संख्या है। अतः क्रम से दो चरखण्डों का योग किया। ५७ + ४६ = १०३ = योग भुज के अंशादि मान ६।४६।१४ को अग्रिम (तृतीय) भोग्य खण्ड १९ से गुणा किया--

$$
\begin{array}{r}
६।४६।१४ \\
\times १९ \\
\hline
११४।८७४।२६६ \\
१२८।\ ३८।\ २६
\end{array}
$$

$$
\begin{array}{l}
३०)१२८(४ \\
\underline{\ \ १२०} \\
\ \ \ \ \ ८
\end{array}
$$

गुणनफल १२८ में ३० का भाग देकर लब्धि ४ को चरखण्डों के योग १०३ में जोड़ने से १०७ चरफल हुआ। इसे कलादि बनाने से १।४७ हुआ। सायन सूर्य तुलादि छः राशियों में है अतः फल धन हुआ।

चरफल संस्कार--मन्दफल संस्कृतसूर्य	७।१२।३३।४४
चरफल	+१।४७
औदयिक स्पष्ट सूर्य	७।१२।३५।३१

त्रिफल संस्कार—उक्त चरफल १।४७ को २ से गुणा किया तथा ९ से भाग दिया तो कलादि २३।४६ लब्धि हुई इसे देशान्तर संस्कृत चन्द्र में जोड़ दिया--

देशान्तर संस्कृत चन्द्र	१।९।५०।३५
	+२३।४६
	१।१०।१४।२१

सूर्यमन्दफल १।१३।३९ में २७ का भाग दिया। लब्धि ०।२।४३ को मन्द फल ऋण होने के कारण घटाया—

१।१०।१४।२१
-०। २।४३
१।१०।११।३८ त्रिफल संस्कृत चन्द्र

चन्द्र मन्दफल साधन--चन्द्रोच्च १०। १४।१।२७
त्रि० सं० चन्द्र १।१०।११।३८
मन्दकेन्द्र ८।२१।२९।४९
-६
भुज २।२१।२९।४९
अंशादि भुज ८१।२।९४९

६)८१।२९।४९(१३/३४।५८
६
२१
१८
३ × ६० = १८०
२९
२०९
१८
२९
२४
५ × ६०
३००
४९
३४९
३०
४९
४८
१

३०। ०। ०
१३।३४।५८
१६।२५। २ शेष

शेष को लब्धि से गुणा किया--

१३।३४।५८
१६।२५। २
२०८।५४४।९२८
३२५।८५०।१४५०
२६। ६८।११६
२०८।८६९।१८०४।१५१८।११६

अर्थात् २२२।५९।२९।२०

गुणनफल को २० से भाग दिया

२०)२२२।५९।२९(११।८।५८
२०
२२
२०
२ × ६०
१२० + ५९
१७९
१६०
१९ × ६०
११४० + २९
११६९
१००
१६९
१६०
९

लब्धि अंशादि को ५६ में घटाकर गुणनफल में सजातीय करके भाग देने से--

५६। ०। ०
११। ८।५८
४४।५१। २ शेष

गुणनफल की एक राशि

२२२
× ६०

१३३२० + ५९ = १३३७९ × ६०
= ८०२७४० + २९

गुणनफल = ८०२७६९

शेष की एक राशि

४४ × ६० = २६४०
५१

२६९१
× ६०

१६१४६०
२

१६१४६२ = शेष

१६१४६२)८०२७६९(४/५८/१८
६४५८४८

१५६९२१
× ६०

९४१५२६०
८०७३१०

१३४२१६०
१२९१६९६

५०४६४
× ६०

३०२७८४०
१६१४६२

१४१३२२०
१२९१६९६

१२१५२४

स्वल्पान्तरतः लब्धि ४।५८।१९
(अर्द्धाधिके रूपं ग्राह्यम्)
= चन्द्रमा का मन्दफल
तुलादि केन्द्र होने से फल ऋण होगा।

मन्दफल संस्कार—त्रिफलसंस्कृतचन्द्र १।१०।११।३८
चन्द्रमन्दफल −४।५८।१९

स्वदेशोदयकालिक स्पष्टचन्द्र १।५।१३।१९

सूर्य गतिफल साधन—सूर्य केन्द्र ७।४।१२।३७
भुज १।४।१२।३७

इसे ३ में घटाकर कोटि बनाया ३। ०। ०। ०
१। ४।१२।३७

१।२५।४७।२३ कोटि

२०)५५।४७।२३(२/४७/२२ अंशादि कोटि = ५५।४७।२३

४०

१५ × ६०
९००
४७
९४७
८०
१४७
१४०
७ × ६०
४२०
२३
४४३
४०
४३
४०
३

लब्धि को ग्यारह में घटाया

११। ०। ०
२।४७।२२
८।१२।३८

पूर्वोक्त रीति से ८।१२।३८ को २।४७।२२ से गुणाकर गुणनफल २२।५४।१० में १३ से भाग दिया

१३)२२।५४।१०(१/४५/४२
१३
९ × ६०
५४०
५४
५९४
५२
७४
६५
९

९ × ६०
५४०
१४
५५४
५२
३४
२६
८

लब्धि १।४५ ।४२ = गतिफल

कर्कादि केन्द्र होने से फल धन होगा।

अतः सूर्य की मध्यम गति में गतिफल जोड़ने से—

५९।८
+ १।४५।४२
६०।५३।४२

चन्द्रगतिफलसाधन--

चन्द्रमन्दकेन्द्र ८।२१।२९।४९

भुज २।२१।२९।४९

कोटि ०। ८।३०।११

अंशादि कोटि में २० का भाग दिया--

२०)८।३०।११(०।२५
0
८×६०
४८०
३०
५१०
४०
११०
१००
१०

लब्धि को ११ में घटाया

११। ०।
०।२५
१०।३५ शेष

लब्धि ०।२५×शेष १०।३५
=४।२४ इसे द्विगुणित कर
६ से भाग दिया

२(४।२४) = ८।४८÷६
=१।२८ लब्धि

६)८।४८(१/२८
६
२×६०
१२०
४८
१६८
१२
४८
४८
×

द्विगुणित गुणनफल ८।४८
लब्धि +१।२८
१०।१६
=चन्द्रमा का गतिफल

कर्कादि केन्द्र होने से फल धन होगा।

अतः चन्द्रमा की मध्यमगति
७९०।३५
+१०।१६

चन्द्रमा की स्पष्ट गति = ८००।५१

पञ्चाङ्गसाधनम्—

भक्ता व्यर्कविधोर्लवा यमकुभिर्याता तिथिःस्यात् फलं
शेषं यातमिदं हरात् प्रपतितं भोग्यं विलिप्तास्तयोः।
भुक्त्योरन्तरभाजिताश्चघटिकायातैष्यकाःस्युःक्रमात्
पूर्वार्धे करणं बवाद्गततिथिर्द्विघ्न्यद्रितष्टा भवेत् ॥ ८
तत् सैकं त्वपरे दलेऽथ शकुनेः स्युः कृष्णभूतोत्तरा-
दर्धाच्चाथ विधोश्च सार्कसितगोर्लिप्ताः खखाष्टोद्धृताः।
याते स्तो भयुती क्रमाद्गगनषड्गिणघ्ने गतैष्ये तयो-
रिन्दोर्भुक्तिहृते जवैक्यविहृते यातैष्यनाड्यः क्रमात् ॥ ९

मल्लारिः—एवं स्पष्टार्कोदयकालीनौ स्पष्टौ सूर्यचन्द्रौ कृत्वेदानीं तिथिनक्षत्रयोगकरणासाधनं वृत्तद्वयेन करोति। भक्ता इति। विगतोऽर्कः सूर्यो यस्मादेवंभूतो यो विधुश्चन्द्रस्तस्य लवा राशींस्त्रिंशता संगुण्य भागेषु संयोज्य लवा भागाः कार्याः ते यमकुभिर्द्वादशभिर्भक्ताः सन्तो यत् फलं तत्तुल्या याता तिथिः स्यात्। यच्छेषं तदपि यातं तद् हरात् द्वादशमितात् प्रपतितं शोधितं सत् भोग्य स्यात्। तयोर्गतगम्ययोर्विलिप्ता विकला भुक्त्योः सूर्यचन्द्रगत्योर्यदन्तरं तेन भाजिता लब्धं यातैष्यका घटिकाः क्रमाद्भवन्ति। यातकलासु हतासु यातघटिकाः पूर्वदिने तस्या एव तिथेर्भुक्तघटिकाः स्युः। एवमेष्यकलासु एष्या। तस्मिन् दिने सूर्योदयमारभ्य तिथेर्घटिकाः स्युरित्यर्थः। अथ करणं साधयति—गततिथिर्द्विघ्नी द्विगुणा अद्रिभिः सप्तभिः ७ तष्टा भक्ता सति तिथेः पूर्वार्धे करणं वर्तमानं स्यात् 'तदेव सैकमेकयुक्तं सत् अपरे दले तिथेरुत्तरार्धे स्यात्। अथ स्थिरकरणचतुष्टयस्य निवेशमाह। कृष्णभूतोत्तरादर्धात्। कृष्णःकृष्णपक्षः। तस्य यो भूतश्चतुर्दशी तस्या उत्तरार्धात् शकुनेः प्रभृति चत्वारि करणानि स्युः। एतदुक्तं भवति। कृष्णपक्षे चतुर्दश्युत्तरार्धे शकुनिः। अमापूर्वार्धे चतुष्पादम्। अपरार्धे नागम्। आद्ये प्रतिपद्दले किंस्तुघ्नं नाम करणम्। एतानि स्थिराणि चत्वारि। अथ करणकथनानन्तरं विधोश्चन्द्रस्य तथा सार्कसितगोः सूर्यचन्द्रयोगस्य लिप्ताः कलाः खखाष्टोद्धृता अष्टशत-८०० भक्ताः फलं क्रमात् याते भयुती नक्षत्रयोगौ भवतः। चन्द्राज्जातं नक्षत्रं योगाद्योग इति। तयोर्नक्षत्रयोगयोर्गतं यत् तदेव हरादष्टशतमितात् शोधितमेष्यम्। ते षष्टिगुणे नक्षत्रार्थमिन्दोश्चन्द्रस्य भुक्त्या गत्या हृते भक्ते योगार्थं सूर्यचन्द्रयोर्जवैक्येन गतियोगेन भक्ते क्रमात् तयोर्यातैष्या नाड्यः स्युरित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः—दर्शान्ते सूर्यचन्द्रौ समौ भवतः। 'दर्शः सूर्येन्दुसङ्गम' इति

स्मरणात् । ततो दर्शान्ताच्चन्द्रो बहुगतित्वादग्रे याति । पुनरमान्ते समौ । तयोरन्तरे चान्द्रमासः । 'दर्शावधिश्चन्द्रमसो हि मास' इति स्मरणात् । तयोरन्तरे त्रिशत् तिथयः । त्रिशत् तिथिभिर्यदि भांश-३६० तुल्यं सूर्यचन्द्रान्तरं लभ्यते तदैकतिथ्या किमिति जाता द्वादशभागा १२ एकतिथौ सूर्यचन्द्रान्तरम् । यदि द्वादशभागतुल्येन रविचन्द्रान्तरेणैका तिथिस्तदेष्टसूर्यचन्द्रान्तरभागैः कियत्य इति । अत्र सूर्यगत्याधिका चन्द्रगतिरतो व्यर्कविधोर्लवा यमकुभिर्भक्ता इति । ततो यच्छेषं तत् यातम् । ग्रहभुक्तत्वात् ततो हि तद्द्वादशशुद्धं भोग्यं स्यात् । एवं ततो घटिकाज्ञानार्थमनुपातः । यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा गतैष्य कलाभिः किमिति । कलाः षष्टिगुणा विकलाः स्युः । अतो यातैष्यविकला गत्यन्तरकलाभक्तास्तिथियातैष्यघटिकाः स्युरित्युपपन्नम् ॥

अथ करणोपपत्तिः—एकतिथौ करणद्वयमित्यागमः ततोऽनुपातः । यद्येकतिथ्या करणद्वयं तदेष्टतिथ्या किमिति । अतस्तिथिर्द्विगुणा कदाचित् सप्ताधिका स्यात् । करणानि सप्तैवातः सप्ततष्टा शेषमितं शुक्लप्रतिपदादितो गततिथिग्रहणात् किंस्तुघ्नादिकं करणं वर्तमानतिथिपूर्वार्धगतं स्यात् । तद्ववादितो गणनार्थं निरेकं कार्यं वर्तमानत्वार्थं च सैकमिति तुल्ययोर्धनर्णक्षेप्ययोरेकयोर्नाशे शेषमितमेव वर्तमानतिथिपूर्वार्धे वर्तमानं करणमिति युक्तम् । तदेव सैकमुत्तरार्धे स्यादिति प्रत्यक्षसिद्धम् । शकुन्यादिकरणचतुष्टयसंस्थानमागमप्रमाणकम् ॥

अथ नक्षत्रसाधनोपपत्तिः—समस्तो भपञ्जरो द्वादशराशिभिर्व्याप्तस्तथा सप्तविंशतिनक्षत्रैश्च । अतो भगणे कलानामेकनक्षत्रकरणायानुपातः । यदि सप्तविंशतिनक्षत्रैश्चक्रकलाः २१६०० भवन्ति तदैकनक्षत्रेण किमिति । अतो जाता अष्टशतकलाः ८०० । अष्टशतकलाभिरेकं नक्षत्रं तदेष्टचन्द्रकलाभिः कियन्तीति लब्धानि गतनक्षत्राणि । शेषं भुक्तं हरशुद्धं भोग्यं स्यादेव । ततोऽन्योऽनुपातः । यदि चन्द्रगतिकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा गतैष्यकलाभिः का इति । कलाः षष्टिगुणा विकलास्ताश्चन्द्रगतिभक्ता नक्षत्रगतैष्यघटिकाः स्युरित्युपपन्नम् ॥

अथ योगवासना—रविचन्द्रयोर्मिलितयोर्यन्नक्षत्रं स योग इत्युच्यते । अतोऽत्रयुक्तिर्नक्षत्रवत् । गतगम्यघटिकार्थमनुपातो गतियोगेन कर्तुं युज्यते योगानयनत्वादिति प्रत्यक्षोपपत्तिः ॥ ८-९

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य जातो रवीन्द्वोः स्फुटताधिकारः ॥ २

इति रविचन्द्रस्पष्टीकरणधिकारो द्वितीयः ॥ २

चन्द्रिका—पञ्चाङ्गसाधन विधि—

तिथिसाधन—स्पष्टचन्द्र से स्पष्ट सूर्य को घटा कर शेष को अंशादि बनाकर १२ से भाग देने पर लब्धि गततिथि होती है। शेष वर्तमान तिथि का यातांश होता है। उसे १२ में घटाने से भोग्यांश होता है। इन दोनों (यातांश और भोग्यांश) की विकला बनाकर सूर्य और चन्द्र की गतियों के अन्तरविकला से भाग देने पर क्रम से वर्तमान तिथि की गत एवं गम्य घटी होती हैं। [दोनों के योग से सम्पूर्ण तिथि का मान होता है।]

करणसाधन—गत तिथि संख्या को २ से गुणा कर ७ का भाग देने से शेष वर्तमान तिथि के पूर्वार्ध में बव आदि करण होते है। उसमें एक जोड़ने से वर्तमान तिथि के उत्तरार्ध में करण होता है। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि आदि (चार स्थिर) करण होते हैं।

नक्षत्रसाधन—स्पष्टराश्यादि चन्द्र की विकला बनाकर उसमें ८०० का भाग देने से लब्धि गतनक्षत्र होता है। शेष वर्तमान नक्षत्र की गत कला होती है इसे ८०० में घटाने से भोग्यकला होती है। गतकला को ६० से गुणाकर चन्द्रगति कला स भाग देने पर वर्तमान नक्षत्र की यात घटी तथा भोग्य कला को ६० से गुणा कर चन्द्रगति कला से भाग देने पर भोग्य घटी होती है। [दोनों का योग नक्षत्र का पूर्णमान होता है।]

योगसाधन स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट चन्द्र का योग कर उसकी कला बना कर ८०० से भाग देने पर लब्धि गत योग होगा। शेष को ८०० में घटाकर वर्तमान योग की भोग्यकला ज्ञात करेंगे। गतकला को ६० से गुणा कर रविचन्द्र की गतिकला के योग की विकला से भाग देने पर वर्तमान योग की भुक्त घटी तथा भोग्य कला को ६० से गुणा करके गतियुति विकला से भाग देने पर योग की भाग्य घटी ज्ञात होती है।

उदाहरण—पञ्चाङ्ग साधन विधि—

तिथिसाधन—

स्पष्ट चन्द्र	१। ५।१३।१९
स्पष्ट सूर्य	७।१२।३५।३१
दोनों का अन्तर	५।२२।३७।४८

५ × ३० = १५० + २२

अंशादि = १७२।३७।४८ इसमें १२ से भाग दिया

१२) १७२।३७।४८ (१४ गतितिथि
१२
——
५२
४८
——
४।३७।४८ शेष, वर्तमान तिथि का यातफल

१२
४।३७।४८
————

७।२२।१२ वर्तमान तिथि का भोग्य पल

चन्द्रगति ८००।५१—सूर्य गति ६०।५३ = ७१९।५८

गत्यन्तर विकला ४४३९८

रविचन्द्र की गत्यन्तर कला से भाग देने के लिए यातैष्य मान को एक जातीय बनाने पर यात विकला १६६६८ तथा भोग्यविकला २६५३२ हुई भाज्य भाजक की एक रूपता के लिए इन्हें फिर ६० से गुणा करने से यात विकला १०००००८० तथा भोग्य विकला १५९१९२० हुई।

यात विकला १०००००८० को ४४३९८ से भाग देने पर लब्धि २२।३१ वर्तमान तिथि पूर्णिमा की गत घटी हुई इसी प्रकार ऐष्य विकला १५९१९२० को ४४३९८ से भाग दिया तो लब्धि ३५।५१ पूर्णिमा तिथि का भोग्य मान हुआ। दोनों का योग २२।३१ + ३५।५१ = ५८।२२ पूर्णिमा का सम्पूर्ण मान हुआ।

करणसाधन—

गततिथि = १४ × २ = २८

२८ ÷ ७ =

७) २८ (४
२८
——
× शेष ०

अतः पूर्णिमा तिथि के पूर्वार्द्ध में विष्टि (७वाँ) करण हुआ। इसमें १ जोड़ने से तिथि के उत्तरार्ध में बव करण होगा। तिथि का आधा करण होता है अतः तिथि मान ५८।२२ का आधा २९।११ विष्टि करण हुआ।

विशेष—विष्टि को ही भद्रा कहते हैं। तिथि के आधे में तिथि का गत मान घटाने से सूर्योदय के बाद भद्रा की या अन्य करणों के घटी पल का मान आयेगा। यथा—तिथिका यातमान २२।३१ तिथ्यर्ध २९।११। २९।११—२२।३१=६।४० सूर्योदय के बाद भद्रा का मान हुआ। यदि तिथि का यात मान तिथ्यर्ध से अधिक हो तो अग्रिम करण का सूर्योदय के बाद का मान आयेगा।

नक्षत्र साधन—स्पष्टचन्द्र ११५।१३।१९। इसे कलादि बनाया तो २११३।१९ हुआ। चन्द्रगति विकला ४८०५१

```
८००) २११३।१९ (२
     १६००
     ------
      ५१३।१९
```

कलादिचन्द्र २११३।१९ में ८०० से भाग दिया तो लब्धि २ (भरणी) गत नक्षत्र हुई शेष ५१३।१९ अग्रिम नक्षत्र कृत्तिका का गत मान हुआ इसे ८०० में घटाने से शेष २८६।४१ कृत्तिका का भोग्य मान हुआ। गतमान ५१३।१९ का एक जातीय मान ३०७९९। भाज्य भाजक की एकरूपता हेतु इसे ६० से गुणा कर गुणनफल १८४७९४० में गतिविकला ४८०५१ का भाग दिया—

```
४८०५१) १८४७९४० (३८।२७
        १४४१५३
        -------
         ४०६४१०
         ३८४४०८
         -------
          २२००२
          × ६०
        -------
        १३२०१२०
         ९६१०२
         -------
          ३५९१००
          ३३६३५७      अतः कृत्तिका की गतघटी ३८।२७
          -------
           २२७४३
```

इसी प्रकार कृत्तिका की भोग्य कला २८६।४१ की एकराशि बनाया तो १७२०१ हुआ इसे ६० से गुणा कर गुणनफल १०३२०६० में गति विकला ४८०५१ का भाग दिया--

```
४८०५१) १०३२०६० (२१।२८
        ९६१०२
        ------
         ७१०४०
         ४८२०१
        ------
        २२८३९
        × ६०
        -------
         १३७०३४०
         ९६१०२
        -------
          ४१८३२०
          ३८४४०८      लब्धि २१।२८ कृत्तिका का भोग्य
        ---------
           ३३९१२      मान हुआ
                        २१।२८      भोग्य
                        ३८।२७      भुक्त
                       -------
        कृत्तिका का पूर्ण मान  ५९।५५
```

योग साधन—स्पष्ट सूर्य ७।१२।३५।३१ स्पष्ट चन्द्र १।५।१३।१९
सूर्य गति ६०।५३ चन्द्रगति ८००।५१

स्प. सूर्य	७।१२।३५।३१	सूर्य गति	६०।५३
स्प. चन्द्र	१। ५।१३।१९	चन्द्र गति	८००।५१
सू. च. योग	८।१७।४८।५०	गतियोग	८६१।४४

सूर्यचन्द्र के कलात्मक मान १५४६८।५० में ८०० का भाग दिया--

```
८००) १५४६८।५० (१९
     ८००
     -----
     ७४६८
     ७२००
     -----
     २६८।५०
```

लब्धि तुल्य गत योग परिघ तथा वर्तमान 'शिव' योग। शेष वर्तमान शिव योग की गत कला २६८।५० को ८०० में घटाया। शेष ५३१।१० शिव योग की भोग्य कला। पूर्वोक्त रीति से यात और ऐष्य कला को एक राशि बनाकर ६० से गुणा कर रवि चन्द्र की गति-युति विकला ५१७०४ से पृथक्-पृथक् भाग दिया तो क्रम से शिव योग की यात घटी १८।४३ तथा भोग्य घटी ३६।५९ प्राप्त हुई। इस प्रकार शिव योग का पूर्णमान ३६।५९+१८।४३=५५।४२ हुआ।

श्रीगणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के रविचन्द्र-स्पष्टाधिकार की रामचन्द्र पाण्डेय कृत चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण। २

३. पञ्चतारास्पष्टाधिकारः

भौमस्य शीघ्रफलाङ्काः--

खमष्टमरुतोऽद्रिभूभुव उदध्यगोर्व्योऽष्टदृग्-
दृशो नवनगाश्विनोऽक्षदशनाः शराङ्गाग्नयः ।
गुणाङ्कदहनाः खखाब्धय इभाङ्गरामाः क्रमात्-
नवाम्बुधिदृशो नभः क्षितिभुवश्चलाङ्का इमे ॥ १

मल्लारिः—अथ पञ्चातारास्पष्टीकरणाधिकारो व्याख्यायते । तत्रादौ भौमादीनां सिद्धानि शीघ्रफलानि पंचवृत्तेन वदति । खमिति । क्षितिभुवो भौमस्य चलांकाः शीघ्रफलस्यैतेऽङ्काः स्युः । खं शून्यम् ० । अष्टमरुतोऽष्टपंचाशत् ५८ अद्रिभूभुवः सप्तदशाधिकं शतम् ११७ । उदध्यगोर्व्यश्चतुः सप्तत्यधिकं शतम् १७४ । अष्टदृग्दृशोऽष्टाविंशत्यधिकं शतद्वयम् २२८ । नवनगाश्विन एकोनाशीत्यधिकं शतद्वयम् २७९ । अक्षदशनाः पञ्चविंशत्यधिकत्रिशती ३२५ । शराङ्गाग्नयः पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशती ३६५ । गुणाङ्कदहनास्त्रिनवत्यधिकत्रिशती ३९३ । खखाब्धयश्चतुश्शती ४०० । इभाङ्गरामा अष्टषष्ट्यधिकत्रिशती ३६८ । नवाम्बुधिदृश एकोनपञ्चाशदधिकद्विशति २४९ । नभः शून्यम् ० । एते भौमस्य ॥ १ ॥

चन्द्रिका—खं = ०, अष्ट ८ मरुत् ५=५८, अद्रि ७ भू १ भुवः=१ ११७, उदधि ४ अगुः ७ उर्विः १=१७४, अष्ट ८ दृग् २ दृशः २ = २२८, नव ९ नग ७ अश्विनः २ = २७९, अक्ष ५ दशन ३२=३२५, शर ५ अङ्ग ६ अग्नि ३=३६५, गुण ३ अङ्क ९ दहन ३ = ३९३ । ख० ख० अब्धि ४=४००, इभ = ८ अङ्ग ६ राम ३ = ३६८, नव ९ अम्बुधि ४ दृशः २=२४९, नभः ० । १

अर्थात् मङ्गल के शीघ्रफल साधनोपयोगी क्रम से ये चलाङ्क है—

०।५८।११७।१७४।२२८।२७९।३२५।३६५।३९३।४००।३६८।२४९।०।

बुधस्य शीघ्रफलाङ्काः—

खं भूकृताः कुवसवोऽद्रिभवाः खतिथ्यो-
ऽष्टाद्रीन्दवो नवनवक्षितयोऽर्कपक्षाः ।
अर्काश्विनः शरखगक्षितयोऽक्षतिथ्यो
गोऽष्टौ खमाशुफलजाः स्युरिमे विदोऽङ्काः ॥ २

मल्लारिः—विदोऽथ बुधस्य एते शीघ्राङ्काः । खं शून्यम्० । भूकृता एकचत्वारिंशत् ४१ । कुवसव एकाशीति ८१ आद्रिभवाः सप्तदशाधिकशतम् ११७ । खतिथ्यः सार्धशतम् १५० । अष्टाद्रीन्दवोऽष्टसप्तत्यधिकशतम् १७८ । नवनवक्षितय एकोना द्विशती १९९ । अर्कपक्षा द्वादशयुक्ता द्विशती २१२ । अर्काश्विनस्त एव २१२ । शरखगक्षितयः पञ्चोनद्विशती १९५ । अक्षतिथ्यः पञ्चपञ्चाशदधिकं शतम् १५५ । गोऽष्टौ एकोननवतिः ८९ । खं शून्यम्० । एते बुधस्य ॥ २

चन्द्रिका—खं = ०, भू १ कृत ४=४१, कु १ वसवः ८=८१, अद्रि ७ भव ११ = ११७, ख ० तिथ्यः १५=१५०, अष्ट ८ अद्रि ७ इन्दु १=१७८ नव ९ नव ९ क्षिति १=१९९, अर्क १२ पक्ष २=२१२, अर्क १२ अश्विन २=२१२, शर ५ खग ९ क्षिति १ = १९५, अक्ष ५ तिथ्यः १५=१५५ गो ९ अष्टौ ८=८९, खं=० । २

अर्थात् शीघ्रफलोत्पन्न क्रम से ये बुध के अङ्क है—

०।४१।८१।११७।१५०।१७८।१९९।२१२।२१२। १९५।१५५।८९।०

गुरोः शीघ्राङ्काः—

खं तत्त्वानि नगाब्धयोऽष्टषट्काः
पञ्चेभा गजखेचरा रसाशाः ।
नागाशा द्विदिशो नवाहयः षट्-
षष्टिः षट्कगुणा नभो गुरोः स्युः ॥ ३

मल्लारिः—अथ गुरोः बृहस्पतेरेते शीघ्राङ्काः खं शून्यम्० । तत्त्वानि पञ्चविंशतिः २५ नगाब्धयः सप्तचत्वारिंशत् ४७ । अष्टषट्का अष्टषष्टिः ६८ । पञ्चेभाः पञ्चाशीति ८५ । गजखेचरा अष्टनवतिः ९८ । रसाशाः षडधिकं शतम् १०६ । नागाशा अष्टोत्तरशतम् १०८ । द्विदिशो द्व्युत्तरशतम् १०२ । नवाहय एकोननवतिः ८९ । षट्षष्टिः ६६ । षट्कगुणाः षट्त्रिंशत् ३६ । नभः शून्यम्० । एते गुरोः ॥ ३

चन्द्रिका—खं०, तत्त्व २५, नग ७ अब्धि ४ = ४७, अष्ट ८ षट् ६ = ६८, पञ्च ५ इभ ८=८५, **गज** ८ खेचरा ९ = ९८ रस ६ आशा १० = १०६, नाग ८ आशा १० = १०८, द्वि २ दिश १० = १०२, नव ९ अहि ८ = ८९, षट् षष्टिः = ६६, षट्क गुणा = ३६, नभः = ०

अर्थात् ०।२५।४७।६८।८५।९८।१०६।१०८।१०२।८९।६६।३६।०

ये गुरु के शीघ्रफलसाधनार्थ शीघ्राङ्क है । ३

शुक्रस्य शीघ्राङ्काः—

खमग्न्यङ्गैस्तुल्या रसयमभुवः षट्कधृतयो-

ऽरिसिद्धाः पक्षाभ्राग्नय उदधिनाराचदहनाः ।

द्विशून्योदन्वन्तः खजलधिकृता भूरसकृता-

स्त्रिवेदोदन्वन्तो रसयमगुणाः खं भृगुजने ॥ ४

मल्लारिः—अथ भृगुजनेः शुक्रस्यैते शीघ्रांकाः । खं शून्यम्० । अग्न्यङ्गैस्तुल्या अंकास्त्रिषष्टिः ६३ । रसयमभुवः षड्विंशत्यधिकशतम् १२६ षट्कधृतयः षडशीत्यधिकशतम् १८६ । अरिसिद्धाः षट्चत्वारिंशदधिकद्विशती २४६ । पक्षाभ्राग्नयो द्व्यधिकत्रिशती ३०२ । उदधिनाराचदहनाः उदधयश्चत्वारः नाराच बाणः पञ्च दहना अग्नयः एवं चतुष्पञ्चाशदधिकत्रिशती ३५४ । द्विशून्योदन्वन्तो द्व्यधिकचतुःशती ४०२ । खजलधिकृताश्चत्वारिंशदधिचतुःशतीः ४४० । भूरसकृता एकषष्ट्यधिकचतुःशती ४६१ । त्रिवेदोदन्वन्तस्त्रिचत्वारिंशदधिकचतुःशती ४४३ । रसयमगुणाः षड्विंशत्याधिकत्रिशती ३२६ । खं शून्यम्० । एते शुक्रस्य ॥ ४

चन्द्रिका—खं = ०, **अग्नि** ३ अङ्ग ६ = ६३, रस ६ यम २ भुवः १ = १२६, षट्क ६ धृति १८ = १८६ अरि ६ सिद्धा २४ = २४६, पक्ष २ अभ्र ० **अग्नि** ३ = ३०२, उदधि ४ नाराच ५ दहना ३ = ३५४, द्वि २ शून्य ० उदन्वन्त ४ = ४०२, ख ० जलधि ४ कृता ४ = ४४० भू १ रस ६ कृता ४ = ४६१, त्रि ३ वेद ४ उदन्दन्त ४ = ४४३, रस ६ यम २ गुणा ३ = ३२६, खं = ०

स्पष्टार्थं —०।६३।१२६।१८६।२४६।३०२।३५४।४०२।४४०।४६१।४४३।३२६।० ये शुक्र के शीघ्रचलाङ्क है । ४

शने : शीघ्राङ्काः—

खमिषुक्षितयो गजाश्विनो गो-
दहना नागकृताः पयोधिबाणाः ।
द्विरगेषुमिता हुताशबाणाः
शरवेदास्त्रिगुणा धृतिः खमार्कैः ।। ५

मल्लारिः—अथार्के: शनेरेते शीघ्राङ्काः । खं शून्यम्० । इषुक्षितयः पञ्चदश १५ । गजाश्विनोऽष्टाविंशतिः २८ । गोदहना एकोनचत्वारिंशत् ३९ । नागकृता अष्टचत्वारिंशत् ४८ । पयोधिबाणाश्चतुष्पञ्चाशत् ५४ । द्विद्विवारम-गेषुमिताः सप्तपञ्चाशत् ५७।५७ । हुताशबाणास्त्रिपञ्चाशत् ५३ । शरवेदाः पञ्चचत्वारिंशत् ४५ । त्रिगुणास्त्रयस्त्रिंशत् ३३ । धृतिरष्टादश १८ । खं शून्यम्० । एते शनेः शीघ्राङ्काः ।। ५

अत्रोपपत्तिः—अत्र ग्रहस्पष्टीकरणार्थं ग्रहाणामसकृन्मन्दफलानि शीघ्रफलानि प्रसाध्य तत्संस्कृतो ग्रहः स्पष्टो भवति । तद्यथा । प्रथमं शीघ्रफलं प्रसाध्यम् । शीघ्रकेन्द्रस्य दोर्ज्याकोटिज्ये विधाय ततः कोटिज्यान्त्यफलज्ययोः कर्किमृगादि-केन्द्रेऽन्तरयोगौ क्रमेण सा कोटिः । दोर्ज्या भुजः ततस्तत्कृत्योर्योगपदमिति शीघ्रकर्णः प्रसाध्यः । ततोऽनुपातद्वयात् फलम् । यदि त्रिज्यातुल्यया शीघ्रकेन्द्र-दोर्ज्यया परमं शीघ्रफलज्यातुल्यं फलं लभ्यते तदेष्टया किमिति । ततोऽन्योऽनुपातः यदि शीघ्रकर्णाग्रे इदं फलं तदा त्रिज्याग्रे किमिति त्रिज्यातुल्योर्गुणहरयोर्नाशे शीघ्रकेन्द्रदोर्ज्याऽन्त्यफलज्यागुणा शीघ्रकर्णभक्ता इष्टफलज्या भवतीति । तद्धनुः शीघ्रफलम् । अत्रेदं जडकर्म दृष्ट्वाऽऽचार्येण शीघ्रकेन्द्रं पञ्चदशभागवृद्ध्या प्रकल्प्य शीघ्रफलानि प्रसाध्य तानि सावयवान्यतो दशगुणानि । राशिषट्कमध्ये द्वादश सर्वेषां ग्रहाणां पृथक् पृथगुत्पादितानि । तत्र मन्दावबोधार्थं धूलीकर्म-प्रतीत्योच्यते । तत्र प्रथमं भौमशीघ्रफलानयनार्थं शून्यं शीघ्रकेन्द्रं प्रकल्प्य जातं शीघ्रफलमपि शून्यं भुजाभावात् । एवं द्वितीयशीघ्रांकोत्पत्तौ शीघ्रकेन्द्रं पञ्च-दशभागाः १५ । अस्य दोर्ज्या ३१ । कोटिज्या ११५।३० । भौमस्य परमशीघ्र-फलज्या ७७ । अन्यैर्भास्कराद्यैः भूकुञ्जरा ८१ उक्ताः । अस्मिन् काले आचार्येण एतावती ज्ञाता । अत इयं कोटिज्या १७५।३० परेणानेन ७५ द्वाभ्यां च गुणिता १७७८७ । अनया खाभ्राब्धिशक्रैः १४४०० युताः परकृति-५८२८ युक्ता कृता ३८११६ । अत्र परकृतिर्युक्तैवकृता क्वचिदूनाऽपि कर्त्तव्या । एवमस्या मूलं जातः शीघ्रकर्णः १९५।७ । परेण ७७ दोर्ज्या ३१ गुणिता जाता २३८७ । इयं कर्णेन भक्ता जाता १२।१३ अस्या धनुः शीघ्रफलं भागाद्यम् ५।४८ एतत्

सावयवमतो दशगुणं जातमिकस्थानम् ५८। अतो भौमस्याङ्को द्वितीयोऽष्टम- युत इत्युक्तः। एवमग्रेऽपि पञ्चदशभागवृद्धया शीघ्रकेन्द्रं प्रकल्प्य सर्वेषां शीघ्राङ्काः। अत्र दोर्ज्याकोटिज्ये राशित्रयमध्येऽतो राशित्रयमध्ये षडेव शीघ्रांका वक्तव्याः। कथमत्र षड्राशिमध्ये द्वादशोक्ताः। उच्यते। इदं शीघ्रफलं कर्णाश्रितम् शीघ्रफलस्य परमाधिक्यं त्रिभे न भवति किञ्चिदधिकेनैव त्रिभेण भवति। कर्णा- त्यल्पता तु द्वितीयत्रिभे परमफलेन एव भवति। एवं षड्राशिमध्ये कर्णह्रासवृद्धी। अतः शीघ्रफलानयने पदं त्रिभादूनाधिकं भवति। तद्यथा। प्रथमं पदं त्रिभं शीघ्र- फलांशैरधिकम्। द्वितीयं शीघ्रफलांशोनम्। तृतीयं शीघ्रफलांशोनम्। चतुर्थं शीघ्रफलांशाधिकमिति॥ अत एवोक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ—

'चापेन शीघ्रान्त्यफलज्यकाया।
त्रिभं युतोनोनयुतं पदानि।
दोस्तेषु यातैष्यमयुग्मयुग्मे' इति॥

अतः षड्राशिमध्ये उक्तानि। षड्राशिभागा अशीत्यधिकशतम्। अत एते पञ्चदशभक्ता द्वादशैवाङ्का भवन्ति॥ १-५

चन्द्रिका – खं=०, इषु ५ क्षिति १=१५, गज ८ अश्विन २=२८, गो ९ दहन ३=३९, नाग ८ कृता ४=४८, पयोधि ४ बाण ५=५४, द्वि अगु ७ इषु ५=५७, ५७, हुताश ३ बाण ५=५३, शर ५ वेदा ४=४५, त्रि ३ गुणा ३=३३, धृतिः=१८, खं=०

अर्थात् ०।१५।२८।३९।४८।५४।५७।५७।५३।४५।३३।१८।० ये शनि के शीघ्राङ्क हैं। ५

शीघ्रफलसाधनम् —

भौमार्कीज्यविहीनमध्यमरविः स्यात् स्वाशुकेन्द्रं तु विद्-
भृग्वोरुक्तमिदं रसोर्ध्वमिनभाच्छुद्धं तदंशा दिनैः।
भक्ताः खादिफलक्रमादिह गताङ्कोऽसौ क्षयद्ध्यर्चा हता-
च्छेषाद्बाणकुलब्धिहीनयुगयं दिग्हृल्लवाद्यं फलम्॥ ६

मल्लारिः—एवं शीघ्रफलांकानुक्त्वेदानीं तत्कर्त्तव्यतामेकवृत्तेनाह भौमेति। भौमो मङ्गलः आर्किः शनि ईज्यो गुरुः एभिर्विहीनो मध्यमरविः स्वस्य आशु- केन्द्रं शीघ्रकेन्द्रं भवति। विद्भृग्वोः शीघ्रकेन्द्रमहर्गणादुक्तमस्ति। एतत् केन्द्रं चेद्रसोर्ध्वं षड्राश्याधिकं तर्हि इनभाद्द्वादशराशिभ्यः शुद्धं तस्यांशा दिनैः पञ्च- दशभिर्भक्ताः सन्तः खादिफलक्रमात्। खं शून्यमादिर्यस्येति। एवं भूतो यः फल-

क्रमस्तस्मादसौ गताङ्कः अग्रांकेन सह अन्तरे क्रियमाणे यः क्षयोः वा वृद्धिःस्यात् तया हताद् गुणिताच्छेषाद्बाणकुलब्धिः पञ्चदशांशस्तेन क्षयो हीनः । वृद्धौ युक्तः कार्यः । असौ दिग्हृद्दशभक्तो भागाद्यं शीघ्रफलं भवति । तन्मेषादिकेन्द्रे धनं तुलादिकेन्द्रे ऋणं पूर्वमेवोक्तमस्ति ॥

अत्रोपपत्तिः—यदि पञ्चदशभागैरेकः शीघ्राङ्कस्तदेष्टैः केन्द्रभागैः किम् । एवं यल्लब्धं तन्मितो गतः स्यात् । ततः शेषादनुपातः । यदि पञ्चदशभागैर्गतैष्यान्तरतुल्या ह्रासवृद्धिर्लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति । फलेन क्षये हीनो वृद्धौ युक्तो गताङ्कः कार्य एव । ततो दशगुणाङ्काः सन्त्यतो दशभिर्भक्तोः भागाद्यं शीघ्रफलं भवतीत्युपपन्नम् ॥ ६

चन्द्रिका—(मध्यम) भौम, शनि और बृहस्पति को मध्यम सूर्य में घटाने से तत्तद् ग्रहों के शीघ्रकेन्द्र होते हैं। बुध और शुक्र के शीघ्र केन्द्रों को पहले (मध्यमाधिकार में ही बता दिया गया है)। केन्द्र यदि ६ राशि से अधिक हों तो उन्हें १२ राशि में घटाकर शेष को अंशादि बनाकर उसमें १५ का भाग देने से लब्धि तुल्य शून्य आदि पठित शीघ्रफलाङ्कों की गत संख्या होगी। गतशीघ्र फलाङ्क और ऐष्य शीघ्रफलाङ्क के अन्तर से (अन्तर धनात्मक हो तो चय ऋणात्मक हो तो क्षय संज्ञा होती है। यथा ऐष्य अङ्क से गताङ्क घटे तो चय गताङ्क में ऐष्य घटे तो क्षय अन्तर होगा।) शेष अंशादि को गुणा कर गुणनफल में पुनः १५ का भाग देने से लब्ध अंशादि को चयात्मक अन्तर होने पर गताङ्क में जोड़ कर तथा क्षयात्मक अन्तर होने पर गताङ्क में घटाकर शेष में १० का भाग देने से अंशादि शीघ्रफल होता है। ६

उदाहरण—मङ्गल का शीघ्रफलानयन—मध्यमरवि ७।१३।४७।२३ से मध्यम मङ्गल ६।२८।३७।४३ घटाने से शेष ०।१५।९।४० मङ्गल का मन्द केन्द्र हुआ। इसके अंशादि १५।९।४० में १५ का भाग देने से लब्धि १ तथा शेष ०।९।४० प्राप्त हुआ। लब्धि तुल्य मङ्गल का पूर्वपठित प्रथम गतांक ५८ तथा ऐष्यांक ११७ के चयात्मक अन्तर ५९ से शेष ०।९।४० को गुणा कर गुणनफल ९।३०।२० में पुनः १५ का भाग देकर लब्धि ०।३८।१ को चयात्मक अन्तर होने से गतांक ५८ में जोड़कर योगफल ५८।३८।१ में १० का भाग देने से लब्धि ५।५१।४८ मंगल का प्रथम शीघ्रफल हुआ। मेषादि केन्द्र होने से यह फल धनात्मक होगा।

बुध का शीघ्रफलानयन—बुधशीघ्रकेन्द्र १०।५।२६।४६ यह ६ राशि

से अधिक है अतः १२ में घटाकर शेष के अंशादि ५४।३३।१४ में १५ का भाग देने से लब्धि ३ तथा शेष ९।३३।१४। इसमें लब्धि तुल्य गतांक ११७ तथा ऐष्यांक १५० के चयात्मक अन्तर ३३ से गुणा कर गुणनफल ३१५।१६।४२ में १५ का भाग देने से अंशादि लब्धि २१।१।१६ को चयात्मक अन्तर होने के कारण गतांक ११७ में जोड़ने से १३८।१।१६ हुआ इसमें १० का भाग देने से अंशादि शीघ्रफल १३।४८।६ तुलादि केन्द्र होने से ऋणात्मक हुआ।

गुरु का शीघ्रफलानयन—

मध्यमरवि ७।१३।४७।२३—११।१।२।५३ मध्यमगुरु=८।१२।४४।३० गुरु का शीघ्र केन्द्र ६ राशि से अधिक है अतः १२ राशि में घटाकर शेष ३।१७।१५।३० के अंशादि मान १०७।१५।३० को १५ से भाग दिया, लब्धि ७, शेष २।१५।३०। अतः गुरु का ७वाँ गतांक १०८ तथा ऐष्यांक १०२ के क्षयात्मक अन्तर ६ से शेष २।१५।३० को गुणा कर गुणनफल १३।३३।० को १५ से भाग दिया लब्धि ०।५४।१२ को क्षयात्मक अन्तर होने से गतांक १०८ में घटाकर शेष १०७।५।४८ में १० से भाग देने पर लब्धि १०।४२।३४ गुरु का शीघ्रफल, तुलादि केन्द्र होने से, ऋण हुआ।

शुक्र का शीघ्रफलानयन—शुक्र का शीघ्रकेन्द्र ०।१३।३२।१३ अंशादि १३।३२।१३ में १५ का भाग देने से गतांक ० आया तथा शेष १३।३२।१३ रहा ऐष्यांक ६३ से गतांक ० के अन्तर ६३ से शेष को गुणा किया गुणनफल ८५२।४९।३९ को १५ से भाग दिया लब्धि ५६।५१।१८ को चयात्मक अन्तर होने से गतांक ० में जोड़कर १० से भाग दिया लब्धि ५।४१।८ शुक्र का शीघ्र फल हुआ। मेषादि केन्द्र होने से फल धन होगा।

शनि का शीघ्रफलानयन—मध्यम सूर्य ७।१३।४७।२३—मध्यम शनि २।१८।४६।२=४।२५।१।२१ = मन्द केन्द्र। इसके अंशादि १४५।१।२१ को १५ से भाग देने पर लब्धि ९ तथा शेष १०।१।२१। अतः नवाँ गतांक ४५ तथा ऐष्यांक ३३ हुआ दोनों के क्षयात्मक अन्तर १२ से शेष १०।१।२१ को गुणा किया गुणनफल १२०।१६।१२ को १५ से भाग दिया लब्धि ८।१।४ को क्षयात्मक अन्तर होने से गतांक ४५ में घटाकर शेष ३६।५८।५६ को १० से भाग दिया लब्धि ३।४१।५३ शनि का शीघ्रफल हुआ। मेषादि केन्द्र होने से फल धन होगा।

मन्दाङ्का: मन्दकेन्द्राश्च—

खं गोऽश्विनोऽद्रिमरुतोऽक्षगजा नवाशाः
सिद्धेन्दवः खदहनक्षितयोऽसृजोऽङ्काः ।
मान्दा बुधस्य खमिनाः कुदृशोऽष्टपक्षा
देवाः शरानलमिता रसवह्नयः स्युः ॥ ७

खेन्द्रर्क्षाणि नवाग्नयोऽहयुदधयोऽक्षाक्षा नगाक्षा गुरोः
शुक्रस्याभ्ररसेशविश्वमनवो द्विर्बाणचन्द्राः क्रमात् ।
खं गोऽब्जाः खकृताः खषट् नगनगा गोऽष्टौ त्रिनन्दाः शनेः
शुद्धोऽब्ध्यद्रिषडग्निनागगृहतः स्यान्मन्दकेन्द्रं कुजात् ॥ ८

मल्लारिः—एवं शीघ्रांकामुक्त्वेदानीं मन्दांकान् मन्दकेन्द्रसाधनं च वृत्तद्वयेनाह । खमिति । असृजो भौमस्यैते मान्दा मन्दफलाङ्काः स्युः । खं शून्यम्० । गोऽश्विन एकोनत्रिंशत् २९ । अद्रिमरुतः सप्तपञ्चाशत् ५७ । अक्षगजाः पञ्चाशीतिः ८५ । नवाशा नवोत्तरशतम् १०९ । सिद्धेन्दवश्चतुर्विंशत्यधिकशतकम् १२४ । खदहनक्षितयस्त्रिंशदधिकशतम् १३० । बुधस्यैते । खं शून्यम्० । इना द्वादश १२ । कुदृश एकविंशतिः २१ । अष्टपक्षा अष्टाविंशतिः २८ । देवास्त्रयस्त्रिंशत् ३३ । शरानलमिताः पञ्चत्रिंशन्मिताः ३५ । रसवह्नयः षट्त्रिंशत् ३६ । गुरोरेते । खं शून्यम्० । इन्द्राश्चतुर्दश १४ । ऋक्षाणि सप्तविंशतिः २७ । नवाग्नयः एकोनचत्वारिंशत् ३९ । अहयोऽष्टौ । उदधयश्चत्वारः । एवमष्टचत्वारिंशत् ४८ । अक्षाक्षाः पञ्चपञ्चाशत् ५५ । नगाक्षाः सप्तपञ्चाशत् ५७ ॥ अथ शुक्रस्य । अभ्रं शून्यम्० । रसाः षट् ६ । ईशा एकादश ११ । विश्वे त्रयोदश १३ । मनवश्चतुर्दश १४ । द्विर्द्विवारम् । बाणचन्द्राः पञ्चदश १५।१५ । अथ शनेः । खं शून्यम्० । गोऽब्जा एकोनविंशतिः १९ । खकृताश्चत्वारिंशत् ४० । खषट् षष्टिः ६० । नगनगाः सप्तसप्ततिः ७७ । गोऽष्टौ एकोननवतिः ८९ । त्रिनन्दास्त्रिनवति ९३ । ग्रहाः क्रमादब्ध्यद्रिषडग्निनागगृहतः शुद्धः कुजाद्भौममारभ्य मन्दकेन्द्रं स्यात् । एतदुक्तं भवति । अब्धयश्चत्वारो राशयो भौममन्दोच्चम् । अद्रयः सप्त राशयो बुधस्य । षड्गुरोः । अग्नयस्त्रयः ३ शुक्रस्य । नागा अष्टौ ८ राशयः शनेः । एवं स्वस्वमन्दोच्चाद्ग्रहः शोधितो मन्दकेन्द्रं भवेदिति ॥

अत्रोपपत्तिः—मन्दोच्चकेन्द्रवासना मन्दफलपरमत्वज्ञानवासना च पूर्वमेवोक्ता । अत्र मन्दफलानयने राशित्रयमेव पदं गृहीतं तत् कथं कर्णानङ्गीकारात् ।

अहो अत्र शीघ्रफलार्थं कर्णो गृहीतः। मन्दफलार्थं न गृहीतः। स कथम्। कर्णो हि ग्रहकक्षाव्यासार्धम्। एवं मन्दकर्णो मन्दप्रतिमण्डलव्यासार्धम्। शीघ्रकर्णः शीघ्रप्रतिमण्डलव्यासार्धम्। एवं यत् साधितं मन्दफलं तन्मध्यमात्। मध्यमो मन्दप्रतिमण्डलेऽतो जातं मन्दफलं मन्दकर्णाग्रस्थानीयम्। अतो मन्दफलानयने मन्दकर्णोऽपि ग्राह्यः स सर्वैरपि नाङ्गीकृतः। तत्र ग्रहकर्णग्रहणे एकं कारणं वक्तव्यम्। शीघ्रफलान्मन्दफलस्योनत्वात् स्वल्पान्तरत्वान्मन्दकर्मणि कर्णो न गृहीतः। एवं चेत् तर्हि स्वल्पेऽपिशीघ्रफले कर्णो गृह्यते। तदधिके मन्दफले न गृह्यते। एवं कथमिति चेन्नो। यतोऽत्र युक्त्या हेतुज्ञानं नैव भवति। फलवासना विचित्राऽस्ति। एतादृशेनैव कर्मणा आकाशे ग्रहस्पष्टत्वं दृश्यते। अतः प्रत्यक्षप्रमाणोपलब्ध्या एतत् कृतमिति वक्तव्यम्। इति सर्वं निरवद्यम्॥ उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

'स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मणीह कर्णः कृतो नेति च केचिदूचुः।[1]
नाशंकनीयं न चले किमित्थं यतो विचित्रा फलवासनाऽत्र' इति॥

अत्र त्रिज्यातुल्यया मन्दकेन्द्रदोर्ज्यया यदि परमं मन्दफलं तदेष्टदोर्ज्यया किमिति। एवं पञ्चदशभागवृद्धचा मन्दकेन्द्रं प्रकल्प्य अनया युक्त्या मन्दफलानि प्रसाध्यानि। तानि सावयवान्यतो दशगुणानि कृत्वा राशित्रयमध्ये ग्रहाणां पृथक् पृथक् षडङ्का मान्दा भवन्तीत्युपन्नम्। अत्र धूलीकर्म। प्रथमांको भुजाभावाच्छून्यम्। ततः पञ्चदश १५ भागास्तेषां ज्या ३१। भौमपरममन्दफलेन गुणिता जाता ३४७। १२। इयं खार्क-१२० भक्ता जातं फलम् २। ५४। इदं सावयवत्वाद्दशगुणं २९ जातो भौमस्य द्वितीयो मन्दाङ्कः। एवं सर्वेषां सर्वेऽङ्का उत्पादनीयाः॥ ७-८

चन्द्रिका—ख = ०, गो ९ अश्विनः २ = २९, अद्रि ७ मरुत् ५ = ५७, अक्ष ५ गज ८ = ८५, नव ९ आशा १० = १०९, सिद्ध २४ इन्दु १ = १२४, ख० दहन ३ क्षिति १ = १३०, असृज = मंगल के मन्दाङ्क हैं।

बुध के मदाङ्क खं = ०, इनः = १२, कु १ दृशः २ = २१, अष्ट ८ पक्षा २ = २८, देवाः = ३३, शर ५ अनल ३ = ३५, रस ६ वह्नयः ३ = ३६ हैं। ख = ०, इन्द्र = १४, ऋक्षणि = २७, नव ९ अग्नयः ३ = ३९, अहि ८

---

१. सि. शि. गो. छे. ३६।

उदधयः ४=४८, अक्ष ५ अक्ष ५=५५, नग ७ अक्ष ५=५७ ये गुरु के मन्दाङ्क हैं।

शुक्र के अभ्र=०, रस=६, ईश=११, विश्व=१३, मनवः १४, द्वि=दो बार बाण ५ चन्द्रः १=१५, १५ मन्दाङ्क हैं।

खं=०, गो ९ अब्ज १=१९, ख० कृता ४=४०, ख० षट् ६=६०, नग ७ नग ७=७७, गो ९ अष्टौ ८=८९, त्रि ३ नन्दा ९=९३ शनि के मन्दाङ्क हैं। स्पष्टज्ञानार्थं भौमादि के मन्दाङ्क इस प्रकार है—

भौम -०, २९, ५७, ८५, १०९, १२४, १३०
बुध—०, १२, २१, २८, ३३, ३५, ३६
गुरु—०, १४, २७, ३९, ४८, ५५, ५७
शुक्र—०, ६, ११, १३, १४, १५, १५
शनि—०, १९, ४०, ६०, ७७, ८९ ९३

भौमादि ग्रहों को क्रम से ४, ७, ६, ३, ८, राशियों से घटाने पर उन ग्रहों के मन्दकेन्द्र होते हैं। [अर्थात् भौम को ४ राशि से, बुध को ७ से, गुरु को ६ से, शुक्र को ३ से तथा शनि को ८ राशि से घटाने पर इनके मन्द केन्द्र होंगे]। ७–८

मन्दफलानयनम्—

मृदुकेन्द्रभुजांशका दिनाप्ताः
फलमङ्कः प्रगतस्तदूनितैष्यः।
परिशेषहतो दिनाप्तियुक्तो
दशभक्तः फलमंशकादि मान्दम् ॥ ९

मल्लारिः—एवं मान्दाङ्कानभिधायेदानीं मन्दफलकर्त्तव्यताप्रकारमेकवृत्तेनाह। मृद्विति। मृदुकेन्द्रस्य ये भुजभागास्ते दिनैः पञ्चदशभिः १५ आप्ता भक्ताः सन्तो यत् फलं तन्मितः प्रगतोऽङ्कः स्यात्। तेन गताङ्केन ऊनितो य एष्योऽङ्कः स परिशेषेण शेषभागैर्हतो गुणितस्तस्माद्या दिनाप्तिः पञ्चदशभागस्तेन युक्तः स गताङ्कस्ततो दशभक्तोंऽशकादि भागादि मन्दफलं भवतीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिरनुपातद्वयेन—यदि पञ्चदशभागैरेको मान्दाङ्कस्तदेष्टैर्मन्दकेन्द्रांशैः किमिति। अतो गतांशा दिनाप्ता गताङ्कः स्यादिति। शेषादनुपातः। यदि पञ्चदशभागैरेतावती गतैष्यान्तरतुल्या वृद्धिर्लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति। अंकादिगुणिताः सन्त्यतस्तद्दशभिर्भाज्यं फलं भवतीत्युपपन्नम् ॥ ९

चन्द्रिका—(भौमादि ग्रहों के) मन्द केन्द्र का भुज बनाकर उसके अंशादि में १५ का भाग देने से लब्धि तुल्य गत मन्दाङ्क होगा। गत और ऐष्य मन्दाङ्कों के अन्तर से शेष अंशादि को गुणा कर गुणनफल में पुनः १५ का भाग देकर लब्धि को गतांक में जोड़कर १० का भाग देने से अंशादि मन्दफल होगा।

[उदाहरण १८वें श्लोक के बाद देखें।]

ग्रहे फलसंस्कारविधिः—

प्राङ्मध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यात्
तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये।
द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्रं।
सर्वं च तत्र विदधीत भवेत् स्फुटोऽसौ ॥ १०

मल्लारिः—एवं शीघ्रफलमन्दफलसाधनमुक्त्वेदानीं ग्रहे कथं संस्कार्यमित्येकवृत्तेनाह। प्रागिति। प्राक् आदौ अहर्गणोत्पन्नमध्यमे ग्रहे चलफलस्य शीघ्रफलस्य दलमर्धं यथागतं धनर्णं विदध्यात् प्रदद्यात्। तस्माद्दत्तशीघ्रार्धान्मान्दं मन्दफलं साध्यम्। तदखिलमपि मन्दफलं मध्यमेऽहर्गणोत्पन्ने यथागतं विदधीत कुर्वीत। तन्मन्दफलं द्राक्केन्द्रे शीघ्रकेन्द्रे पूर्वकृते विलोमं विपरीतं धनर्णं देयम्। अतो मन्दफलसंस्कृतशीघ्रकेन्द्रात् शीघ्रफलं साध्यम्। तत् सर्वं तस्मिन् दत्तमन्दफले विदधीत कुर्वीत असौ ग्रहः स्फुटो भवतीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः—प्रत्यक्षोपलब्धिरेव ॥ १०

चन्द्रिका—सर्वप्रथम (पूर्वसाधित) शीघ्रफल के आधे का मध्यम ग्रह में संस्कार करें फिर फलार्धसंस्कृत ग्रह से साधित सम्पूर्ण मन्दफल का संस्कार मध्यम ग्रह में करें। अनन्तर मन्दफल का शीघ्रकेन्द्र में भी विपरीत संस्कार (धन हो तो ऋण ऋण हो तो धन) करके पुनः शीघ्रफल का साधन कर, मन्द-स्पष्ट ग्रह में संस्कार करने से स्पष्ट ग्रह होता है। १०

उदाहरण—भौमादि ग्रहों का मन्दफल एवं द्वितीय शीघ्रफल साधन—भौम का पूर्व साधित शीघ्रफल ५।५१।४८ का आधा २।५५।५४ को शीघ्र फल धन होने से मध्यम मंगल ६।२८।३७।४३ में जोड़ने से ७।१।३३।३७ फलार्ध संस्कृत भौम हुआ। इसे भौम के मन्दोच्च ४ राशि में घटाने से ८।२८।२६।२३ मन्द केन्द्र हुआ इसका भुज २।२८।२६।२३ हुआ. इसके अंशादि में १५ का भाग दिया तो लब्धि ५ एवं शेष १३।२६।२३ रहा। लब्धि तुल्य पाँचवाँ मन्दाङ्क १२४ गत तथा १३० ऐष्यांक हुआ। इन

दोनों के अन्तर ६ से शेष १३।२६।२३ को गुणा कर गुणनफल ८०।३८।१८ में पुनः १५ का भाग देकर लब्धि ५।२२।३३ को गतांक १२४ में जोड़ा। योगफल १२९।२२।२३ में १० का भाग देने से लब्धि १२।५६।१५ अंशादि मन्दफल हुआ। यह तुलादि केन्द्र होने से ऋण हुआ। अतः मध्यम भौम ६।२८।३७।४३ में घटाने से मन्दस्पष्ट मंगल ६।१५।४१।२८ हुआ। उक्त ऋण मन्द फल १२।५६।१५ को प्रथम शीघ्रकेन्द्र ०।१५।९।४० में विपरीत संस्कार (अर्थात् मन्दफल ऋण है तो धन) करने से ०।२८।५।५५ द्वितीय शीघ्रकेन्द्र हुआ। इसके अंशादि २८।८।५५ में १५ का भाग देने से लब्धि, १शेष १३।५।५५ रहा। लब्धि तुल्य शीघ्रांक ५८ गत तथा ११७ ऐष्यांक हुआ दोनो के चयात्मक अन्तर ५९ से शेष १३।५।५५ को गुणा किया, गुणनफल ७७२।४९।४ को १५ से भाग देकर लब्धि ५१।३१।१६ को गतांक ५८ में जोड़कर १० से भाग देने पर लब्धि १०।५७।७ अंशादि शीघ्रफल हुआ। मेषादि केन्द्र होने से धन हुआ। अतः मन्दस्पष्ट मंगल ६।१५।४१।२८ में शीघ्रफल १०।५७।१६ को जोड़ने से ६।२६।३८।३५ स्पष्ट मङ्गल हुआ।

बुध स्पष्टीकरण—बुध का शीघ्रफल १३।४८।६ ऋणात्मक है इसके आधे ६।५४।३ को मध्यम बुध ७।१३।४७।३३ में घटाया तो ७।६।५३।३० फलार्ध संस्कृत बुध हुआ। इसे बुध के मन्दोच्च ७ राशि में घटाने से ११।२३।६।३० बुध का मन्द केन्द्र हुआ। इसके भुज ०।६।५३।३० के अंशादि ६।५३।३० में १५ का भाग देने से लब्धि ० तथा शेष ६।५३।३० बचा। लब्धि तुल्यगतांक (मन्दांक) ० तथा ऐष्यांक १२। इन दोनों के अन्तर १२ से शेष ६।५३।३० को गुणा किया। गुणनफल ८२।४२।० में पुनः १५ का भाग दिया। लब्धि ५।३०।४८ को गताङ्क ० में जोड़कर १० का भाग देने से अंशादि लब्धि ०।३३।४ बुध का मन्दफल हुआ। तुलादि केन्द्र होने से ऋणात्मक मन्दफल को मध्यमबुध ७।१३।४७।३३ में घटाने से मन्दस्पष्ट बुध ७।१३।१४।२९ राश्यादि हुआ। उक्त ऋणात्मक मन्दफल को बुध शीघ्रकेन्द्र १०।५।२६।४६ में जोड़ा (विपरीत संस्कार किया) तो द्वितीय शीघ्रकेन्द्र १०।५।५९।५० आया। इसे ६ राशि से अधिक होने से १२ राशि में घटाकर शेष १।२४।०।१० को १५ से भाग दिया। लब्धि ३ तथा शेष ९।०।१० रहा। इसे तृतीय शीघ्रांक ११७ गत तथा १५० ऐष्यांक के अन्तर ३३ से गुणा किया। गुणनफल २९७।५।३० को पुनः १५ से भाग दिया। लब्धि १९।४८।२२ को चयात्मक अन्तर होने से गतांक ११७ में जोड़कर योगफल १३६।४८।२२ में १० का भाग दिया।

लब्धि १३।४०।५० अंशादि शीघ्रफल हुआ। तुलादि केन्द्र होने से ऋण हुआ। अतः मन्दस्पष्टबुध ७।१३।१४।२९ में १३।४०।५० शीघ्रफल को घटाने से राश्यादि स्पष्ट बुध = ६।२९।३३।३९।

गुरुस्पष्टीकरण—गुरु का पूर्वसाधित शीघ्रफल ऋणात्मक १०।४२।३४ हैं। इसके आधे ५।२१।१७ को मध्यम गुरु ११।१।२।५३ में घटाने से फलार्ध संस्कृत गुरु १०।२५।४१।३६ हुआ। इसे गुरु के मन्दोच्च ६ राशि में घटाने से ७।४।१८।२४ मन्द केन्द्र हुआ। इसके भुज के अंशादि ३४।१८। २४ में १५ का भाग देने से लब्धि २ तथा शेष ४।१८।२४ रहा इसे द्वितीय गत शीघ्रांक २७ एवं एष्यांक ३९ के अन्तर १२ से गुणा किया। गुणनफल ५१।४०।४८ को १५ से भाग देकर लब्धि ३।२६।४३ को गतांक २७ में जोड़कर १० का भाग देने से लब्धि अंशादि ३।२।४० ऋणात्मक मन्दफल हुआ। मध्यम गुरु ११।१।२।५३ में ३।२।४० मन्दफल को घटाया शेष १०।२८।०।१३ मन्दस्पष्ट गुरु हुआ। उक्त ऋणात्मक मन्दफल ३।२।४० को गुरु के प्रथम शीघ्र केन्द्र ८।१२।४४।३० में जोड़ा। योगफल ८।१५।४७।१० द्वितीय शीघ्रकेन्द्र हुआ। यह ६ राशि से अधिक है अतः इसे १२ राशि में घटाकर शेष ३।१४।१२।५० के अंशादि १०४। १२।५० में १५ का भाग देने से लब्धितुल्य गताङ्क १०६ तथा ऐष्याङ्क १०८ हुआ इन दोनों के अन्तर २ से शेष १४।१२।५० को गुणा किया। गुणनफल २८।२५।४० में पुनः १५ का भाग देकर लब्धि १।५३।४२ को गताङ्क १०६ में जोड़ा योगफल १०७।५३।४२ में १० का भाग दिया। लब्धि १०।४७। २२ ऋणात्मक द्वितीय शीघ्रफल हुआ। अतः मन्दस्पष्ट गुरु १०।२८।० १३ में १०।४७।२२ शीघ्रफल अंशादि को घटाने से शेष १०।१७।१२।५१ स्पष्टगुरु हुआ।

शुक्रस्पष्टीकरण—शुक्र का पूर्वसाधित शीघ्रफल धनात्मक ५।४१।८ है इसके आधे २।५०।३४ को मध्यम शुक्र ७।१३।४७।३३ में जोड़ा तो ७।१६। ३८।७ फलार्ध संस्कृत शुक्र हुआ। इसे शुक्र के मन्दोच्च ३ राशि में घटाया। शेष ७।१३।२१।५३ इसका मन्दकेन्द्र हुआ। इसके भुज १।१३। २१।५३ के अंशादि ४३।२१।५३ में १५ का भाग दिया। लब्धि २ तुल्य गतमन्दाङ्क ११ तथा ऐष्यमन्दांक १३ के अन्तर २ से शेष १३।२१।५३ को गुणा किया गुणनफल २६।४३।४६ में १५ का भाग देकर लब्धि १।४६। ५५ को गतांक ११ में जोड़कर योगफल १२।४६।५५ में १० का भाग दिया लब्धि १।१६।४१ शुक्र का ऋणात्मक मन्दफल हुआ। इसे मध्यम शुक्र ७।१३।४७।३३ में घटाया शेष ७।१२।३०।५२ मन्दस्पष्ट शुक्र हुआ।

उक्तफल को शुक्र शीघ्र केन्द्र में विपरीत संस्कार (योग) किया तो ०।१४।४८।५४ द्वितीय शीघ्र केन्द्र हुआ। इसके अंशादि १४।४८।५४ में १५ का भाग दिया। लब्धि तुल्य ० गतांक तथा ६३ ऐष्यांक के अन्तर ६३ से शेष १४।४८।५४ का गुणा किया। गुणनफल ९३३।२०।४२ को पुनः १५ से भाग देकर लब्धि ६२।१३।२२ को गतांक ० में जोड़कर १० से भाग दिया। लब्धि ६।१३।२० धनात्मक शुक्र का शीघ्रफल हुआ। अत मन्द-स्पष्ट शुक्र ७।१२।३०।५२ में ६।१३।२० को जोड़ने से ७।१८।४४।१२ स्पष्ट शुक्र हुआ।

शनिस्पष्टीकरण – शनि के पूर्वसाधित शीघ्रफल ३।४१।५३ के आधे १।५०।५५ को मध्यम शनि २।१८।४६।२ में धनात्मक होने से जोड़ा तो फलार्ध संस्कृत शनि २।२०।३६।५७ हुआ। इसे शनि के मन्दोच्च ८ राशि में घटाने से इसका मन्दकेन्द्र ५।९।२३।३ हुआ। इसके भुज ०।२०।३६।५७ के अंशादि २०।३६।५७ को १५ से भाग देने से लब्धि १ तुल्य गत मन्दांक १९ तथा ऐष्यांक ४० के अन्तर २१ से शेष ५।३६।५७ को गुणा किया। गुणनफल ११७।५५।५७ को पुनः १५ से भाग देकर लब्धि ७।५१।४३ को गतांक १९ में जोड़कर योगफल २६।५१।४३ को १० से भाग देने पर लब्धि अंशादि २।४१।१० धनात्मक मन्दफल हुआ। इसे मध्यमशनि २।१८। ४६।२ में जोड़ने से २।२१।२७।१२ मन्दस्पष्ट शनि हुआ। उक्त धनात्मक मन्दफल को शनि के शीघ्र केन्द्र ४।२५।१।२१ में घटाने (विपरीत संस्कार) से द्वितीय शीघ्र केन्द्र ४।२२।२०।११ हुआ। इसके अंशादि १४२।२०।११ को १५ से भाग दिया। लब्धि ९ तुल्य गत शीघ्रांक ४५ तथा ऐष्यशीघ्रांक ३३ के क्षयात्मक अन्तर १२ से शेष ७।२०।११ को गुणा किया। गुणनफल ८८।२।१२ में १५ का भाग देकर लब्धि ५।५२।१८ को क्षयात्मक अन्तर होने से गतांक ४५ में घटाया शेष ३९।७।५२ को १० से भाग देने पर लब्धि ३।५४।४७ अंशादि धनात्मक शीघ्रफल हुआ। मन्दस्पष्ट शनि २।२१।२७।१२ में शीघ्रफल ३।५४।४७ को जोड़ने से २।२५।२१।५९ स्पष्ट शनि हुआ।

भौमादीनां मन्दस्पष्टा गतिः—

मान्दाङ्कान्तरमार्क्यसृग्गुरूणां
भक्तं बाणनगैः शरैः खरामैः।
विद्भृग्वोर्द्विहताशुगोद्धृतं तत्-
दद्यात् प्राग्वदितो मृदुस्फुटा सा ॥ ११

मल्लारि :—एवं ग्रहस्पष्टत्वमभिधास्येदानीं गतिमन्दस्पष्टतामेकवृत्तेनाह । मान्दांकान्तरमिति । आर्किः शनिः । असृग्भौमः । गुरुर्बृहस्पतिः । एषां मन्दफलानयने यत् कृतं मान्दांकान्तरं तत् क्रमेण बाणानगैः पञ्चसप्तत्या ७५ । शरैः पञ्चभिः ५ । खरामैस्त्रिशद्भिः ३० । भक्तं लब्धं कलाद्यं तन्मन्दगतिफलं स्यात् । विद्भृग्वोः बुधशुक्रयोर्मान्दांकान्तरं द्वि २हतं सत् । आशुगैः पञ्चाभिः ५ । उद्धृतं फलं स्यात् । तत् प्राग्वद् इतौ मध्यगतौ दद्यात् सा मृदुस्फुटा गतिर्भवतीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः—प्रतिपादितप्रमेया तथाऽपि किञ्चिदुच्यते । अत्र ग्रहफलाभावे गतिफलं परमं ग्रहफलपरमत्वे गतिफलाभावः । ग्रहफलाभावस्तु भुजादौ । तत्र मान्दांकान्तरमपि परमम् । तत्र गतिफलानि मान्दादि परमाणि कलादीनि लक्षितानि । भौ. ५ । ४८ बु. ४ । ४८ । गु. ० । २८ । शु. २ । २४ । श. ० । १५ । १२ एभ्योऽनुपातः । यदि मान्दाङ्कान्तरेण प्रथमांकतुल्येन एतानि तदेष्टेन कानीति । एवमिष्टमान्दांकान्तरमेभिः परमफलैर्गुण्यं परममान्दांकन्तरैराद्यांकतुल्यैर्भाज्यम् । एवं सर्वत्र गुणहरौ गुणेनापवर्तितौ जाता भौमादीनां हरा भौ. ६ । बु. २ । ३० । गु. ३० । शु. २ । ३० । शं. ७५ एवं भौमगुरुशनीनां हरा निरवयवाः । अतो मान्दाङ्कान्तरमेभिर्भाज्यमिति । बुधशुक्रयोर्हरौ सावयवावतस्तौ द्विसवर्णितौ जातौ समावेव ५ । अतस्तयोर्द्विहताशुगोद्धृतमिति । एवमेतन्मन्दफल मध्यमगतौ देयम् । सा मन्दस्पष्टा गतिर्भवतीत्युपपन्नम् । अत्र गतिफलधनर्णत्ववासना पूर्वोक्तैव ज्ञातव्या ॥ ११

चन्द्रिका—पूर्व पठित मन्दांको के अन्तर को (मन्दफल साधन के समय आनीत गत-ऐष्याङ्कों के अन्तर को) क्रम से ७५ से भाग देने पर शनि का, ५ से भाग देने पर मङ्गल का, ३० से भाग देने पर गुरु का मन्दगति फल होता है । बुध और शुक्र के मन्दाङ्को के अन्तर को २ से गुणा कर ५ का भाग देने से मन्द गतिफल होता है । इस मन्दगतिफल को ग्रहों की मध्य गति में प्रागुक्त विधि से (अर्थात् कर्कादि केन्द्र होने पर धन तथा मकरादि केन्द्र होने पर ऋण) संस्कार करने पर मन्द स्पष्ट गति होती है ।

उदाहरण—मङ्गल का मान्दाङ्कान्तर ६ इसे ५ से भाग देने पर लब्धि १।१२ मन्द गतिफल होगा । कर्कादि केन्द्र होने से मङ्गल की मध्यमगति ३१।२६ में जोड़ने से ३२।३८ मन्द स्पष्ट गति हुई ।

बुध के मान्दाङ्कान्तर १२ को २ से गुणा कर । गुणनफल २४ में ५ का भाग देने से लब्धि ४।४८ गतिफल मकरादि केन्द्र होने से ऋण हुआ ।

उक्त गतिफल को बुध की मध्यमगति ५९।८ में घटाने से ५४।२० मन्द स्पष्ट गति हुई।

गुरु के मान्दाङ्कान्तर १२ को ३० से भाग देने पर लब्धि ०।२४ मन्द-गतिफल कर्कादि केन्द्रत्वात् धन हुआ। अतः गुरु गति ५।० में जोड़ने से ५।२४ मन्दस्पष्टगति हुई।

शुक्र का मान्दाङ्कान्तर २×२=४ इसे ५ से भाग दिया, लब्धि ०।४८ मन्दगतिफल कर्कादि केन्द्रत्वात् धन हुआ। इसे शुक्र को मध्यमगति ५९।८ में जोड़ने से ५९।५६ मन्दस्पष्टगति हुई।

इसी प्रकार शनि के मान्दाङ्कान्तर २१ को ७५ से भाग देने पर लब्धि ०।१६ प्राप्त हुई। कर्कादि केन्द्र होने से धनात्मक गतिफल को शनि की मध्यमगति २।० में जोड़ दिया तो २।१६ मन्दस्पष्टगति हुई।

भौमादीनां स्पष्टागति :—

भौमाच्चलाङ्कविवरं शरहृत् स्वबाणां
शाढ्यं त्रिहृत् कृतहृतं द्विगुणाक्षभक्तम्।
तद्धीनयुक् क्षयचये तु मृदुस्फुटा स्यात्।
स्पष्टाऽथ चेद्बहुऋणात् पतिता तु वक्रा ॥ १२

मल्लारि :— अथ गतेः स्पष्टीकरणमेकवृत्तेन वदति। भौमादिति। भौमान्मङ्गलमारभ्य यच्चलांकानां शीघ्रांकानां विवरं द्वितीयशीघ्रफलानयनार्थं कृतमस्ति तत् क्रमात्। शरैः पञ्चभिर्हृत् भक्तं भौमस्य। स्वबाणांशेन स्वपञ्चांशेन युक्तं बुधस्य। त्रिहृत् त्रिभक्तं गुरोः। कृतहृच्चतुर्भक्तं शुक्रस्य। द्विहृतं द्विगुणं सत् अक्षभक्तं पञ्चभक्तं शनेः। तद् गतेः शीघ्रफलं स्यात्। सा मृदुस्फुटा गतिस्तेन फलेन क्षयचये हीनयुक् क्षये हीना चये युक्ता सती स्पष्टा भवेत्। अथ चेदृणफलं बहुगतेर्न शुद्ध्यति तदा सा गतिरेव फलात् शोध्या शेषं वक्रा गतिः स्यादित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिर्गतिमन्दफलवद्। अत्र शीघ्रफलान्तरं गतेः शीघ्रफलं तत्रानुपातः। यदि पञ्चदशभागकलाप्रमाणेन ९०० इदं शीघ्राङ्कान्तरं तदा शीघ्रकेन्द्रगति-कलाप्रमाणेन किमिति। ततः शीघ्राङ्कानां दशगुणितत्वात् तद्दशभिर्भज्यं कलार्थं च षष्ट्या गुण्यम्। एवं शीघ्राङ्कान्तरस्य हरघातो हरः ९०००। षष्टि : ६० गुणः। गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो हरः १५०। अस्य केन्द्रगतिः गुणोऽस्ति। अत्र भौमगुरुशुक्राणां केन्द्रगतिभिराभिः २८।४५।३७ सार्धशते १५० हरे भक्ते जाता हराः। ५।३।४। बुधकेन्द्रगतिगुणः १८६ अत्र गुणहरौ

त्रिंशताऽपवर्त्तितौ जातो गुणः ६। हरः ५। यो राशिः षड्भिः ६ गुण्यते पञ्चभिः ५ भज्यते स स्वबाणांशाढ्यं एव भवति। तथा शनेः केन्द्रगतिः ५७। अत्र गुणहरौ गुणर्घेनापवर्त्य जातो गुणः २। हरः ५ अतो द्विहताक्षभक्तं शीघ्रांकान्तरं शनेर्गतिफलं स्यादित्युपपन्नम्। एवमेतद्गतेः शीघ्रफलं मन्दस्पष्ट-गतौ देयं स्पष्टा स्यादेव। तत्र धनर्णोपपत्तिः—अङ्कान्तरेऽपि चेत् क्षयस्तदा ग्रहे स्वल्पफलत्वाद्गते रपि न्यूना। अग्रे चेद्वृद्धिस्तदा ग्रहे फलाधिकत्वात् स्पष्ट-गतिरधिका। अतः क्षयवृद्धौ ऋणधनसंज्ञोक्ता। चेत् फलं मन्दस्पष्टगतेर्न शुध्यति तदा विपरीतशोधनेन विपरीतगतिर्वक्रा गतिर्भवतीत्युपपन्नम्। वक्रत्ववासनामग्रे सविस्तरां वक्ष्यामः॥ १२

चन्द्रिका—भौमादि ग्रहों के चलाङ्को (शीघ्राङ्को) के अन्तर, जो द्वितीयशीघ्रफल साधन में प्रयुक्त हुए हैं, को क्रमशः ५ से भाग देने पर मङ्गल का, अपना पञ्चमांश युक्त करने पर बुध का, ३ से भाग देने पर गुरु का, ४ से भाग देने पर शुक्र का तथा २ से गुणाकर ५ से भाग देने पर शनि का शीघ्रगतिफल होता है। उस गतिफल को शीघ्रांकान्तर चयात्मक होने पर मन्दस्पष्टगति में जोड़ने से तथा क्षयात्मक होने पर घटाने से स्पष्टगति होती है। शीघ्र गतिफल से मन्दस्पष्टगति अल्प होने पर शीघ्र गतिफल में मन्दस्पष्टगति को घटाने से शेष वक्रगति होती है। १२

उदाहरण—भौमादि ग्रहों के शीघ्रफल साधन द्वारा गति स्पष्टी-करण- भौम का शीघ्राङ्कान्तर ५९ को ५ से भाग देकर लब्धि ११।४८ शीघ्रगतिफल को चयात्मक अन्तर होने से मन्दस्पष्ट गति ३२।३८ में जोड़ने से मङ्गल की स्पष्टगति ४४।२६ हुई।

बुध का शीघ्राङ्कान्तर ३३ इसमें इसका पञ्चमांश ६।३६ जोड़ने से ३९।३६ शीघ्रफल हुआ। चयान्तर होने से मन्दस्पष्ट गति ५४।२० में जोड़ने से ९३।५६ बुध की स्पष्टगति हुई।

गुरु के शीघ्राङ्कान्तर २ को ३ से भाग दिया लब्धि ०।४० गुरु गति का शीघ्रफल हुआ चयान्तर होने से मन्दस्पष्ट गति ५।२४ में जोड़ने से ६।० स्पष्ट गति हुई।

शुक्र के चलाङ्कान्तर ६३ को ४ से भाग देकर लब्धि १५।४५ शीघ्र फल को चयात्मक होने से मन्दस्पष्ट गति ५९।५६ में जोड़ने से ७५।४१ शुक्र की स्पष्टगति हुई।

शनि के शीघ्राङ्कान्तर १२ को २ से गुणा कर गुणनफल २४ में ५ का भाग देने से लब्धि ४।४८ शीघ्रगतिफल हुआ। क्षयान्तर होने से मन्दस्पष्ट गति में फल को घटाना चाहिए किन्तु यहाँ मन्दस्पष्ट गति २।१६ है तथा शीघ्रफल ४।४८ है। अर्थात् मन्दस्पष्ट गति अल्प और शीघ्रफल अधिक है। अतः विपरीत क्रिया करेंगे। शीघ्रफल ४।४८ में २।२६ को घटाने से २।३२ शनि की स्पष्ट वक्र गति हुई। १२

अन्त्यशीघ्राङ्कागमे भौमशुक्रयोः वैशिष्ट्यम्—

शुक्रारयोश्चलभवोऽन्त्यगतो यदाऽङ्कः
शेषांशकाश्च पतिताः पृथगक्षभूम्यः।
येऽल्पा भृगोस्त्रिविहृता असृजोऽक्षभक्ता
देयाः स्वशीघ्रफलवत् स्फुटयोः स्फुटौ तौ॥ १३

मल्लारिः—अथ भौमशुक्रयोरन्त्यशीघ्रांकागमे ग्रहेऽन्तरं भवतीत्यतस्तत्र विशेषफलमेकवृत्तेनाह शुक्रेति। शुक्रः प्रसिद्धः। आरो भौमः। एतयोरन्यतरस्य चलभवः शीघ्रफलोत्थोऽङ्को यदाऽन्त्यगतः स्यात् तदा ये शेषांशाः पञ्चदशभक्तावशिष्टाः शीघ्रकेन्द्रभागान्तेऽन्यत्र पृथक् स्थाप्याः। अक्षभूम्यः पञ्चदशेभ्य १५ एकत्र पतिताः शोधिताः। तयोः पृथक्स्थभागशोधितभागयोर्मध्ये येऽल्पास्ते ग्राह्याः। ते भृगोः शुक्रस्य त्रिविहृतास्त्रिभक्ताः। असृजोऽक्षैः पञ्चभिर्भक्ताः। भागादि लब्धं ग्राह्यम्। तत् स्वशीघ्रफलवद् धनर्णं स्पष्टग्रहे देयं तौ भौमशुक्रौ स्फुटौ स्पष्टौ भवतः। एवं शीघ्रफलाऽन्त्यांकागमेऽन्त्याङ्कतुल्यह्रासानुपातादन्तरं जातम्। तद्भौमशुक्रयोरेवांकबहुत्वादुक्तम्। अन्येषामप्यन्तरमस्ति तत् स्वल्पत्वान्नोक्तम्॥

अत्रोपपत्तिः—अन्त्यांकः पञ्चषष्ट्यधिकशत १६५ मितशीघ्रकेन्द्रभागान्ते। अशीत्यधिकशत-१८० भागान्ते शून्यतुल्यः। पञ्चदशभागानां मध्ये सार्धाः सप्त ७।३०। तेष्वन्तरं भौमस्य १।३०। शुक्रस्य २।३०। अतोऽनुपातार्थं सार्धसप्तभागाल्पप्रयोजनात् पञ्चदशशुद्धा भागास्तयोरल्पा गृहीताः यदि सार्धसप्तभागैरन्तरे भौमशुक्रयोरेते लभ्येते तदेभिर्भागैः किमुभयत्रापि सार्धसप्त हरः स्वस्वान्तरे

गुणौ। गुणहरौ गुणाभ्यामपवर्त्य जातौ हरौ मंगलस्य ५। शुक्रस्य ३। आभ्यां ते लब्धभागा भाज्याः। फलं शीघ्रफलसम्बन्धित्वात् स्पष्टयोः शीघ्रफलवद्धनर्णं कार्यमित्युपपन्नम्। परन्तु अनेनापि विशेषफलेन संस्कृतौ भौमशुक्रौ महान्तरितौ दृश्येते। अन्त्यांकबाहुल्यात्। अत्र सुधीभिरेकान्त्यांकमध्ये त्रीश्चतुरो वा अंकान् कृत्वा शीघ्रफलसिद्धिः कर्त्तव्या। फलसाधनार्थं सूत्रं मयोक्तम्।

कुजसितचपलांकोऽन्त्यस्तदा शेषभागस्त्रिलवमितगतांकस्तत्परांकान्तरेण।
विनिहतनिजशेषादग्निभागेन हीनः स च दशविहृतः स्यादंशपूर्वं फलं हि।

शीघ्रांकाः कुसुतस्य गोजिनमिता द्व्यंकेन्दवोऽङ्केन्द्रकाः
शून्याशा द्विशराश्च खं त्वथ भृगोस्तर्काश्विरामास्तथा।
शून्याङ्काश्विमिता गजाम्बरदृशोऽब्धीन्द्रा नवाश्वाश्च खं
देयं तच्च पलं फलं हि सकलं मन्दस्फुटे स्यात् स्फुटः॥ १३

चन्द्रिका—शुक्र और मङ्गल के शीघ्रफल साधन के समय यदि अन्तिम ग्यारहवाँ गतांक आजाय तो शेषांक (१५ से भाग देने पर बचा हुआ शेष) को १५ में घटाना चाहिये। घटायी हुई संख्या और शेष में जो अल्प हो उसमें यदि शुक्र का हो तो ३ से भौम का हो तो ५ से भाग देकर लब्धि का, शीघ्रफल की तरह मन्दस्फुट ग्रह में संस्कार करने से स्पष्ट ग्रह होता है। १३

अन्त्य चलाङ्कागमे भौम-बुध-शुक्राणां गतिफले वैशिष्ट्यम्—

कुजबुधभृगुजानां चेच्चलाङ्कोऽन्तिमः स्याद्
दशहतपरिशेषांशा नगाद्र्यग्निभक्ताः।
फलमिषुदहनैर्युक् सप्तगोभिस्त्रिबाणै-
र्भवति गतिफलं तत् स्यात् तदा नैव पूर्वम्॥ १४

मल्लारिः—अथ तत्रैवान्त्यांकागमने भौमबुधशुक्रगतीनामपि विशेषमेकवृत्तेनाह। कुजेति। भौमबुधशुक्राणां शीघ्रांको यद्यन्तिमः स्यात् तदा दशभिर्हता गुणिता ये परिशेषांशास्ते नगाद्र्यग्निभक्ताः। भौमस्य सप्तभक्ताः। बुधस्यापि सप्तभक्ताः। शुक्रस्य त्रिभक्ताः। यत् फलं कलाद्यं तद्भौमस्य इषुदहनैः पञ्चत्रिंशद्भिर्युक्तम्। बुधस्य सप्तगोभिः सप्तनवत्या युक्तम्। शुक्रस्य त्रिबाणैस्त्रिपञ्चाशता ५३ युक्तम्। तत् तेषां गतेः शीघ्रफलं भवति। तदा पूर्वं भौमाच्चलांकविवरमित्यादिप्रकारेणानीतं तन्न ग्राह्यम्। अनेनैव फलेन गतिः स्पष्टा चलांकविवरमित्यादिप्रकारेण न कर्त्तव्या। अत्र प्रत्यक्षोपलब्धिरेव वासना॥ १४

चन्द्रिका—मङ्गल, बुध और शुक्र के शीघ्र गतिफल साधन के समय यदि अन्तिम शीघ्राङ्क आवे तो शीघ्रकेन्द्र के शेष (१५ से भाग देने पर बचे हुये शेष) को मंगल की गति हेतु १० से गुणा कर ७ का भाग देकर लब्धि को ३५ में जोड़ने से तथा बुध के गतिफल हेतु बुध के शेषांश को १० से गुणा कर ७ से भाग देकर लब्धि को ९७ में जोड़ने से तथा शुक्र के गतिफल हेतु शुक्र के शेषांश को १० से गुणाकर ३ का भाग देकर लब्धि को ५३ में जोड़ने से क्रम से मङ्गल-बुध और शुक्र के शीघ्र गतिफल होते हैं। इसे अपनी-अपनी मन्दस्पष्ट गति में घटाने से तत्तद् ग्रहों की स्पष्ट गति होगी। यहाँ पूर्वोक्त नियम से गतिफल सिद्ध नहीं होगा। १४

वक्रमार्गशीघ्रकेन्द्रांशा :—

त्रिनृपैः शरजिष्णुभिः शरार्कै-
र्नगभूपैस्त्रिभवैः क्रमात् कुजाद्याः।
चलकेन्द्रलवैः प्रयान्ति वक्रं
भगणात् तैः पतितैर्व्रजन्ति मार्गम् ॥ १५

मल्लारिः—अथ वक्रमार्गपरिज्ञानार्थं शीघ्रकेन्द्रभागान् वृत्तेनाह त्रिनृपैरिति। कुजाद्याः भौमाद्याः पञ्चग्रहाः क्रमादेभिश्चलकेन्द्रभागैर्वक्रं वक्रारम्भं यान्ति। त्रिनृपैः त्रिषष्ट्यधिकशतेन १६३। शरजिष्णुभिः पञ्चचत्वारिंशदधिकशतेन १४५। शरार्कैः सपादशतेन १२५। नगभूपैः सप्तषष्ट्यधिकशतेन १६७। त्रिभवैस्त्रयोदशाधिकशतेन ११३। एतैर्मार्गैर्भगणाच्चक्रभागेभ्यः ३६० पतितैः शेषांशतुल्यस्वकेन्द्रभागैर्मार्गं व्रजन्तीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः—ग्रहस्य वक्रारम्भेमार्गारम्भे च गतिः शून्यम्०। तच्च यदोच्चगतिसमा केन्द्रगतिस्तदैव। अत्र ग्रहाणां शीघ्रोच्चगतिर्ज्ञातैवास्ति तथा स्पष्टकेन्द्रगतितुल्यया भवितव्यम्। अत्रोदाहरणार्थं भौमस्य शीघ्रोच्चगतिः ५९।८। तथा तस्य मध्यमा गतिः ३१।२६। केन्द्रगतिः २७।४२। इयं तथा शीघ्रफलकोटिज्यया गुण्या शीघ्रकर्णेन भाज्या यथा उच्चगतेः समा स्यात्। तच्छीघ्रफलं कस्मात् केन्द्रात् सिध्यतीति विलोमेन शीघ्रकेन्द्रं जायते। अतस्ते शीघ्रकेन्द्रांशाः स्थिरा उक्ताः। त एव चक्रशुद्धाः मार्गभागाः स्युर्यतश्चक्रमध्ये द्विवारं गतेरभावः ॥ १५

चन्द्रिका—भौमादि ग्रह क्रम से १६३, १४५, १२५, १६७, ११३ केन्द्रांशों में वक्री हो जाते हैं। स्पष्टार्थ—भौम १६३ केन्द्रांश पर, बुध १४५ पर, गुरु १२५ पर, शुक्र १६७ तथा शनि ११३ केन्द्रांश पर वक्री होता है। इन केन्द्रांशों को भगण संख्या ३६० में घटाने से शेष तुल्य केन्द्रांशों में पुनः मार्गगति (मार्गी) होते है। [अर्थात् मंगल १९७, बुध २१५, गुरु २३५, शुक्र १९३ तथा शनि २४७ केन्द्रांशों पर मार्गी होते हैं]। १५

भौमगुरुशनीनामुदयास्तकेन्द्रांशा :—

क्षितिजोऽष्टयमैरुदेति पूर्वे
गुरुरिन्द्रैरविजस्तु सप्तचन्द्रैः।
स्वस्वोदयभागसंविहीनै-
र्भगणांशैरपरत्र यान्ति चास्तम् ॥ १६

मल्लारिः—अथोदयास्तयोः शीघ्रकेन्द्रभागानेकवृत्तेनाह क्षितिज इति। अष्टयमैरष्टाविंशत्यंशः शीघ्रकेन्द्रस्य भौमः पूर्वे पूर्वस्यां दिशि उदेति उदयं प्राप्नोति। इन्द्रैश्चतुर्दशभिर्गुरुः। रविजः शनिः सप्तचन्द्रैः सप्तदशभिः। स्वस्वोदयभागसंविहीनैर्भगणांशैः कृत्वाऽपरत्र पश्चिमायां ते क्रमेणास्तं यान्तीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः—पूर्ववत् कक्षावृत्तनीचोच्चवृत्तप्रतिमण्डलानि विनिर्दिशेत्। भौमगुरुशनीनां रविः शीघ्रोच्चं बुधशुक्रयोरपि साधितमस्ति। अतो रवेः समसूत्रस्थो यदा ग्रहो भवति तदा परमास्तमयः। तदाद्यन्तौ कालांशौ भवतः। अतएवास्तमये रवेरस्तमनानन्तरं ग्रहो दृश्यते शीघ्रत्वात् रविरस्तमासादयति तेन पश्चादस्तः। उदये शीघ्रत्वात् रवेरुदयात् प्रथमं दृश्यते तस्मात् प्रागुदय इत्युपपन्नम्। बुधशुक्रौ तु वक्रिणौ पश्चादस्तं व्रजतः। तयोर्विलोमगतित्वाद्रवेः प्राग्गतित्वाच्च। अत एव वक्रिणोः प्रागुदयः। तयोरपरगतित्वाद्रवेः प्राग्गतित्वात्। यदाधिकगती भवतस्तदा शीघ्रत्वात् रविमासादयतस्तस्मात् पूर्वास्तः। तावेव शीघ्रगतित्वात् सूर्यं त्यक्त्वाऽग्रे गच्छतः। अत एवास्तं गतेऽर्के पश्चिमायां तयोरुदयः। उदयास्ताध्याये ये कालांशा उक्ताः स्पष्टार्कात् तदंशान्तरिते ग्रहे उदयोऽस्तो वा स्यात् स स्थूलः। इह यच्छीघ्रकेन्द्रमुक्तं तन्मन्दस्पष्टमध्यार्कान्तरं स्यात्। यथा भौमस्याष्टाविंशतिभागैरेकादशभागाः फलं तैरधिको भौमोऽर्काद्यावच्छीघ्यते तावत् सप्तदशभागा भवन्ति। सप्तदशैव तस्य कालांशा अतस्तावति

केन्द्र उदयः । एभिश्चक्रशुद्धैरस्तः स्यात् । यतोऽत्रैभिर्भागैः ३३२ फलमेकादश-भागाः । तैरधिकोऽर्कार्चावच्छोध्यते तावत् सप्तदशभागान्तरं स्यात् । एवं सर्वेषाम् ॥ १६

चन्द्रिका – अस्तंगत भौम २८ शीघ्र केन्द्रांश पर, गुरु १४ केन्द्रांश पर तथा शनि १७ शीघ्रकेन्द्रांश होने पर पूर्व दिशा में उदित होते हैं। अपने अपने उदय केन्द्रांशों को भगणांश ३६० में घटाने से शेष तुल्य केन्द्रांशों में पुनः पश्चिमदिशा में अस्त होते हैं। यथा—भौम ३३२ केन्द्रांश पर गुरु ३४६ तथा शनि ३४३ केन्द्रांशों पर पुनः अस्तंगत होते हैं। १६

बुधशुक्रयोरुदयास्तकेन्द्रांशाः—

खशरैश्च जिनैः परे ज्ञभृग्वो-
रुदयोऽस्तोऽक्षदिनैर्नगाद्रिभूमिः ।
उदयोऽक्षनखैस्त्र्यहीन्दुभिः प्राग्
अस्तो दिग्दहनैश्च षट्सुरैः स्यात् ॥ १७

मल्लारिः—अथ बुधशुक्रयोरुदयास्तकेन्द्रांशानेकवृत्तेनाह । खशरैरिति । परे पश्चिमायां दिशि ज्ञभृग्वोर्बुधशुक्रयोरुदयः खशरैः ५० । जिनैः २४ । क्रमात् स्यात् । तत्रैवास्तोऽक्षदिनैः पञ्चपञ्चाशदधिकशतमितैः १५५ । नगाद्रिभूमिः सप्तसप्तत्यधिकशतमितैः १७७ । प्राक् पूर्वदिशि तयोरुदयोऽक्षनखैः पञ्चाधिक-शतद्वयेन २०५ । त्र्यहीन्दुभिस्त्र्यशीत्यधिकशतेन १८३ । तत्रास्तो दिग्दहनैर्दशा-धिकशतत्रयेण ३१० । षट्सुरैः षटत्रिंशदधिकशतत्रयेण ३३६ । स्यादित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः पूर्वमेव प्रतिपादिता ॥ १७

चन्द्रिका—बुध ५० केन्द्रांशों पर तथा शुक्र २४ केन्द्रांशों पर पश्चिम दिशा में उदय होता है। एवमेव १५५ केन्द्रांशों पर बुध १७७ केन्द्रांशों पर शुक्र पश्चिम दिशा में ही अस्त होते है। पुनः २०५ केन्द्रांशों पर बुध, २८३ केन्द्रांशों पर शुक्र पूर्व दिशा में उदित होते हैं तथा बुध ३१०, शुक्र ३३६ केन्द्रांशों पर पूर्व दिशा में अस्त होते हैं ॥ १७

ग्रहाणां वक्रोदयादिदिनज्ञानम्—

वक्रोदयादिगदितांशकतोऽधिकाल्पाः
केन्द्रांशकाः क्षितिसुताद् द्विगुणास्त्रिभक्ताः ।
साङ्कांशका दशहताङ्गहृताः कुभक्ता
वक्राद्यमाप्तदिवसैः क्रमशो गतैष्यम् ॥ १८

मल्लारिः - इदानीं वक्रमार्गादिदिनज्ञानमेकवृत्तेनाह । वक्रोदयादिति । वक्रोदयास्तमार्गाणां ये गदितांशा उक्ताः शीघ्रकेन्द्रभागास्तेभ्योऽधिका अल्पा इष्टदिने ये केन्द्रभागाः स्युस्तदा ते क्षितिसुतादेभिर्हरैर्भाज्याः । इष्टकेन्द्रांशोक्तकेन्द्रांशान्तरांशा भौमस्य द्विहृता बुधस्य त्रिभक्ता गुरोः साङ्कांशकाः सनवमांशाः शुक्रस्य दशहताः सन्तोऽङ्गैः षड्भिः ६ हृता भक्ताः शनेः कुभक्ता अविकृताः । एवमाप्तैर्लब्धैर्दिवसैर्वक्राद्यं वक्रोदयदमार्गादिकं गतैष्यं स्यात् । चेदिष्टकेन्द्रांशा उक्तेभ्योऽधिकांस्तदा गतमल्पास्तदा गम्यमित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः सुगमा तथापि किञ्चिदुच्यते । उक्तशीघ्रकेन्द्रतुल्यं यदा शीघ्रकेन्द्रं स्यात् तत्काले उदयास्ताद्यं स्यादेव । ऊनाधिकेऽनुपातः । यदि शीघ्रकेन्द्रगतिकलाभिरेकं दिनं तदाऽन्तरभागकलाभिः किमतोऽन्तरभागानां कलार्थं सर्वत्र षष्टिर्गुणः । स्वकेन्द्रगतिर्हरः । तत्राचार्येण लाघवार्थं स्वल्पान्तरत्वात् शीघ्रकेन्द्रगतयो मध्यमा एव गृहीताः । तत्र भौमस्य शीघ्रकेन्द्रगतिः २७।४२। अत्र गुणहरौ हरेणापवर्त्य जातो गुणः २ । एवं बुधस्य शीघ्रकेन्द्रगतिः १८६ । अत्र गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो गुणः १, हरः ३, गुरोः शीघ्रकेन्द्रगतिः ५४ । गुणहरौ षड्भिरपवर्त्तितौ गुणः १०, हरः ९ । यो राशिर्दशभिर्गुण्यो नवभिर्भज्यते स स्वनवमांशाधिक एवं भवति । एवं शुक्रस्य शीघ्रकेन्द्रगतिः ३७ । अत्र गुणहरौ षड्भिरपवर्त्त्य गुणः १०, हरः ६ । अतो दशहताङ्गहृताः । एवं शनेः शीघ्रकेन्द्रगतिः ५७।८। गुणहरयोः साम्यात् कुभक्ता इति लब्धैर्दिनैर्वक्राद्यं गतैष्यं स्यादित्युपपन्नम् ॥ १८

चन्द्रिका—वक्र-उदयादि पूर्वपठित केन्द्रांशों से यदि इष्टकालिक केन्द्रांश अल्प या अधिक हों तो इष्टकालिक और पठित केन्द्रांशों का अन्तर कर भौम के केन्द्रांशान्तर में २ का गुणा करने से, बुध के केन्द्रांशान्तर में ३ का भाग देने से, गुरु के केन्द्रांशान्तर में उसी का नवमांश मिलाने से, शुक्र के अन्तर को १० से गुणा कर ६ का भाग देने से, शनि के अन्तर को १ से

भाग देने (अर्थात् यथावत्) से लब्धि तुल्य दिवसों में वक्रादि का एष्य एवं गत मान होता है। (अर्थात् इष्ट केन्द्रांश यदि अल्प हो तो ऐष्य, अधिक हो तो गत समझना चाहिये)। १८

बुधशुक्रयोर्वक्रोदयादीनां दिनप्रमाणम्--

पूर्वास्तादुदयः परेऽनृजुगतिस्तोयास्तमैन्द्रयुद्गमो
मार्गोऽस्तोऽत्र च दन्तदन्तदहनाष्टयाज्याशदन्तैर्दिनैः।
चान्द्रेस्तत्परतत्परं त्वथ भृगोस्तद्वद्द्विमास्यात्ततो-
ऽष्टाभिर्व्यङ्घ्रिभुवांघ्रिणा विचरणेकेनाष्टमासैः क्रमात् ॥ १९

मल्लारि: अथ बुधशुक्रयोर्मध्यमानि वक्रमार्गोदयास्तदिनानि सिद्धान्त्यैकवृत्तेन वदति पूर्वास्तादिति। पूर्वास्तात् परे पश्चिमायामुदयः। ततोऽनृजुगतिर्वक्रत्वम्। ततस्योदयास्तं पश्चिमास्तम्। तत् ऐन्द्रयुद्गमः पूर्वोदयः। ततो मार्गः। ततः पूर्वास्तः। चान्द्रेबुंधस्य तत्परतत्परमेभिर्दिनैर्यथाक्रमं स्यात्। एतैः कैस्तानेवाह। दन्ता द्वात्रिंशत् ३२। पुनस्त एव ३२। दहनास्त्रयः ३। अष्टिः षोडश १६। आज्याशा अग्नयस्त्रयः ३। दन्ता द्वात्रिंशत् ३२। एभिर्दिनैरिति। अथ भृगोः शुक्रस्य तद्वत् तेनैव क्रमेणेभिर्दिनैरुदयाद्यं स्यात्। द्विमास्या मासद्वयेन। ततोऽष्टाभिरष्टमासैः व्यङ्घ्रिभुवा द्वाविंशतिदिनैः अंघ्रिणा दिनाष्टकेन। विचरणैकेन द्वाविंशतिदिनैः अष्टमासैः॥

अत्रोपपत्तिः-पूर्वास्तशीघ्रकेन्द्रांशाः पश्चिमोदयशीघ्रकेन्द्रांशकेभ्यो यावदन्तरितास्तावदंशानां कलाः केन्द्रगतिभक्ता दिनानि स्युः। एवं वक्रमार्गादीनामपि-तत्तत्केन्द्रान्तराद्दिनानि स्युरित्युपपन्नम्॥ १९

चन्द्रिका—बुध पूर्वदिशा में अस्त होने के ३२ दिन बाद पश्चिम में उदित होता है। उदय के ३२ दिन बाद वक्र, वक्र से ३ दिन बाद पश्चिम दिशा में ही अस्त होता है। अस्त से १६ दिन बाद पूर्व दिशा उदय, उदय से ३ दिन में मार्गी तथा मार्गी से ३२ दिन पश्चात् पूर्व दिशा में ही अस्त होता है।

शुक्र पूर्वदिशा में अस्त होने के २ मास पश्चात् पश्चिम में उदित होता है, उदय से ८ मास बाद वक्री, वक्रत्व से २२½ दिन बाद पश्चिम में अस्त, अस्त से ७½ दिन बाद पूर्वदिशा में पुनः उदय तथा उदय से २२½ दिन बाद मार्गी एवं मार्गत्व से ८ मास पश्चात् पुनः पूर्व दिशा में अस्त होता है। १९

भौमगुरुशनीनामुदयादि दिनप्रमाणम्—

भौमस्यास्तादुदयकुटिलर्जुत्वमौढ्यं क्रमात् स्या-
न्मासैर्वेदैरथ दशमितैर्लोचनाभ्यां च दिग्भिः।
जीवस्योर्व्या सचरणयुगैः सागरैः साङ्घ्रिवेदैः
साङ्घ्र्यैकेन त्रियुगदहनैरर्धयुक्तैस्तथाऽऽर्कैः ॥ २०

मल्लारि :—अथ भौमगुरुशनीनामुदयास्तवक्रमार्गदिनानि वृत्तेकेनाह भौमस्येति। भौमस्य अस्तादुदयः। ततः कुटिलं वक्रत्वम्। तत ऋजुत्वं मार्गत्वम् मौढ्यमस्तम्। इदं क्रमात् स्यात्। मासैर्वेदैश्चतुर्भिः ४। अथदश-१० मितैः लोचनाभ्यां द्वाभ्याम् २। दिग्भिर्दशभिः १० इति। जीवस्य गुरोस्तदेवास्ताद्यम्। उर्व्या एकमासेन। सचरणयुगैः सपादचतुर्मासैः। सागरैश्चतुर्भिः। सांघ्रिवेदैः सपादचतुर्भिः। तथाऽऽर्कैः शनेः सांघ्र्येकेन सपादैकमासेन। अर्धयुक्तैस्त्रियुगदहनैः। सार्धत्रिभिः। सार्धचतुर्भिः। सार्धत्रिभिः। क्रमात् स्यादित्यर्थः। एतानि मध्यमानि। स्पष्टानि तेभ्यः किञ्चिदूनाधिकानि भवन्ति। स्थूलत्वेन जनव्यवहारार्थमेतान्युक्तानि ॥ २०

अत्रोपपत्तिः पूर्वमेव प्रतिपादिता ॥ २०

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य जातः कुजादिस्फुटताधिकारः ॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञकृतग्रहलाघवस्य पञ्चतारास्पष्टीकरणाधिकारस्तृतीयः ॥ ३

चन्द्रिका—मङ्गल अस्तंगत होने के ४ मास पश्चात् उदित होता है तथा उदय से १० मास बाद वक्र, तत्पश्चात् २ मास में मार्गी, तदनन्तर १० मास में पुनः अस्त होता है। गुरु अस्तंगत होने के १ मास पश्चात् उदित होता है उदय से ४ $\frac{१}{४}$ मास में वक्री, वक्रत्व से ४ मास बाद मार्गी, तत्पश्चात् ४$\frac{१}{४}$ मास में पुनः अस्त होता है। शनि अस्त होने के १$\frac{१}{४}$ मास बाद उदित होता है। तदनन्तर ३$\frac{१}{२}$ मास में वक्री, वक्रत्व से ४$\frac{१}{२}$ मास पश्चात् मार्गी तत्पश्चात् ३$\frac{१}{२}$ मास में पुनः शनि अस्त होता है ।। २०

श्री गणेशदैवज्ञ कृत ग्रहलाघव के पञ्चतारास्पष्टीकरणाधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण ।। ३

—— ——

त्रिप्रश्नाधिकारः—४

लङ्कोदयमानेन स्वोदयमानानयनम्—

लङ्कोदया विघटिका गजभानि गोऽङ्क-
दस्रास्त्रिपक्षदहनाः क्रमगोत्क्रमस्थाः।
हीनान्विताश्चरदलैः क्रमगोत्क्रमस्थै-
र्मेषादितो घटत उत्क्रमतस्त्विमे स्युः॥ १

मल्लारिः—अथ त्रिप्रश्नाध्यायो व्याख्यायते। त्रयः प्रश्ना अत्राधिकारे कथ्यन्त इति त्रिप्रश्नः। ते के दिग्देशकालादिभिरिष्टसमयादिकमवबुध्यते तदुच्यते तत्रादौ लग्नोपयोगित्वाल्लङ्कोदयास्तेभ्यः स्वदेशीयकरणं चैकवृत्तेनाह लंकोदया इति। एते विघटिकाः पलात्मका लंकोदयाः स्युस्तानेवाह। गजभानि अष्टसप्त्यधिकशतद्वयम् २७८। गोंकदस्राएकोनत्रिशती २९९। त्रिपक्षदहनास्त्रयोविंशत्यधिकत्रिशती ३२३। एते मेषादीनां त्रयाणाम्। त एवोत्क्रमस्थाः कर्कादित्रयाणाम्। एते चरदलैः स्वदेशीयचरखण्डकैः। क्रमगोत्क्रमस्थैर्हीनान्विताः कार्याः। क्रमस्थैस्त्रिभिः क्रमस्थास्त्रयो हीनाः। उत्क्रमस्थैस्त्रिभिरुत्क्रमस्थास्त्रयो युक्ताः सन्तो मेषादितो मेषमारम्य षण्णां राशीनामुदयास्युः। अत एवोत्क्रमतो घटतस्तुलातः। षडुदया स्युरित्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः क्रान्तिवृत्ते क्षेत्रविभागेन द्वादशराशयस्तुल्यप्रमाणा एव भवन्ति। नाडीवृत्ते कालांशविभागेन सर्वे राशय उदयन्ति। निरक्षे तन्नाडीवृत्तं समं पूर्वापरमण्डलवद्भ्रमति। क्रान्तिमण्डलं च दक्षिणोत्तरतस्तिरश्चीनमुदेति। क्रान्तिवृत्तस्थो मेषो यावत् तिरश्चीन उदेति तावद्विषुवद्वृत्तेऽष्टाविंशतिभागाः किञ्चिन्न्यूनाः। एवं सर्वेऽपि। साधनोपायो यथा। सिद्धान्तोक्तबृहज्ज्ययैव मेषादीनां त्रयाणां स्वक्रान्त्यग्रेषु त्रीणि स्वाहोरात्रवृत्तानि विषुवद् उत्तरतो बध्नीयात्। तथा तुलादिकानां विषुवद्वृत्ततो दक्षिणतस्त्रीणि स्वाहोरात्रवृत्तानि स्वक्रान्त्यग्रेषु बध्नीयात्। तत्क्रान्तिमण्डले मेषान्ते सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमग्रं मीनादौ बध्नीयात्। एवं वृषमिथुनान्तयोः सूत्राग्रे बद्ध्वा तयोर्द्वितीयाग्रके कुम्भमकरादौ बध्नीयात्। तेषां

सूत्राणां यान्यर्धानि तानि क्रमेण मेषवृषमिथुनान्तानां जीवास्त एव मीनकुम्भमकराणाम्। ततस्ताभिः कर्कटसूत्राद्विषुवत्कल्पनामध्ये त्रीणि वृत्तानि कृत्वा निष्पादयेत्। तत्र स्वजीवा कर्णः। स्वक्रान्तिज्या याम्योत्तरा भुजः। कोटिरूर्ध्वाधरा न ज्ञायते। मेषवृषयोः मिथुनज्यया यद्वृत्तमुत्पद्यते तद्याम्योत्तरवृत्तमेव भवति। तत्रैवोर्ध्वाधरा कोटिः स्वाहोरात्रव्यासार्धतुल्या भवति। मेषवृषयोरूर्ध्वाधरा कोटिः स्वाहोरात्रे न ज्ञायते तत्परिज्ञानायानुपातद्वयम्। तद्यथा यदि मिथुनज्यात्रिज्याकर्णस्य मिथुनस्वाहोरात्रवृत्तव्यासार्धतुल्योर्ध्वाधरा कोटिस्तदा मेषज्याकर्णस्य केति। ततो व्यासार्धवृत्तपरिणामाय द्वितीयं त्रैराशिकम्। यदि मेषस्य स्वाहोरात्रवृत्ते एतावती कोटिस्तदा त्रिज्यावृत्ते किमिति। एवं प्रथम त्रिज्यागुणोऽनन्तरं हरस्तुल्यत्वात् तयोर्नाशे कृते मिथुनस्वाहोरात्रव्यासार्धस्य मेषज्या गुणो मेषस्वाहोरात्रवृत्तव्यासार्धं हरः। फलं मेषस्य वृत्ते व्यासार्धे ऊर्ध्वाधरा कोटिः। एवं वृषमिथुनयोः कोटी साध्ये कोटिफलानां ज्यारूपाणां धनूंषि कर्त्तव्यानि। यतो वृत्तगत्या क्रान्तिमण्डलमुदेत्यतो धनुष्करणम्। मिथुनकोट्या उदयन्त्या मेषवृषावप्युदयतः। अतो वृषचापं मिथुनचापाद्विशोध्यते मिथुनोदयप्राणाः स्यु। मेषोदयप्राणा यथागता एव। ते चैते। मेषे १६७०। वृषे १७९५ मिथुने १९३५। एते षड्भक्ताः पलानि स्युः। यतः षड्भिरसुभिरेकं पलम् एवं जाता गजभानीत्यादयः। मेषज्या कर्णः संनिहितत्वान्मेषकोट्या उदेति। वृषज्या कर्णः किञ्चिद्विप्रकृष्टत्वान्महत्या वृषकोट्या उदेति। मिथुनज्या कर्णो विषुवन्मण्डलादतिदूरे स्थितत्वात् तिर्यक्त्वेनातिमहत्या मिथुनान्तादिभ्यां कर्कटाद्यन्तौ समावतो मिथुनोदयप्राणाः कर्कटोदयः स्यात्। एवं वृषमेषान्तादिभ्यां सिंहकन्याद्यन्तौ समावतो वृषमेषसमा सिंहकन्योदयौ। द्वितीयमण्डलार्धस्य विषुवतो दक्षिणेन स्थितत्वान् मेषाद्युदयानामुत्क्रमेणोदयप्राणास्तुलादिषु भवन्ति। एवं निरक्षदेशे। अन्यथा यदि विषुवद्वृत्ते राशयः स्युस्तदा पञ्चघटिका राश्युदयाः स्युः राशयश्चापममण्डले तस्माद्भिन्नप्राणा राश्युदया निरक्षे स्युः। एतत् सर्वं यथास्थिते निरक्षगोले दर्शयेत्।

अथ स्वदेशोदयोपपत्तिः—अक्षवशाद्विषुववृत्तमपि तिर्यग्भवति। तद्वशान्मेषादीनां स्वाहोरात्राण्यपि तिर्यग्भवन्ति अतो मेषोदयः स्वचरार्धैर्वियुज्यते। मेषोदयस्तिर्यक्कर्णरूपः। कर्णाच्च कोटिरल्पा स्यात्। क्रमाच्चरदलहीनाः स्वदेशोदयाः स्युः। अतो विषुवन्मण्डलपादेन चरदलहीनेनायमपवृत्तपादः प्रथममुदेति। कर्कटादयो व्यस्तैश्चरदलैर्युक्ताः क्रियन्ते यतस्तेषां विपरीतं तिर्यक्त्वम्। ते उत्क्रमचरखण्डयुक्ताः कर्कटादीनां त्रयाणामुदयाः स्युरिति। अतः क्रान्तिवृत्तपादो द्वितीय-

श्चरदलयुक्तेन विषुवद्वृत्तपादेनोदेतीत्युपपन्नम् । द्वितीयपादवत् तृतीयः प्रथमवच्चतुर्थोऽपि वृत्तपाद उदेति । उक्तं च भास्करीये सिद्धान्ते ।[1]

मेषादेर्मिथुनान्तो नाडीभिस्तिथिमिताभिरुद्वलये ।
लगति कुजे तदधःस्थे प्रथमं ताभिश्चरोनाभिः ।।
कन्यान्ताद्ध नुषोऽन्तस्तिथिमितनाडीभिरुद्वृत्ते ।
लगति कुजे चोर्ध्वस्थे पश्चात् ताभिश्चराढ्याभिः ।।

एवमत्र संक्षिप्तोदयोपपत्तिर्विस्तरभयादुक्ता ।।

चन्द्रिका— २७८, २९९, ३२३ इनको क्रम एवं उत्क्रम से रखने से मेषादि ६ राशियों के लङ्कोदय पल होते है। तथा ये ही अंक उत्क्रम से तुलादि ६ राशियों के लङ्कोदय पल होते हैं। यथा— मेष का २७८, वृष का २९९, मिथुन का ३२३, कर्क का ३२३, सिंह का २९९, कन्या का २७८ पुनः विपरीत क्रम से तुला का २७८, वृश्चिक का २९९ धनु का ३२३, मकर का ३२३, कुम्भ का २९९ तथा मीन का २७८।

इनमें क्रम से चरखण्डों को तीन राशियों (मेष, वृष, मिथुन) में घटाने से तथा क्रम से तीन राशियों (कर्क, सिंह, कन्या) में जोड़ने से मेषादि ६ राशियों के स्वदेशोदय पल होंगे तथा ये ही विपरीत क्रम से तुलादि ६ राशियों के भी स्वदेशीय उदय पल होंगे।[1]

स्पष्टार्थ उदाहरण —

वाराणसी के चरखण्ड ५७, ४६, १९ को उक्त नियमानुसार घटाने एवं जोड़ने से —

लङ्कोदय		चरखण्ड		वाराणसी का उदय		
२७८	—	५७	=	मेष	२२१	मीन
२९९	—	४६	=	वृष	२५३	कुम्भ
३२३	—	१९	=	मिथुन	३०४	मकर
३२३	+	१९	=	कर्क	३४२	धनु
२९९	+	४६	=	सिंह	३४५	वृश्चिक
२७८	+	५७	=	कन्या	३३५	तुला

इसी प्रकार अभीष्ट स्थान की पलभा द्वारा चरखण्ड लाकर उक्त रीति से ऋण धन संस्कार द्वारा अभीष्ट स्थान के उदय मान को जाना

१. सि. शि. गो. त्रि. वा. २० ।

जा सकता है। यथा--जम्मू की पलभा ७।४३ चरखण्ड ७७, ६१, २५ इनका लङ्कोदय में ऋण-धन संस्कार करने से जम्मू का उदय मान मेष मीन का २०१, वृष कुम्भ का २३८, मिथुन मकर का २९८, कर्क धनु का ३४८, सिंह वृश्चिक का ३६० तथा कन्या तुला का ३५५ हुआ। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

लग्नानयनम्--

तत्कालार्कः सायनः स्वोदयघ्ना
भोग्यांशाः खत्र्युद्धृता भोग्यकालः।
एवं यातांशैर्भवेद्यातकालो
भोग्यः शोध्योऽभीष्टनाडीपलेभ्यः २ ॥
तदनु जहीहि गृहोदयांश्च शेषं
गगनगुणघ्नमशुद्धहृल्लवाद्यम्।
सहितमजादिगृहैरशुद्धपूर्वै-
र्भवति विलग्नमदोऽयनांशहीनम् ॥ ३

मल्लारिः--अथ लग्नसाधनमाह तत्कालार्क इति। यस्मिन् काले लग्नं साध्यते तत्कालीनः सूर्यः सायनोऽयनांशयुक्तः कार्यः। अस्य सूर्यस्य राशिवशाद्यः स्वदेशीय उदयस्तेन भोग्यांशा रवेस्त्रिंशच्युता भुक्तभागा गुण्याः। ते खत्र्युद्धृता-स्त्रिंशद्भक्ताः सन्तः पलाद्यो रवेर्भोग्यकालः स्यात्। एवममुनैव प्रकारेण सायनस्य यातांशैर्भुक्तभागैर्यातकालो भुक्तकालः स्यात्। स यथा उदयगुणा भुक्त-भागास्त्रिंशद्भक्ता इति लग्नभुक्तकालार्थमिदमुक्तम्। भोग्यः काल इष्टघटीनां पलेभ्यः शोध्यः। ततः किंविधेयमित्यत आह। तदनु तदनन्तरं गृहोदयान् तदग्र-राश्युदयान् तस्मात् कालात् जहीहि यावन्तः शुद्ध्यन्ति तावन्तः शोधयेदित्यर्थः। यच्छेषं तद्गगनगुणघ्नं त्रिंशद्गुणमशुद्धेनोदयेन हृद्भक्तं। लवाद्यं भागाद्यं यल्लब्धं तदजाद्यशुद्धपूर्वैः सहितम्। अशुद्धोदयतः पूर्वं यावन्तो मेषादयो राशयस्ते तस्य ऊर्ध्वस्थाने गृहे स्थाप्याः। तदयनांशहीनं सत् तात्कालिकं राश्यादिकं लग्नं भवतीति व्याख्या ॥

अत्रोपपत्तिः सुगमा क्रमसिद्धा तथाऽपि किञ्चिदुच्यते। अभीष्टकाले यः क्रान्तिमण्डलप्रदेशः क्षितिजे लग्नस्तल्लग्नमित्युच्यते। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ। 'यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते'।[१]

तच्च लग्नमवधेः साध्यम्। अवधिस्तु रविः। तस्य मण्डले स्थितत्वात्।

---

१. सि. शि. गो. त्रि. वा. २६।

उदाहरण—(१) सं २०३२ शक १८९७ माघ कृष्ण १० सोमवार को १५।३० इष्ट घटी पर वाराणसी आक्षांश २५।२० पर लग्नसाधन अभीष्ट है। अतः तात्कालिक सूर्य ९।११।५७।३८ में तात्कालिक अयनांश २३।३०। २४ जोड़ने से सायनसूर्य १०।५।२८।२ हुआ इसके अंशादि ५।२८।२ को ३० में घटाने शेष २४।३१।५८ भोग्यांश हुआ। सायन सूर्य की राशि कुम्भ के उदयमान २५३ से गुणा किया—

२४। ३१। ५८
× २५३

६०७२।७८४३।१४६७४

कलादि को ६० से अपवर्तित करने से गुणनफल ६२०६।४७।३४ को ३० से भाग दिया—

३०) ६२०६।४७।३४ (२०६।५३।३५
६०
२०६
१८०
२६ × ६०
१५६०
४७
१६०७
१५०
१०७
९०
१७ × ६०
१०२०
३४
१०५४
९०
१५४
१५०
४

सदैव रव्युदये रविरेव लग्नम् । तस्य पूर्वगतित्वेन तात्कालिकत्वं क्रियते । प्रवहाक्षिप्तमपमण्डलमिष्टघटीषु प्रत्यक् चलितं तदा क्षितिजेऽपमण्डलप्रदेशो लग्नस्तज्ज्ञानायोपायः । सायनार्केण यद्भोग्यं तत्र कालः साध्यते । यदि त्रिंशद्भागैः ३० रव्याक्रान्तोदयपलानि लभ्यन्ते तदा भोग्यभागैः किमिति । एवं सद्भोग्यपलानीष्टघटीपलेभ्यः शोध्यानि ततो यच्छेषं तस्मादुदयाः शोध्याः । यावन्तः सिध्यन्ति तावन्तो राशयो रवौ योज्याः । यतो रविराशितोऽग्रे लग्नस्य तावन्तो राशयो याताः । ते त्वशुद्धपूर्वा मेषादयो राशय एव भवन्ति । शेषपलेभ्योंऽशानयनवासनाऽनुपाताद्यथा । यद्यशुद्धोदयपलैस्त्रिंशद्भागा लभ्यन्ते तदा शेषपलैः किमिति । फलं भागादि तदशुद्धपूर्वमेषादिराशियुक्तं लग्नं स्यादेव । तत्रायनांशा हीनाः कार्या । यतः पूर्व योजिताः सन्ति । पूर्वमुदयग्रहाणार्थमयनांशा योज्या एव । यतः सर्वाणि विषुवायनचिह्नानि सायनान्येव ॥ २-३

चन्द्रिका—तात्कालिक (इष्टकालिक) सूर्य को अयनांश में जोडकर सायन बनाकर उसके भोग्यांश (अंशादि को ३० में घटाकर शेष) को अपने स्वोदय (जिस राशि पर सायन सूर्य हो उस राशि के स्वदेशीय उदयमान) से गुणा कर ३० से भाग देने पर भोग्यकाल होता है। इसी प्रकार भुक्तांश (सायन सूर्य के अंशादि) को स्वोदय से गुणा कर ३० से भाग देने पर लब्धि भुक्तकाल होगी। लब्ध भोग्यकाल को पलात्मक इष्टघटी में घटा कर शेष में अग्रिम राशियों के उदय मान (जितने घट सकें) घटा कर शेष को ३० से गुणा कर अशुद्ध राशि (जो न घट सकी हो) के उदयमान से भाग देकर लब्धि को मेषादि शुद्ध राशि (जो घट चुकी हो) की संख्या में जोड़ने से सायन लग्न होगा। अयनांश घटाने से स्पष्ट लग्न राश्यादि होगा। २.३

विशेष—यदि भुक्त रीति से लग्नानयन करना हो तो भुक्तकाल को इष्टपल में घटाकर शेष में गत राशियों के उदय मान घटाकर शेष को ३० से गुणा कर अशुद्ध राशि से भाग देकर लब्धि को अशुद्ध राशि की संख्या में घटाने से सायन लग्न होगा। अयनांश घटाने से स्पष्ट निरयन लग्न होगा।

लब्धि २०६।५३।३५ भोग्यकाल को पलात्मक इष्ट ९३० में घटाकर यथासम्भव राशियों के उदयमान घटाने से—

```
९३०। ०। ०
२०६।५३।३५
─────────
७२३। ६।२५

७२३। ६।२५
२२१ मीन
─────────
५०२
२२१ मेष
─────────
२८१
२५३ वृष
─────────
२८।६।२५
   × ३०
─────────
८४३।१२।३०
```

वृष राशि के बाद मिथुन का उदयमान नहीं घट रहा है अतः शेष को ३० से गुणा कर मिथुन के उदयमान ३०४ से गुणनफल में भाग दिया।

```
३०४) ८४३।१२।३० (२।४६।२५
     ६०८
     ───
     २३५ × ६०              १२८ × ६०

    १४१००                 ७६८०
       १२                   ३०
    ─────                 ────
    १४११२                 ७७१०
    १२१६                  ६०८
    ─────                 ────
     १९५२                 १६३०
     १८२४                 १५२०
     ────                 ────
      १२८                  ११०
```

	२।०। ०। ०
	२।४६।२५
लब्धि २।४६।२५ को शुद्ध राशि	०।२।४६।२५ सायनलग्न
वृष की संख्या २ में जोड़कर अयनांश	२३।३०।२४ अयनांश
घटाया—	११।९।१६। १ निरयनलग्न

(२) सं० २०३२ शक १८९७ माघकृष्ण १० सोमवार इष्टघटी ५०। ३० पर जम्मू में लग्नसाधन अभीष्ट है। तात्कालिक सूर्य ९।१२।३१।४८ अयनांश २३।३०।२४ इसे स्पष्टसूर्य में जोड़ने से १०।६।२।१२ सायनसूर्य हुआ। मध्यरात्रि के पश्चात् का इष्ट है इसलिए इष्ट घटी को ६० घटी में घटा कर शेष ९।३० को रात्रि शेष का इष्ट मानकर भुक्त रीति से लग्न साधन सुगम होगा। सायन सूर्य के भुक्तांश ६।२।१२ को सायन सूर्य की राशि कुम्भ के जम्बुप्रदेशीय उदयमान २३८ से गुणा करगुणन-फल १४३६।४३।३६ में ३० से भाग देने पर लब्धि ४७।५३।२७ भुक्त-काल हुआ। रात्रि शेष के इष्ट पल ५७० में भुक्तकाल घटाकर शेष में सायन सूर्य जिस राशि पर है उससे पिछली राशियों को यथासम्भव घटाया। यथा—

	५७०। ०। ०
	४७।५३।२७
	५२२। ६।३३
मकर	२९८
	२२४। ६।३३
	× ३०
	६७२३।१६।३०

धनु का उदयमान ३४८ नहीं घट सका अतः शेष में ३० का गुणा कर धनु के उदय मान से भाग दिया—

३४८) ६७२३।१६।३० (१९
३४८
३२४३
३१३२
१११ × ६०
६६६०
१६
६६७६ (१९
३४८
३१९६
३१३२
६४ × ६०
३८४०
३०
३८७० (११
३४८
३९०
३४८
४२

लब्धि १९।१९।११ को अशुद्ध राशि (जो नहीं घट सकी) धनु की संख्या ९ से घटाने पर सायन लग्न हुआ। यथा—

९। ०। ०। ०
−१९।१९।११
८।१०।४०।४९ सा. ल.
−२३।३०।२४ अयनांश
७।१७।१०।२५

अयनांश घटाने से ७।१७।१०।२५ स्पष्ट लग्न हुआ।

लग्नानयने विशेषः, लग्नादिष्टसाधनञ्च—

भोग्यतोऽल्पेष्टकालात् खरामाहतात् ।
स्वोदयाप्तांशयुग्भास्करः स्यात् तनुः ।
अर्कभोग्यस्तनोर्भुक्त कालान्वितो
युक्तमध्योदयोऽभीष्टकालो भवेत् ॥ ४ ॥

मल्लारिः—अथ भोग्याल्पकाले लग्नसाधनमाह भोग्य इति । भोग्यतो भोग्यकालतोऽल्पेष्टकालात् खरामाहतात् त्रिंशद्गुणात् स्वोदेयन स्वराश्युदयेनहृतात् तस्माद्ये आप्तांशा लब्धभागास्तद्युक्तो भास्करस्तनुर्लग्नं स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । यद्युदयपलैस्त्रिंशद्भागास्तदेष्टकालपलैः किमिति सुगमा ॥

अथ लग्नादिष्टकालसाधनमाह अर्कभोग्य इति । अर्कस्य सायनस्य या भोग्यकालः स तनोर्लग्नस्य सायनस्य भुक्तकालेनान्वितो युक्तः । ततो युक्तो मध्योदयो यत्र स तथा । सूर्यस्य राश्युदयादग्रे लग्नराश्युदयात् पूर्वं ये उदयास्तद्युक्तः स्वाभीष्टकालो भवेदित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । इष्टकाले सूर्यादुदयपर्यन्तमिष्टकालो वर्त्तते । रविभोग्यभागान् यः कालस्तदग्रतो राश्युदयास्ततस्तदनु भुक्तकालस्तेषां योग इष्टकालो भवतीति सुगमं प्रत्यक्षं गोले च दृश्यते ॥ ४ ॥

चन्द्रिका—सूर्य के भोग्यकाल से इष्टकाल अल्प हो तो, इष्ट को ३० से गुणा कर अपने स्वोदय पल (जिस राशि पर सायन सूर्य हो उस राशि के स्वदेशोय उदय पल) से भाग देकर लब्धि को स्पष्ट सूर्य में जोड़ने से लग्न होता है ।

सूर्य के भोग्य पल में लग्न के भुक्त पल को जोड़कर सूर्य और लग्न के मध्य की राशियों के उदय मान को जोड़ने से इष्टपल होता है । ४

उदाहरण—इष्टकाल १।३० स्पष्टसूर्य ७।१२।३५।३१ अयनांश २४। १२।३० । सायनसूर्य ८।६।४८।१ इसके भुक्तांश २३।११।५९ को धनु के उदय पल ३४२ से गुणाकर ३० से भाग देने पर २६४।२८।३६ भोग्यकाल हुआ । यह इष्टकाल १।३० के पल ९० से अधिक है । अतः यह नहीं घट सकेगा । अतः इष्टपल ९० को ३० से गुणा किया गुणनफल २७०० में धनु के उदय-

पल ३४२ का भाग देने से ७।५३।४१ लब्धि प्राप्त हुई इसे स्पष्ट सूर्य ७।१२। ३५।३१ में जोड़ने से ७।२०।२९।१२ स्पष्ट लग्न हुआ।

इष्टकाल साधन—स्पष्टलग्न १।९।१६।१ स्पष्टसूर्य ९।११।५७।३८ अयनांशाः २३।३०।२४। इष्टकाल साधन हेतु सूर्य का पूर्वोक्तरीति से भोग्य-काल २०६।५३।३५ साधन कर, इसमें सायलग्न २।२।४६।२५ के भुक्तांश २।४६।२५ से भुक्तकाल २८।६।१ लाकर जोड़ने से २३४।५९।३६ हुआ। अर्थात् स्वल्पान्तरतः २३५ पल हुआ। इसमें सायन सूर्य और सायन लग्न के बीच में आने वाली मीन, मेष और वृष राशियों के उदय मान क्रम से २२१ +२२१+२५३ जोड़ने से ९३० पल हुआ। यही इष्ट पल हुआ इसे घट्यादि बनाने पर १५।३० इष्ट हुआ।

एकराशौ लग्नरव्योः स्थितौ इष्टानयनम्—

> **यदि तनुदिननाथावेकराशौ तदंशा-**
> **न्तरहत उदयः स्यात् खाग्निहृत त्विष्टकालः।**
> **इनत उदय ऊनश्चेत् स शोध्यो द्युरात्रान्-**
> **निशि तु सरसभार्कात् स्यात् तनूरिष्टकाले ॥ ५**

मल्लारिः—अथ सूर्यलग्ने यदैकराशिस्थे तदेष्टकालानयनमाह यदि तनु-दिननाथाविति। यदि सायनौ लग्नसूर्यावेकराशिस्थौ तदा तदंशानां तद्भागानां यदन्तरं तेन हतो गुणितो यः स्वोदयः स खाग्निहृत् त्रिंशद्भक्त इष्टकालः स्यात्। इनतः सूर्यादुदयो लग्नं चेदूनं तदा स कालस्तदंशान्तरहत उदय इत्यादिना साधितः काल इत्यर्थः। स द्युरात्रात् षष्टेः शोध्यः। एतदुक्तं भवति। अर्कोद-यात् पूर्वं किल लग्नमर्कादूनं भवति तत्र कालानयने सायनौ लग्नार्कौ यदि भिन्न-राशिस्थौ भवतस्तदाऽर्कभोग्यस्तनोर्भुक्तकालान्वित इत्यनेन कालं साधयेत्। यदि चैकराशिगौ तदा तदंशान्तरहत उदय इत्यादिना कालः समायाति रात्रि-शेषेऽर्कोदयाद्घटिकाज्ञानार्थं स षष्टः शोध्यः। रात्रिगतघटिकाज्ञानाय रात्रि-मानाद्वा शोध्यः। अत एव 'शोध्यो द्युरात्रादथवा रजन्या' इति। निशि रात्रौ सरसभार्कात् सषड्भसूर्यादिष्टकाले तनुर्लग्नं स्यादिति ॥

अत्रोपपत्तिः यदि त्रिंशद्भागैः सूर्याधिष्ठितोदयपलानि लभ्यन्ते तदा तयोरन्तरांशैः किमिति फलमिष्टकालः स्यात् । सूर्याल्लग्ने ऊने सूर्योदयात् पूर्वमेव भविष्यति । अतः स कालः षष्टिशुद्ध इत्युक्तम् । रात्रौ लग्नसाधनार्थं रविः सषड्भः कार्य एव । यतः प्रागपरत्र क्षितिजयोरन्तरे षड्राशय एव भवन्ति । अत उदयलग्नं षड्राशियुक्तमस्तलग्नं भवति । अत उक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ ।

'योऽभ्युदेति समयेन येन तत्सप्तमोऽस्तमुपयाति तेन च'[1] ॥ ५

चन्द्रिका--यदि सूर्य और लग्न एक ही राशि में स्थित हों तो दोनों के अन्तर को स्वोदय (जिस राशि पर सूर्य और लग्न हो) पल से गुणा कर ३० से भाग देने पर इष्टकाल होता है। यदि लग्न के अंश सूर्य के अंश से अल्प हो तो उक्त रीति से साधित इष्ट को ६० में घटाने से इष्टकाल होता है।

यदि रात्रि में लग्न साधन अभीष्ट हो तो सूर्य में ६ राशि जोड़कर लग्न साधन करना चाहिए। ४

विशेष--यदि मध्य रात्रि के पश्चात् लग्न साधन करना हो तो इष्ट घटी को ६० घटी में घटा कर शेष को रात्रि शेष का इष्ट मान कर भुक्त रीति से भी लग्न साधन किया जा सकता है।

उदाहरण--सायनसूर्य ८।६।४८।१ सायनलग्न ८।१४।४१।४२ दोनों ही एक ही धनु राशि में है। अतः दोनों के अन्तर अंशादि ७।५३।४१ को धन के उदय मान ३४२ से गुणा किया तो गुणनफल २७०० प्राप्त हुआ। इसे ३० से भाग देने पर लब्धि ९० इष्ट पल हुआ। इसे ६० से भाग देने पर १।३० घट्यादि इष्टकाल हुआ। ५

गोलायनपरिभाषां प्रदर्श्य दिनरात्रिमानाक्षांशानयनम्—

गोलौ स्तः सौम्ययाम्यौ क्रियघटरसभे खेचरेऽथायने ते
नक्रात् कीटाच्च षट्भेऽथ चरपलयुतोनास्तु पञ्चेन्दुनाड्यः ।
घस्राधं गोलयोः स्यात् तदयुतखगुणाः स्यान्निशार्धं तथाऽक्ष-
च्छायेषुघ्न्यक्षभायाः कृतिदशमलवोना यमाशाः पलांशाः ॥ ६

मल्लारिः—अथ गोलायनकथनं दिनरात्रिपलांशसाधनमेकवृत्तेनाह गोला-

१. सि. शि. गो. त्रि वा. २४ ।

विति। खेचरे सायने ग्रहे क्रियघटरसभे सौम्ययाम्यौ गोलौ स्तः। मेषादिषड्राशिस्थे उत्तरगोलः। तुलादिषड्राशिस्थे दक्षिणगोलः। नक्रात् षड्भे मकरादिषड्भे उत्तरायणम्। कर्कात् षड्भे दक्षिणानयनम्।

अत्रोपपत्तिः। क्रान्त्यभावो यत्र स गोलादिः। क्रान्त्यभावः सायनभुजाभावे। भुजाभावो मेषादौ तुलादावतस्तौ गोलसन्धी। मेषादिषड्राशयो भचक्रे उत्तरार्धे सन्त्यत उत्तरगोलः। तुलादयो दक्षिणार्धेऽतः स दक्षिणगोल इति। यत्र परमक्रान्तिः सोऽयनसन्धिः। परमक्रान्तिस्तु भुजपरमत्वे। भुजपरमत्वं च कर्कटादौ मकरादौ च भवत्यतस्तावयनसन्धी॥

अथ दिनरात्री साधयति पञ्चेन्दुनाड्यः पञ्चदशघटिका गोलयोश्चरपलयुतौ वा उत्तरगोले युक्ता दक्षिणगोले हीनास्तद्घस्रार्धं दिनार्धंस्यात्। तेनायुताः खगुणास्त्रिंशन्निशार्धं रात्रिदलं स्यात्। ते द्विगुणे दिनरात्रिमाने भवत इत्यर्थत एव सिद्धम्॥

अस्योपपत्तिः निरक्षदेशेऽहोरात्रवृत्ते उन्मण्डलाद्याम्योत्तरवृत्तसम्पातं यावत् सदा पञ्चदशघटिका भवन्ति क्षितिजोन्मण्डलयोरेकत्वात्। तथा प्रवाहक्षिप्तचक्रस्य समपूर्वापरभ्रमणत्वात्। अन्यदेशे क्षितिजोन्मण्डलयोर्भिन्नत्वात् तदन्तररविनाडीभिरूनाधिकाः पञ्चदशघटिकाः सम्भवन्ति उन्मण्डलक्षितिजयोरन्तरं चरम्। उक्तं च भास्कराचार्येण—

'उन्मण्डलक्ष्मावलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकाल'[1] इति।

उत्तरगोले उन्मण्डलादधः क्षितिजं स्थितं तस्माच्चरेणाधिकाः पञ्चदशघटिकाः क्रियन्ते तद्दिनार्धं स्यात्। याम्ये तून्मण्डलादूर्ध्वं क्षितिजं तस्माद् तदूना एव पञ्चदश घटिका दिनदलं स्यात्। ततस्तत् त्रिंशच्छुद्धं रात्रिदलं स्यादेव। ते द्विगुणे दिनरात्रिमाने। उदयाक्षितिजादस्तक्षितिजं यावदहोरात्रवृत्ते तत्र यावत्यो घटिकास्तावद्दिनम्। क्षितिजाधोविभागादस्तक्षितिजपर्यन्तं रात्रिमानं तत सर्वं गोलोपरिदर्शयेत्। वासनामात्रमुक्तम्।

अथेति। अक्षच्छाया पलभा इषुघ्नी पञ्चगुणा। अक्षभायाः कृतेर्वर्गस्य यो दशमलवस्तेन ऊना सती यमाशा दक्षिणदिशः पलांशा अक्षांशाः स्युः॥

अत्रोपपत्तिः। यदि पलकर्णे पलभा भुजस्तदा त्रिज्याकर्णे कः फलमक्षज्या। तद्धनुरक्षांशा जाताः। धनुरानयनवासना पूर्वोक्तैव। अत्रैकांगुलां पलभां

१. सि. शि. गो. लि. वा. १

प्रकल्प्याक्षांशाः साधिताः ४।५४। यद्येकांगुलया पलभया एते तदेष्टया क इति। एभिः पलभा गुण्या इत्यत्रैषां पञ्चैव गृहीता। अतः पञ्चगुणपलभा पलांशा इति। अधिकं खण्डं गृहीतमिदम्० । ६ । इदं पलभावर्गस्य दशमांशेन समम् । अतस्तदूना एव कार्या। अधिकस्य गृहीतत्वात्। ते सदा दक्षिणा एव यतो लङ्कात उत्तरे सममण्डलान्नाडिकामण्डलं दक्षिणत एव सदा वर्त्तते। लङ्कातो दक्षिणे मनुष्य-सञ्चार एव नास्त्यतस्ते नोक्ताः ॥ ६

चन्द्रिका--मेषादि ६ राशियों में ग्रह हों तो सौम्य (उत्तर) गोल तथा तुलादि ६ राशियों में ग्रह हों तो दक्षिणगोल होता है। इसीप्रकार मकरादि ६ राशियों में ग्रह हों तो उत्तरायण एवं कर्कादि ६ राशियों में हों तो दक्षिणायन होता है।

उत्तर गोल में यदि ग्रह (सूर्य) हो तो चरपल में १५ घटी जोड़ने से तथा दक्षिण गोल में सूर्य हो तो चरपल को १५ घटी में घटाने से दिनार्धं होता है।

दिनार्ध को ३० घटी में घटाने से रात्र्यर्ध होता है।

पलभा को ५ से गुणा कर गुणनफल में पलभा के वर्ग के दशमांश को घटाने से दक्षिण दिशा के अक्षांश होते है ॥६

उदाहरण--स्पष्ट सूर्य ७।१२।३५।३१ पलभा ५।४५ (वाराणसी) चरपल (पूर्वसाधित) १०७। सूर्य तुलादि राशिया में है अतः दक्षिणगोल हुआ। कर्कादि ६ राशियों के अन्तर्गत है अतः दक्षिण अयन हुआ।

चरपल १०७ को घट्यादि बनाने से १।४७ हुआ। दक्षिण गोल होने से १५ घटी में घटाया। शेष १३।१३ दिनार्ध हुआ। दिनार्ध १३।१३ को ३० घटी में घटाने से १६।४७ रात्र्यर्ध हुआ।

पलभा ५।४५ को ५ से गुणा किया तो २८।४५ हुआ। पलभा के वर्ग ३३।३ के दशमांश ३।१८ को २८।४५ में घटाने से शेष २५।२७ वाराणसी का अक्षांश हुआ। इसकी दिशा दक्षिण है ॥६

नतोन्नतकालयोः पलकर्णस्य चानयनम्—

यातः शेषः प्राक्परत्रोन्नतः स्यात्
कालस्तेनोनं द्युखण्डं नतं स्यात् ।
अक्षच्छायावर्गतत्त्वांशयुक्ता
मार्त्तण्डाः स्यादंगुलाद्योऽक्षकर्णः ॥ ७

मल्लारिः—अथ नतोन्नतसाधनमाह। प्राक् पूर्वकाले यातः भुक्तः काल उन्नतः स्यात्। अपरत्र पश्चिमकपाले शेष उर्वरित उन्नतकालः स्यात्। तेन ऊनं द्युखण्डं दिनार्धं नतं नतकालः स्यात् ॥

अत्रोपपत्ति :—दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसो वृत्ताकारतैव प्रतिभासते तस्य याम्योत्तरवृत्तमवधिं कृत्वा द्वे कपाले परिकल्पिते। तत्र यत्स्थो रविरुदयं याति तत् पूर्वकपालम्। यत्रास्तमुपयाति तत् पश्चिमकपालम्। यतो रविरेव पूर्वादिदिगभिव्यञ्जकः। ततः पूर्वक्षितिजाद्यावताऽभीष्टकालेन रविरुन्नतस्तावानुन्नतकाल इत्यभिधीयते। अपरकपालेऽस्तक्षितिजाद्यावान् शेषकालः स उन्नतकालः स्यात्। उन्नतं कालं दिनार्धादपास्य यः शेषकालस्तेन रविर्मध्याह्नतो नतो भवति। अपरकपाले रविदिनार्धयोरन्तरे यः कालः स एव नतो भवति। मध्याह्नाद्रवेस्तावता कालेन नतत्वादिति।

अथ कर्णसाधनमाह—अथ अक्षच्छायायाः पलभाया यो वर्गस्तस्य यस्तत्त्वांशः पञ्चविंशत्यंशस्तेन युक्ता मार्तण्डा द्वादशांगुलाद्योऽक्षकर्णः स्यात्।

अत्रोपपत्ति :—पलभाः भुजः। द्वादशांगुलशंकुः कोटिः। पलकर्णः कर्ण एव। पलभावर्गो द्वादशवर्गयुक्तस्तस्य मूलं पलकर्णः स्यात्। अत्रैकांगुलपलभायां जातः पलकर्णः १२।२।२४ अस्माद्द्वादश विशोध्य शेषम् ०।२।२४। इदं पलभावर्गतत्त्वांश तुल्यम्। अतस्तद्युक्ता द्वादश पलकर्णः स्यादित्युपपन्नम् ॥ ७

चन्द्रिका—दिन के समय जब नतोन्नत काल ज्ञान करना हो उस समय का इष्टकाल यदि दिनार्ध से अल्प हो तो इष्टघटी (गतकाल) पूर्व उन्नतकाल तथा दिनार्ध से अधिक हो अर्थात् अपराह्न का इष्टकाल हो तो दिन की शेष घटी (दिनमान—इष्ट घटी) पर उन्नतकाल होता है। दिनार्ध में उन्नतकाल घटाने से नतकाल होता है। इसी प्रकार रात्रि में भी नतोन्नत काल का ज्ञान होता है। पलभा के वर्ग का २५वाँ भाग १२ में जोड़ने से अङ्गुलादि पलकर्ण होता है ॥७

उदाहरण--दिनार्ध १३।१३ रात्र्यर्ध १६।४७ दिनमान २६।२६ रात्रिमान ३३।३४।

यदि इष्टघटी ८।४० हो तो दिनार्ध से अल्प होने के कारण ८।४० पूर्व उन्नतकाल हुआ। इसे दिनार्ध १३।१३ में घटाने से शेष ४।३३ पूर्वनत हुआ। यदि इष्टघटी अपराह्न की १८।३० कल्पना करे तो दिन शेष घटी (अर्थात् दिनमान २६।२६–१८।३०)=७।५६ पर उन्नतकाल हुआ इसे दिनार्ध १३।१३ में घटाने से ५।१७ पर नत हुआ।

इसी प्रकार पूर्वरात्रि का इष्ट ३६।४० कल्पना करे तो इष्ट में दिनमान घटाने से रात्रिगत इष्ट १०।१४ हुआ यही पर उन्नतकाल हुआ। रात्र्यर्ध १६।४७ में १०।१४ घटाने से शेष ६।३३ परनत हुआ। यदि इष्ट मध्य रात्रि के बाद का ४८।३० ग्रहण करे तो दिनमान घटाने से २२।४ रात्रिगत इष्ट हुआ इसे रात्रि मान ३३।३४ में घटाने से शेष ११।३० पूर्वउन्नत घटी तथा ११।३० को रात्र्यर्ध १६।४७ में घटाने से शेष ५।१७ पूर्वनत घटी हुई।

पलभा ५।४५ के वर्ग ३३।३ का २५वाँ भाग १।१९ को १२ में जोड़ने से १३।१९ अङ्गुलादि पलकर्ण हुआ।

छायाज्ञानार्थं हारसाधनम्—

वेदेशाः शरहृच्चराढ्यरहिताः सौम्यानुदग्गोलयो-
र्हारोऽथो घटिकार्धयुङ्नतकृतेर्द्व्यंशः समाख्यः स्मृतः।
चेत् सार्धत्रिकुतो नतं यदधिकं वेदाहतं तद्वियुक्
स्पष्टोऽसौ तदयुग्घरस्त्वभिमतः स्यादक्षकर्णोद्धृतः॥ ८

मल्लारि—अथेष्टच्छायासाधानार्थं हारमाह। वेदेशाश्चतुर्दशाधिकशतमिताः शरहृच्चरेण पञ्चभक्तचरेण सौम्यानुदग्गोलयोः। आढ्य रहितः। उत्तरगोले युक्ता दक्षिणे रहिताः सन्तो हारः स्यात्॥

अथ हारकथनानन्तरं घटिकार्धयुक् त्रिंशत्पलयुग् यन्नतं तस्य या कृतिस्तस्या यो द्व्यंशोऽर्धांशः स समाख्यः स्मृतः॥

अत्रोपपत्ति :—अत्र गोलेऽहोरात्रवृत्ते क्षितिजसम्पातयोर्बद्धं सूत्रं तदुदयास्तसूत्रम्। एतदुन्मण्डलसम्पातयोर्बद्धं तदहोरात्रव्याससूत्रम्। तदुदयास्तसूत्रयोरन्तरं कुज्यैव। अथ याम्योत्तरवृत्तसम्पातयोर्बद्धं तन्मित तस्य व्याससूत्रं तयोर्व्याससूत्रयोर्यः सम्पातस्तस्मादुपरितनं खण्डं द्युज्या। सा उत्तरगोलेऽधस्तनया कुज्यया युता यावत् क्रियते तावद्दिनार्धेऽर्कोदयास्तसूत्रयोरन्तरं स्यात्। दक्षिणे तु कुज्यया हीना। यतस्तत्रोदयास्तसूत्रादधः कुज्या। यदर्कोदयास्तसूत्रयोरन्तरं साऽत्र हृतिरित्युच्यते। एवमन्त्याऽपि। चरज्यया त्रिज्या युतोना दिनार्धान्त्या स्यात्। अहोरात्रव्यासार्धं त्रिज्यातुल्यैरङ्कैर्यावदङ्क्यते तावत् त्रिज्यातुल्यं भवति। तैरङ्कैर्यावत् कुज्या गण्यते तावच्चरज्यातुल्या भवति। अतश्चरज्यया त्रिज्या युतोनाऽन्त्या संज्ञा भवति। नान्त्याहृत्योः क्षेत्रसंस्थानभेदः। किन्त्वङ्कानां गुरुलघुत्वात् केवलः संख्याकृतो भेद इत्युपपन्नम्। तत्र तावदन्त्यार्थं चरज्या साध्या। सा यथा। चरपलानि षष्टिभक्तानि नाड्यः स्युः। ताः षड्गुणा भागाः स्युः। ते द्विगुणा जीवा। अत्र चरपलानां हरः ६०। गुणद्वयघातो गुणः १२। गुणहरयोर्गुणेनापवर्तितयोर्लब्धाः पञ्च। अत उक्तं शरहृच्चरेणेति। शरहृच्चरं चरज्या जाता। तया त्रिज्या सौम्ययाम्यगोलयोः क्रमेण युतोना कार्या। अत्राचार्येण त्रिज्या वेदेशमिता धृता। अतो वेदेशा इति। एवं जाता दिनार्धान्त्या तस्या हारसंज्ञा कृता। इयं दिनार्धान्त्या नतोत्क्रमज्यया हीना सतीष्टान्त्या स्यात्। एवमत्र नतोत्क्रमज्या घटिकार्धयुक्तस्य नतस्य वर्गेण दलितेन तुल्या भवति। अत्र प्रतीत्यर्थं कल्पितम् ५। इदं षड्गुणमंशाः ३०। एषां खार्कः १२० मिते व्यासार्धे उत्क्रमज्या १६। यदि खार्कमिते व्यासार्धे इयं तदा वेदेशतुल्ये केति जाता १५।१२। घटिकार्धसंयुक्तं नतम् ५।३०। अस्य वर्गः .३०।१५। तदर्धम् १५।७। एवं स्वल्पान्तराज्जाता नतोत्क्रमज्यैव। तस्याः समसंज्ञा कृता। चेन्नतं सार्धत्रयोदशाधिकं स्यात् तदा तत् सार्धत्रयोदशहीनं कृत्वा यदधिकं तद्वेदैश्चतुर्भिराहतं तेन वियुक् हीनः समाख्यः स्फुटः स्यात्। तेन समाख्येनयुक् हीनो हरोऽक्षकर्णेन उद्धृतो भक्त इष्टहरः स्यादित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः—अत्र समाभिधा या नतोत्क्रमज्या साधिता सा सार्धत्रयोदशनतपर्यन्तं भवति। ततः परं सान्तरा। अत्र कल्पित नतम् १४।३०। अस्य नतस्य वेदेशतुल्यायां ११४ त्रिज्यायामुत्क्रमज्या १०८।३३। घटिकार्धयुक्तनतस्य १५ वर्गो २२५ द्वयाप्तः ११२।३०। अत्रानयोरन्तरं चत्वारः ४। तदन्तरमेकघटिकायां चतुर्मितम्। तत्रानुपातः। यद्येकघटिकायां चत्वारोऽन्तरं तदेष्टेन सार्धत्रयोदशाधिकेन नतेन किमिति फलं हीन कार्यम्। अधिकभूतत्वात्। ततस्तेन हीनो हर

इष्टहरः स्यात् । यतो नतोत्क्रमज्याहीना दिनार्धान्त्या इष्टान्त्या भवति सा इष्टहर-संज्ञा । अत्राक्षकर्णभजने युक्तिस्त्वनुपदमेव स्पष्टीकरिष्यते ॥ ८

चन्द्रिका--चरपल को ५ से भाग देकर लब्धि को उत्तरगोल में ११४ जोड़ने तथा दक्षिणगोल में ११४ में घटाने से हार होता है । नतकाल में आधी घटी जोड़ने से सम होता है। यदि १३।३० घटी से अधिक नतकाल हो तो उसमें १३।३० घटाकर शेषको ४ से गुणाकर गुणनफल को पूर्व साधित सम में घटाने से स्पष्ट सम होता है । सम को हार से घटाकर शेष में पलकर्ण का भाग देने से अभीष्ट हर होता है । ८

उदाहरण–सायन सूर्य ८।६।४८।१ नत ४।३३ चरपल १०८ । सम और अभीष्ट हार का अनयन करना है । अतः चरपल १०७ को ५ से भाग देकर लब्धि २१।२४ दक्षिणगोल होने से ११४ में घटाने से ९२।३६ हार हुआ । नत ४।३३ में आधी घटी ०।३० पल जोड़ने से ५।३ हुआ इसके वर्ग २५।३० का आधा १२।४५ सम हुआ । नतकाल १३।३० से अल्प है अतः यही स्पष्ट सम हुआ । सम १२।४५ को हार ९२।३६ में घटाकर शेष ७९।५१ को पलकर्ण १३।१९ से सजातीय बनाकर भाग देने से लब्धि ५।५९ अभीष्ट हर हुआ ।

भाज्यवशाच्छायासाधनम्—

दिग्घ्नाक्षभाहृत चरं स्वगुणं द्विनिघ्नं
स्वेष्वंशयुग्युगभवान्वितमत्र भाज्यः ।
कर्णोऽङ्गुलादिक इहेष्टहराप्तभाज्यः
कर्णार्कवर्गविवरात् पदमिष्टभा स्यात् ॥ ९

मल्लारिः—अथ भाज्यसाधनमाह । दिग्घ्नाक्षभया दशगुणपलभया हृतं चरं स्वगुणं वर्गितं ततो द्विनिघ्नं द्विगुणं सत् स्वेष्वंशकेन स्वपञ्चमांशेन युक् ततो युगभवैरन्वितं सत् भाज्यो भवति ।

अत्रोपपत्तिः—अथ भाज्यस्वरूपमुच्यते । इष्टहरसंज्ञेष्टान्त्या ज्ञाताऽस्ति-तस्या हृतिकरणायानुपातः । त्रिज्यावृत्ते इयमिष्टान्त्या तदा द्युज्यावृत्ते केति जातेष्टहृतिः । पलकर्णे द्वादशकोटिस्तदेष्टहृतिकर्णे केति जात इष्टशंकुः । शंकुकोटौ

त्रिज्या कर्णस्तदा द्वादशकोटौ क इति जात इष्टकर्णः। एवमत्र त्रिज्यावर्गस्य पलकर्णो गुणः। द्युज्येष्टान्त्याघातो हरः। तेन त्रिज्यावर्गो द्युज्याभक्तः फलस्य भाज्यसंज्ञा कृता। तत्र परमाल्पद्युज्यया १०९।४० त्रिज्यावर्गे भक्ते जातः परमो भाज्यः १३१। २०। खार्कमिते व्यासार्धेऽयं तदा वेदेशामिते क इति जातो भाज्यः १२४।४५। स भाज्यः पलर्णगुणः इष्टान्त्याभक्तः कार्यः। तत्र पलकर्णेन गुणेन गुणहरावपवर्त्तितौ। एवं पलकर्णभक्तेष्टान्त्येवेष्टहरसंज्ञा कृता। अत इष्टहराप्तभाज्य इष्टकर्णः स्यादित्युपपन्नम्। अस्य साधनक्रिया। द्युज्या क्रान्तिज्याभिर्विना न सिध्यति तत्प्रक्रियागौरवम्। अतोऽनुकल्पेन दिग्घ्नाक्षभेत्यादिना भाज्यो ज्ञातोऽनुकल्पः। स यथा। एकांगुलपलभाया खण्डत्रययोगः परमं चरम् २१।२०। इदं दशगुणपलभाभक्तम् २।८। वर्गितम् ४।३३ द्विगुणम् ९।६। इदं स्वपञ्चांशयुतं १०।५५ वेदेशयुतं स एव भाज्य इति प्रतीतिः। अयं भाज्यो हरहृतोऽभीष्टकर्णो भवति इति युक्तिः पूर्वमेवोक्ता। कर्णार्कवर्गविवरात् कर्णवर्गद्वादशवर्गान्तरान्मूलमिष्टभा इष्टच्छाया स्यात्। अस्योपपत्तिः-छाया-भुजो द्वादशांगुलशंकुः कोटिः छायाकर्णः कर्णः। अतः कोटिकर्णयोर्वर्गान्तरमूलं छाया भवतीत्युपपन्नम् ॥ ९

चन्द्रिका—पलभा को दश से गुणाकर गुणनफल से चर में भाग देकर लब्धि के वर्ग को २ से गुणाकर गुणनफल में उसी का पंचमांश जोड़कर फल में ११४ जोड़ने से भाज्य होता है। भाज्य में इष्टहर का भाग देने से लब्धि अंगुलादि (छाया) कर्ण होता है। कर्ण के वर्ग में १२ का वर्ग (१४४) घटाकर शेष का वर्गमूल लेने से इष्ट छाया होती है। ९

उदाहरण—पलभा ५।४५ चर १०७। इष्ट छाया अभीष्ट है। पूर्वोक्त नियमानुसार पलभा ५।४५ को १० से गुणा किया गुणनफल ५७।३० इसे एक राशि बनाकर सजातीय चर में भाग दिया तो लब्धि १।५१ प्राप्त हुई इसके वर्ग ३।२५ को २ से गुणा किया गुणनफल ६।५० में इसी का पञ्चमांश १।२२ जोड़ा तो ८।१२ हुआ इसमें पूर्वोक्त ११४ जोड़ने से १२२।१२ भाज्य हुआ।

अभीष्ट हर (पूर्वसाधित) ५।५९ से भाज्य ११२।१२ को सजातीय करके भाग देने से लब्धि २०।२५ अङ्गुलादि छाया कर्ण हुआ।

कर्ण २०।२५ के वर्ग ४१६।५० में १२ के वर्ग १४४ को घटाने से २७२। ५० हुआ इसका वर्गमूल १६।३१।३ अङ्गुलादि छाया हुई।

विशेष—सावयव अङ्कों के मूलानयन हेतु श्रीकमलाकरभट्ट ने निम्नलिखित विधि प्रदर्शित की है—

षष्टिवर्गगुणादङ्कान्मूलं ग्राह्यं यथागतम्
मूलावशेषकं सैकं षष्टिघ्नं विकलान्वितम्।
द्विनिघ्नेन द्वियुक्तेन मूलेनाप्तं स्फुटं भवेत्॥

अर्थात्—अभीष्ट अङ्क को ६० से दो बार गुणा कर गुणन फल का वर्गमूल ले। शेष अङ्क में १ जोड़कर ६० से गुणा करें गुणनफल में द्विगुणित मूल में २ जोड़कर योगफल से भाग देने पर लब्धि द्वितीय अवयव होता है। सावयव मूल को ६० से भाग देने से वास्तविक मूल आता है।

इस नियम को पं० श्री सुधाकर द्विवेदी जी ने भी स्पष्ट रूप से अपनी ग्रहलाघव की टीका में उद्धृत किया है।

छायातो विलोमविधिना नतकालज्ञानम्—

कर्णः स्यात् पदमर्कभाकृतियुतेस्तद्भक्त भाज्यो हरो-
ऽभीष्टस्तत् पल कर्णघातरहितो मध्यो हरो द्व्याहतः।
चेद् वेदाङ्कधराधिकः पृथगतो वेदाङ्कभूनाद् गुणा-
प्त्याढ्यस्तस्य पदं घटीमुखनतं स्यादर्धनाडी वियुक्॥ १०

मल्लारिः—अथेष्टच्छायातो विलोमविधिना कर्णाद्यानयनमाह। अर्कभाकृतियुतेः पदं द्वादशवर्गच्छायावर्गयोगान्मूलं कर्णः स्यात्। तेन कर्णेन भक्तो भाज्योऽभीष्टहरः स्यात्। तस्य पलकर्णेन सह यो घातो गुणनं तेन मध्यो हरो रहितः। ततो द्व्याहतो द्विगुणितः। स चेद्वेदाङ्कधराधिकः षड्नशतद्वयाधिकस्तदा पृथक् स्थाप्यः। अतोऽस्माद्वेदाङ्कभूनात् पृथक्स्थात् या गुणाप्तिस्तयाऽऽढ्यः कार्यः। नो चेद्यथास्थित एव। तस्य मूलं घटिकादिकं नतं स्यात्। परन्तु तन्नतमर्धनाड्या त्रिंशत्पलैर्वियुक् हीनं कार्यमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिर्विलोमविधिना प्रसिद्धैव ॥ १०

चन्द्रिका--छाया के वर्ग में १२ के वर्ग (१४४) को जोड़कर मूल लेने से कर्ण होता है। कर्ण से पूर्व साधित भाज्य में भाग देने से लब्धि अभीष्ट हर होता है। अभीष्ट हर और पलकर्ण के घात को हार में घटाने से शेष (सम होता है)। सम को २ से गुणा करने पर गुणनफल यदि १९४ से अधिक हो तो अलग अलग दो स्थानों में स्थापित करें। एक स्थान में १९४ घटाकर शेष में ३ का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान वाली संख्या (द्विगुणित सम) में जोड़ कर वर्गमूल लेने से नत होता है। उसमें ३० पल घटाने से वास्तविक नत होता है। १०

उदाहरण--छाया १६।३१।३ इससे विलोम विधि द्वारा नत काल साधन करना है। अतः छाया १६।३१।३ के वर्ग २७२।५० में १२ का वर्ग १४४ जोड़ने से ४१६।५० हुआ। इसका वर्गमूल २०।२५ छाया कर्ण हुआ। इससे पूर्व साधित भाज्य १२२।१२ को सजातीय करके भाग देने से लब्धि ५।५९ अभीष्ट हर हुआ। ५।५९ अभीष्टहर को पलकर्ण १३।१९ से गुणा किया। गुणनफल ७९।५१ (स्वल्पान्तरतः) को हार ९२।३६ में घटाने से शेष १२।४५ सम हुआ। इसे २ से गुणा करने पर २५।३० हुआ। यह १९४ से अल्प है अतः इसका वर्गमूल ५।३ नत हुआ इसमें ३० पल घटाने से ४।३३ स्पष्ट नतकाल हुआ।

सूक्ष्मक्रान्तिसाधनम्--

चत्वारिंशदशीतिरद्रिकुभुवः क्वक्षेन्दवो भूधृती
षट्खाक्षीणि जिनाश्विनोऽङ्कविकृती खाब्ध्याश्विनः सायनात्।
खेटाद्दोर्लवदिग्लवप्रमगतोऽङ्कोऽसौ तदूनागता-
च्छेषघ्नाद्दशलब्धियुगदशहृतोंऽशाद्योऽपमःस्यात् स्वदिक् ॥ ११

मल्लारिः—अथ क्रान्तिसाधनमाह। सायनादयनांशयुक्तात् खेटाद् ग्रहाद्दोर्लवा भुजभागास्तेषां दिग्लवो दशमांशः। तेन प्रमः संमिता गतोऽङ्कः स्यात्। ततस्तेन गताङ्केनोनादागतादग्राङ्कात् शेषघ्नात् शेषांशगुणितात्। या दशलब्धिस्तया

गताङ्को युग्युक्तः। ततो दशभक्तोऽशांद्यो भागाद्यः स्वदिक् सायनग्रहगोलदिगपमः क्रान्तिः स्यात्। चत्वारिंशत् ४०। अशीतिः ८०। अद्रिकुभुवः सप्तदशाधिकशतम् ११७। क्वक्षेन्दव एकपञ्चाशदधिकशतम् १५१। भूधृती एकाशीत्यधिकशतम् १८१। षट्खाक्षीणि षडधिकशतद्वयं २०६। जिनाश्विनश्चतुर्विंशत्यधिकशतद्वयम् २२४। अंगविकृती षट्त्रिंशदधिकशतद्वयम् २३६। खाऽब्ध्यश्विनश्चत्वारिंशदधिक-शतद्वयम् २४०। एते नवङ्काः स्युरिति ॥ ११

अत्रोपपत्तिः। ग्रहो यैर्भागैर्विषुवद्वृताद्दक्षिणोत्तरगमनं करोति ते क्रान्त्यंशाः क्रमणं क्रान्तिः। तस्य अंशा इत्यन्वर्थं नाम। विषुवद्वृत्तं यद्वर्त्तते तन्निरक्षे समं पूर्वापरमित्यर्थः। मेषतुलादिस्थो ग्रहस्तस्मिन् वृत्ते तिष्ठन् भ्रमति। मेषादयः षट् तस्योत्तरार्द्धे तुलादिका दक्षिणा एव। न तु मेषादिषड्राशय उत्तरतश्चैकत्राव-तिष्ठन्तो भ्रमन्तीति। किन्तु मेषादिराशित्रयं यावत् प्रतिक्षणमुत्तरतः क्रमेण चतुर्विंशत्यंशान् यावदहोरात्रवृत्ते परिभ्रमन् गच्छति। ततः परावर्त्य राशित्रयं कन्यान्तं यावत्तेनैव मार्गेण पुनस्तदेवविषुवद्वृत्तमाश्रयति एवं तुलादेर्दक्षिणत एव राशित्रयं गत्वा पुनस्तेनैव पथा परावर्त्य तदेव विषुवद्वृत्तं मेषादिस्थ एवा-श्रयति। एवं भगोले तद्दिक्स्थक्रान्तिरिति परिभाषा। एवं सूर्यस्य अन्येषां ग्रह-नक्षत्राणां च स्वस्वविमण्डलानुगतत्वात् गोलार्द्धयोर्वैपरीत्यसम्भवः स्यादिति। तद्यथा। विषुवद्वृतात्क्रान्तिवृत्तं तिरश्चीनं वर्त्तते तयोर्मेषतुलादौ सम्पातद्वयम्। तत्र क्रान्त्यभावः। मकरकर्कटादौ परमं दक्षिणोत्तरं चतुर्विंशत्यंशान्तरं तत्र क्रान्तेः परमत्वम्। एवं तिरश्चीनात् क्रान्तिमण्डलादपि ग्रहमण्डलं तिरश्चीनं वर्त्तते। तयोः स्वक्षेपपाते सषड्भे च सम्पातौ तस्मात् त्रिभेऽन्तरे परमं विक्षेपां-शतुल्यं दक्षिणोत्तरमन्तरं विक्षेपः। एवं पृथग्ग्रहनक्षत्राणां विमण्डलानि तिरश्ची-नानि वर्त्तन्ते तत्क्षेपवशात् तद्गोलान्यत्वसम्भवः स्यादित्युपपन्नम्। तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ।[1]"

नाडिकामण्डलात्तिर्यगेवापमः क्रान्तिवृत्तावधिः क्रान्तिवृत्ताच्छरः।
क्षेपवृत्तावधिस्तिर्यगेवं स्फुटो नाडिकावृत्तखेटान्तरालेऽपमः॥

अतः शरसंस्कृतास्पष्टाक्रान्तिः स्यादित्यग्रे आचार्येणाप्युक्तमास्ति। अत्र

१. सि. शि. गो. गोल. १६।

गुणकभाजकोपपत्तिर्यथा। यदि त्रिज्यातुल्यभुजज्यया परमक्रान्तिज्या तदेष्टदोर्ज्यया किमिति फलं क्रान्तिज्या तद्धनुः क्रान्तिः स्यात्। अत्राचार्येण लाघवार्थं दश-दशभुजभागानामनेनैव विधिना क्रान्त्यंशाः साधिताः। ते सावयवा जाताः अतो दशगुणान् कृत्वा पठिताः ततोऽन्तरेऽनुपातः। यदि दशभिर्भागैरेको लभ्यते तदेष्टांशैः किमिति। फलमितो गतांकः स्यात्। शेषादनुपातः। यदि दशभिर्भागैरैष्यान्तरं लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति फलं गतांकयुक्तं कार्यं सा क्रान्तिः स्यात्। परं दश-गुणा ततो दशभक्तेत्युपपन्नम्॥ ११

चन्द्रिका--४०, ८०, ११७, १५१, १८१, २०६, २२४, २३६, २४० ये क्रान्ति साधनार्थ अंकपठित हैं। सायन सूर्य के भुजांश को १० से भाग देने से लब्धि तुल्य गतांक होगा। गतांक और ऐष्यांक के अन्तर से भुजांश के शेष अंशादि को गुणाकर गुणनफल में १० का भाग देकर लब्धि को गतांक में जोड़कर पुनः १० का भाग देने से अंशादि क्रान्ति होगी। सायनसूर्य यदि उत्तर गोल में हो तो उत्तरा, दक्षिणगोल में हो तो दक्षिण क्रान्ति होगी॥११

उदाहरण--सूक्ष्मक्रान्ति साधन करना अभीष्ट है जब कि स्पष्ट-सूर्य ७।१२।३५।३१ तथा अयनांशः २४।१२।३०॥ सायनसूर्य ८।६।४८।१ का भुज२।६।४८।१। भुजांश ६६।४८।१ में १० का भाग दिया लब्धि ६ प्राप्त हुई अतः उक्तपठित गतांको से छठाँ गतांक १०६ तथा ऐष्यांक २२४ के अन्तर १८ से शेष ६।४८।१ को गुणा किया। गुणनफल १२२।२४।१८ को १० से भाग देकर लब्धि १२।१४।२५ को गतांक २०६ में जोड़ने से २१८।१४।२५ हुआ। इसमें पुनः १० का भाग देने से लब्धि २१।४९।२६ स्पष्ट क्रान्ति हुई। सूर्य दक्षिण गोल (तुलादि) का है अतः स्पष्ट दक्षिणा क्रान्ति =२१।४९।२६।

स्थूलक्रान्तिसाधनम्—

षट्षडिषूदधिदृक्कुभिरर्धैः
खेटभुजांशदिनांशमितैक्यम्।
शेषगतैष्यदिनांशयुतं वां-
शाद्यपमः सुखसंख्यवहृत्यै॥ १२

मल्लारिः—अथ लाघवार्थं स्थूलक्रान्तिसाधनमाह। एभिरर्धैः खण्डैः कृत्वा खेटस्य सायनग्रहस्य ये भुजांशा भुजभागाः। तेषां यो दिनांशः पञ्चदशांशः। तन्मितं खण्डैक्यं कार्यम्। तच्छेषेण हतं यदेष्यं भोग्यखण्डं तस्य यो दिनांशः पञ्चदशांशः तेन युतं तदंशाद्यपमो भागादिः क्रान्तिः। सुखेन संव्यवहृतिर्व्यवहारस्तदर्थं स्यात्॥

अत्रोपपत्तिः—अत्र तु पञ्चदशभागानां क्रान्तयो भागादिकाः साधिताः। तत्रानुपातः। यदि पञ्चदशभागैरेकं खण्डं तदा भुजभागैः। किमिति लब्धं गतखण्डानां योगमिता क्रान्तिः। शेषादनुपातः। पञ्चदशांशैर्यदि भोग्यखण्डं लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति फलं गतखण्डयोगे योज्यं क्रान्तिः स्यात्। परं सा स्थूला खण्डभागोनाधिककलापरित्यागादित्युपपन्नम्॥ १२

चन्द्रिका—६, ६, ५, ४, २, १ ये सुख (सरलता) पूर्वक क्रान्ति साधन हेतु अङ्क पठित हैं। सायन ग्रह के भुजांश में १५ का भाग देकर लब्धितुल्य (पूर्वपठित) अङ्कों का योग कर लें शेष को अग्रिम अङ्क से गुणा कर गुणनफल में १५ का भाग देकर लब्धि को उक्त योग में जोड़ने से अंशादि क्रान्ति होती है। १२

उदाहरण—सायन सूर्य ८।६।४८।१ भुज २।६।४८।५ भुजांश ६६।४८।१ में १५ भाग देने से लब्धि ४ तथा शेष ६।४८।१। अतः लब्धि तुल्य ४ अङ्कों का योग = ६ + ६ + ५ + ४ = २१। अग्रिम संख्या २ से शेष ६।४८।१ को गुणा किया। गुणनफल १३।३६।२ में १५ का भाग देने से प्राप्त लब्धि अंशादि ०।५४।२४ को २१ में जोड़ने से २१।५४।२४ अंशादि क्रान्ति हुई। सायनसूर्य के दक्षिण गोल में होने से क्रान्ति भी दक्षिणा हुई।

क्रान्तितो विलोमविधिना भुजांशसाधनम्—

ततो दलानि शोधयेत् तिथिघ्नशेषमैष्यहृत्।
तिथिघ्नशुद्धसंख्यया युतं भवन्ति दोर्लवाः॥१३

मल्लारिः— अथानन्तरानीतक्रान्तिभागेभ्यो वैपरीत्येन भुजभागानयनमाह। ततस्तस्मादपमाद्दलानि षडित्यादीनि यावन्ति शुध्यन्ति तावन्ति शोधयेत्। तिथिभिः पञ्चदशभिर्हन्यते गुण्यते यच्छेषं तदैष्येण भोग्यखण्डेन हृद्भक्तं त्रिष्ठं लब्धं तिथिघ्नया पञ्चदशगुणनया शुद्धखण्डसंख्यया युतं सद्दोर्लवा भुजभागा भवन्तीत्यर्थः॥

अत्र विलोमविधिरेव वासना प्रत्यक्षसिद्धाऽस्ति। यद्यनेन प्रकारेण प्रागानीतसूक्ष्मक्रान्तितो दोर्लवाः साध्यन्ते तदा किञ्चित् सान्तरा भवन्ति। अपमखण्डानां स्थूलत्वात्। अतस्तत्रत्यखण्डैर्दोर्लवार्थं व्यस्तविधिना प्रकारान्तरं चिन्त्यम्। तद्यथा

दशाहतापमात्त्यजेद्दलानि शेषमैष्यहृत्।
विशुद्धसंख्यया युतं दशाहतं भुजांशका इति॥ १३

चन्द्रिका—क्रान्ति में (६, ६, ५, ४, २, १) पूर्वपठित अङ्कों को घटाने से जो शेष हो उसे १५ से गुणा कर आग्रम खण्ड (जो नहीं घट सका हो) उससे भाग देने पर जो लब्धि हो उसे घटित अङ्क संख्या (जितने अंक घट चुके हों उनकी संख्या) को १५ से गुणा कर गुणनफल में जोड़ने से ग्रह के भुजांश होते हैं। १३

उदाहरण—दक्षिणा क्रान्ति २१।५४।२४ नियमानुसार अंकों को घटाया।

२१।५४।२४
६
———
१५
६
———
९
५
———
४
४
———
०।५४।२४ शेष

शेष को १५ से गुणा किया गुणनफल १३।३६।२ को अग्रिम संख्या (जो नहीं घट सकी) २ से भाग देने पर लब्धि अंशादि ६।४८।१ प्राप्त हुई। क्रान्ति में ४ अंक घटे हैं अतः ४ × १५ = ६० इसमें लब्धि ६।४८।१ को जोड़ने से ६६।४८।१ हुआ। इसे राश्यादि बनाने से २।६।४८।१ भज हुआ। १३

दिनमानात् स्थूलक्रान्तिसाधनम्—

द्युदलतिथिवियोगस्तद्विनाड्यश्चरं स्याद्
अथ निजगजभागोपेतमक्षप्रभाप्तम्।
दिनकृदपमभागास्तत्त्वलिप्तायुताः स्यु-
र्द्युदलकृशपृथुत्वे ते क्रमाद्याम्यसौम्याः ॥ १४

मल्लारिः—अथ रवेरज्ञाने दिनमानादेव क्रान्तिसाधनं स्थूलं स्वयुक्तिदर्शनार्थमाह द्युदलं दिनार्धं तिथयः पञ्चदश तयोर्वियोगः षष्टिगुणश्चरपलानि स्युः। तच्चरं निजेन स्वीयेन गजभागेनाष्टांशेनोपेतं युक्तम्। ततोऽक्षप्रभयाऽऽप्तं भक्तं ते दिनकृतः सूर्यस्यापमस्य क्रान्तेर्भागाः स्युः। ते तत्त्वकलाभिः पञ्चविंशतिकलाभिर्युक्ताः कार्याः। द्युदलस्य पञ्चदशघटिकाभ्यो न्यूनाधिकत्वे क्रमाद्याम्यसौम्याः। कृशत्वे याम्याः। अधिकत्वे सौम्या इत्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः। दिनार्धपञ्चदशान्तरं पलीकृतं चरपलानि स्युः। एवं चरपलानि पञ्चभक्तानि चरज्येति युक्तिः पूर्वं प्रतिपादिताऽस्ति। ततस्त्रिज्यावृत्ते इयं चरज्या तदा द्युज्यावृत्ते का लब्धं कुज्या। अत्र द्युज्या स्थूलत्वात् सार्धद्वादशाधिकशतमिता धृता। एवं पलभाभुजे द्वादशकोटिस्तदा कुज्याभुजे का कोटिरिति जाता क्रान्तिज्या। तद्धनुः करणार्थं द्वौ हरः स्थूलत्वादङ्गीकृतः। एवं चरपलानां जातो गुणघातो गुणः १३५०। हरघातो हरः १२००। पलभा हरस्तु वर्त्तत एव। गुणहरौ खतिथिभिः १५० अपवर्त्तितौ गुणस्थाने जाताः ९। हरस्थानेऽष्टौ ८। यो राशिर्नवभिर्गुण्यतेऽष्टभिर्भज्यते स स्वाष्टांशयुक्त एव भवति। अत उक्तं चरं निजगजभागोपेतमक्षप्रभाप्तमिति। सा स्थूला क्रान्तिरतः पञ्चविंशतिकलायुक्ता सती सूक्ष्मासन्ना दृष्टा। दक्षिणोत्तरोपपत्तिर्यथा। दिनदलं दक्षिणगोले पञ्चदशघटिकाभ्यो न्यूनमस्त्यतः कृशे याम्या। उत्तरगोले दिनदलं पञ्चदशाधिकमतः पृथुत्वे सौम्या इत्युपपन्नम्॥ १४

चन्द्रिका—दिनमान के अर्द्धभाग का १५ घटी के साथ अन्तर कर शेष का पल बनाने से चरपल होता है। चरपल में उसी का अष्टमांश जोड़कर पलभा से भाग देने पर लब्धि अंशादि में २५ कला जोड़ने से सूर्य की क्रान्ति होती है। यदि दिनार्ध २५ से अल्प हो तो दक्षिणा, अधिक हो तो उत्तरा क्रान्ति होती है। १४

उदाहरण--दिनार्ध (पूर्वसाधित) १३।१३ इसे १५ में घटाया शेष १।४७ को पलात्मक बनाने से १०७ चरपल हुआ। चरपल के अष्टमांश १३।२२।३० को चरपल १०७ में जोड़ने से १२०।२२।३० हुआ। इसे एक जातीय बनाने से ४३३२५० हुआ। इसमें पलभा ५।४५ के एक जातीय मान २०७०० से भाग देने पर लब्धि २०।५६।५ अंशादि फल हुआ। इसकी कला में २५ कला जोड़ने से २१।२१।५ अंशादि सूर्य की क्रान्ति हुई। दिनार्ध (१३।१३) १५ से अल्प है अतः दक्षिणा क्रान्ति हुई। यह भी स्थूल क्रान्ति है। १४

अक्षांशज्ञानात् नतांशोन्नतांशयोरायनम्—

क्रान्त्यक्षजसंस्कृतिर्नतांशास्तद्धीना नवतिः स्युरुन्नतांशाः।
दिनमध्यभवास्ततोऽपि ये स्युः क्रान्त्यंशा लघुखण्डकैः पराख्यः॥ १५

मल्लारिः—अथ दिनार्धे नतांशोन्नतांशसाधनमाह। ग्रहस्य क्रान्तिः। अक्षांशाः स्वदेशीयाः। एतदुत्पन्ना या संस्कृतिः सा नतांशाः स्युः। अत्रैकदिशो र्योगो भिन्नदिशोरन्तरमिति संस्कृतिः तैर्नतांशैर्हीना नवतिरुन्नतांशाः स्युः। परं ते दिनमध्यभवा नहीष्टकाले क्रान्त्यक्षसंस्कारो नतांशाः। ततोऽपि तेभ्य उन्नतभागेभ्यो लघुखण्डकैः षडित्यादिभिर्ये क्रान्त्यंशाः स्युस्तेषां पर इति संज्ञा। अत्र पराख्यार्थं या क्रान्तिर्यन्त्रभागानां च क्रान्तिः सा अयनांशान् दत्त्वैव कार्या।

अस्योपपत्तिः—प्रत्यक्षसिद्धास्ति तथाप्युच्यते। विषुवद्वृत्ताद्दक्षिणोत्तरतः परमक्रान्त्यंशैः क्रान्तिवृत्तं भवति। रवौ क्रान्तिवृत्तं भ्रमति सति द्युरात्रवृत्तं दक्षिणोत्तरवृत्ते दिनार्धे यत्र लग्नं तस्मात्प्रदेशात् खस्वस्तिकपर्यन्तं नतांशाः। खस्वस्तिकात्तैर्भागैर्दिनार्धे सूर्यो वर्तत एवेत्यर्थः। दक्षिणोत्तरवृत्तक्षितिजसंयोगाद्दिनार्धे यैर्भागैरुन्नतस्ते उन्नतांशाः। स्वद्युरात्रवृत्तविषुवन्मण्डलमध्ये क्रान्त्यंशाः। खस्वस्तिकात् द्युरात्रवृत्तपर्यन्तं नतांशाः। दक्षिणगोले क्रान्त्यक्षांशयोगे कृते सति

खस्वस्तिकात् द्युरात्रवृत्तपर्यन्तं दक्षिणा नतांशाः। उत्तरगोले क्रान्त्यक्षयोरन्तरे कृते सति उत्तरा दक्षिणा वा नतांशाः। यदोत्तरक्रान्तिरक्षांशेभ्यो न्यूना तदाक्षांशेभ्य क्रान्तौ शोधितायां दक्षिणतो द्युरात्रवृत्तं नतं स्यात् तदा दक्षिणा नतांशाः। यदाधिकास्तदा क्रान्त्यंशेभ्योऽक्षांशेषु शोधितेषु खस्वस्तिकादुत्तरतो द्युरात्रवृत्तं नतं स्यात्। तदोत्तरा नतांशाः स्युः। अत उक्तं क्रान्त्यक्षजसंस्कृतिरिति। अत्रोन्नतांशजीवाया उपयोगोऽस्तीष्टकर्णसाधनार्थम्। अतोऽत्राचार्येण त्रिज्या चतुर्विंशतिमिता धृता। ततः पञ्चदशभागानां खण्डान्युत्पादितानि तानि तु क्रान्तिः क्रान्तेर्लघुखण्डान्येव। अत उन्नतांशानां क्रान्तिः कार्येत्युक्तम्। तस्याः परसंज्ञा कृता॥ १५

चन्द्रिका—क्रान्ति और अक्षांश का संस्कार (यदि दोनो एक ही दिशा के हों तो योग भिन्न दिशा के हो तो अन्तर) करने से मध्यान्ह कालिक नतांश होता है। नतांश को ९० में घटाने से उन्नतांश होता है। इससे (उन्नतांश से) लघु खण्डों द्वारा साधित क्रान्त्यंश पर संज्ञक होता है। १५

उदाहरण—दक्षिणा क्रान्ति २१।४९।२६ अक्षांशाः (वाराणसी) २५।२६।४२ दक्षिण। क्रान्ति और अक्षांश एक ही दिशा के है अतः दोनों का योग ४७।१६।८ मध्याह्नकालिक नतांश हुआ इसे ९० में घटाने से ४२।४३।५२ उन्नतांश हुआ। इसे भुजमानकर षड्षडिषूदधि इत्यादि नियमानुसार १५ से भाग दिया, लब्धि २ तुल्य खण्डों का योग १२ हुआ। अग्रिम अङ्क ५ से शेष १२।४३।५२ को गुणाकर गुणनफल ६३।३९।२० में पुनः १५ का भाग देने से लब्धि ४।१४।३७ प्राप्त हुई। इसे अङ्कों के योग १२ में जोड़ने से १६।३४।३७ पर हुआ। १५

इष्टोन्नतांशेन कर्णसाधनम्—

नवतिगुणितमिष्टमुन्नतं द्युदलहृतं फलभागतोऽपमः।
कथितपरगुणस्तदुद्धृता रविनवषट् श्रवणोऽथवा भवेत्॥ १६

मल्लारिः—अथान्यथा लाघवेनेष्टकर्णं साधयति। इष्टमुन्नतं घटिकाद्यं नवतिगुणितं द्युदलेन हृतं फलं यद्भागाद्यं ततोऽपमः क्रान्तिः। सोऽपमः कथितेन पराख्येन गुण्यस्ततस्तेन रविनवषट् उद्धृता भक्ता अथवा प्रकारान्तरेण श्रवण इष्टकर्णो भवतीत्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः—उन्नतघटिकानां भागकरणार्थमनुपातः । यदि द्युदलघटीभिर्नवत्यंशास्तदेष्टोन्नतघटीभिः किमिति । जाता भागास्तेषां ज्या कार्या । अतोऽपमज्या कृतेति । अत्र ज्या क्रान्तितुल्यैव धृतास्ति । ततोऽन्योऽनुपातः । यदि परसंज्ञोन्नतांशज्याकोटौ त्रिज्या २४ कर्णस्तदा द्वादशकोटौ कः कर्ण एवं द्वादशसिद्धघातो भाज्यः २८८ पराख्यो हारः । एवं जातो दिनार्धकर्णः । अन्योऽप्यनुपातः । यदि त्रिज्यातुल्यया उन्नतघटीज्यया २४ । अयं दिनार्धकर्णस्तदेष्टोन्नतघटीज्यया किमिति एवं लब्धमिष्टकर्णः । अत्र व्यस्तत्रैराशिकं यतः सर्वदा दिनार्धकर्णादिष्टकर्णेनाधिकेनैव भवितव्यम् । अतश्चतुर्विंशतिर्गुणः । एवं भाज्याङ्के चतुर्विशतिगुणे जातः सिद्धो भाज्याङ्क ६९१२ । अस्य हरः पराख्य उन्नतघटीजातोऽपमश्च । अतोऽपमः परगुणः । तदुद्धृता रविनवषडित्युपपन्नम् ॥ १६

चन्द्रिका—इष्ट उन्नतकाल को ९० से गुणा कर दिनमान के आधे से भाग देने पर जो लब्धि अंशादि प्राप्त हो उससे लघु खण्डों द्वारा क्रान्ति साधन कर उसे पूर्वोक्त पर से गुणा कर गुणनफल से ६९१२ को भाग देने से इष्टकर्ण होता है । १६

उदाहरण—इष्ट उन्नत घटी ८।४० को ९० से गुणा कर दिनमान के आधे १३।१३ से गुणनफल ७८० में एकजातीय करके भाग देने से लब्धि ५९।०।५९ प्राप्त हुई । इससे लघु खण्डों द्वारा साधित क्रान्ति २०।४४।१५ । इसे पूर्वोक्त पर १६।१४।३७ से गुणा कर गुणनफल ३३६।५१।६ से ६९१२ को एकजातीय कर भाग देने से लब्धि २०।३१।९ इष्टकर्ण हुआ । १६

कर्णादुन्नतघटिकासाधनम्—

तरणिनवरसाः श्रवोद्धृताः परविहृता अपमो भवेत्ततः ।
दिनदलगुणिता भुजांशका नवतिहृता अथवेष्टमुन्नतम् ॥ १७

मल्लारिः अथ व्यस्तविधिनेष्टकर्णादुन्नतघटिकाज्ञानमाह । तरणिनवरसाः श्रवसा इष्टकर्णेन हृता । ततस्ते परेणापि हृता लब्धमपमः क्रान्तिर्भवेत् । ततस्ततो दलानि शोधयेदित्यादिना ये भुजांशास्ते दिनदलेन गुणिता नवतिहृताः । अथवा इष्टमुन्नतमिष्टोन्नतघटिकाः स्युरित्यर्थः । अत्र विलोमविधिरेव वासना ॥ १७

चन्द्रिका—६९१२ में कर्ण का भाग देकर लब्धि में पुनः पर का भाग देने से इष्टक्रान्ति होती है। क्रान्ति द्वारा भुजांश साधन कर उसे दिनार्ध से गुणा कर ९० का भाग देने से लब्धि इष्ट उन्नतकाल होता है। १७

उदाहरण—इष्टकर्ण २०।३१ को सजातीय कर ६९१२ में भाग देने से लब्धि ३३६।५३।४८ में पुनः पर १६।१४।३७ से एक जातीय बनाकर भाग देने से लब्धि २०।४४।२५ क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति द्वारा "ततो दलानि शोधयेत्" इत्यादि रीति से ५९।१।३४ भुजांश साधित किया। भुजांश को दिनार्ध १३।१३ से गुणा कर गुणनफल ७८०।७।४२ में ९० का भाग देने से लब्धि ८।४० उन्नतघटी सिद्ध हुई। १७

यन्त्रोत्थोन्नतांशेभ्य उन्नतकालज्ञानम्—

अभिमतयन्त्रलवास्ततोऽपमोऽसौ
जिननिघ्नः परहृत्ततो भुजांशाः।
द्युदलघ्नाः खनवोद्धृताः कपाले
प्राक्पश्चाद्घटिकाः क्रमाद्गतैष्याः॥ १८

मल्लारिः—अथ यन्त्रवेधितोन्नतभागेभ्यः कालज्ञानं कथयति। अभिमता इष्टा ये यन्त्रभागाः स्युः। ततो योऽपमोऽसौ चतुर्विंशति गुणः। ततः परेण हृत् यल्लवाद्यं फलं तस्माद्ये भुजभागास्ते द्युदलगुणाः खनवभिर्नवत्या उद्धृता भक्ताः फलं प्राक्कपाले गताः पश्चिम एष्या दिनशेषा घटिकाः स्युरित्यर्थः॥ १८

अत्रोपपत्तिः—अत्र यन्त्रांशानामपमः पराख्यव्यासार्धान्तस्थितोऽस्ति धनुः करणार्थं त्रिज्याव्यासार्धस्थानीयः कार्यः अतोऽनुपातः। यदि पराख्ये व्यासार्धेऽयं यन्त्रांशापमस्तदा चतुर्विंशतिमितव्यासार्धे कः। अतो जिननिघ्नः परहृदिति। ततो धनुः करणार्थं भुजांशा इति। घटिज्ञानार्थमनुपातः। यदि नवतिभागैर्द्युदलतुल्या घटिकास्तदेभिर्भागैः किमिति। अतो द्युदलघ्नाः खनवोद्धृता इति। यद्वा परपर्याय दिनार्धशंकुना जिनतुल्योन्नतघटीज्या लभ्यते तदेष्टयन्त्रापमसमेष्टशंकुना किमिति इष्टोन्नतनाडीजन्यभागज्या भवति तच्चापमिष्टोन्नतनाडीजन्यभागाः। ततो घटीज्ञानं तु द्युदलानुपातेनेति सर्वमवदातम्॥ १८

चन्द्रिका—अभीष्ट (तुरीयादि) यन्त्र द्वारा प्राप्त इष्ट उन्नतांश पर से क्रान्ति लाकर उसे २४ से गुणा कर पर से भाग देने से जो लब्धि प्राप्त हो उससे लघु खण्डों द्वारा भुजांश साधितकर उसे दिनार्ध से गुणाकर ९० से भाग देने पर पूर्वकपाल में दिनगत तथा पश्चिम कपाल में दिनशेष उन्नत घटी होती है। १८

उदाहरण—यन्त्र द्वारा प्राप्त उन्नतांश ३६।६।४५। इससे उन्नतकाल का ज्ञान अभीष्ट है। अतः नियमानुसार यन्त्रोत्थ उन्नतांश ३६।६।४५ द्वारा लघुरीति से क्रान्ति साधित किया। क्रान्ति १४।२।१५ को २४ से गुणा किया गुणनफल ३३६।५४ में पूर्वोक्त पर १६।१४।३७ को एकजातीय बनाकर भाग देने से लब्धि २०।४४।२५ इसे क्रान्ति मानकर इससे लघु-खण्डों द्वारा भुजांश ५९।१।३४ साधन किया। भुजांश को दिनार्ध १३।१३ से गुणा कर गुणनफल ७८०।७।४२ को ९० से भाग दिया। लब्धि ८।४०।५।८ (स्वल्पान्तरतः ८।४०) पूर्वकपाल में उन्नत घटी हुई। १८

उन्नतघटिकातो यन्त्रांशानयनम्—

खाङ्कघ्नोन्नतघटिका दिनार्धभक्ता
भागाः स्युस्तदपमजांशकाः परघ्ना।
सिद्धाप्ता निगदितवत्ततो भुजांशा-
स्तत्काले स्युरिति च यन्त्रजोन्नतांशाः॥ १९

मल्लारिः—अथोन्नतघटीभ्यो विलोमेन यन्त्रभागान् कथयति। खाङ्कैर्नवत्या हन्यन्ते गुण्यन्ते एवंभूता या उन्नतघटिकास्ता दिनार्धेन भक्ताः सत्यो भागाः स्युस्तेभ्यो भागेभ्यो येऽपमजांशकाः क्रान्त्यंशाः स्युस्ते परेण गुण्याः। ततः सिद्धैश्चतुर्विंशत्या आप्ता भक्ता लब्धं यत् ततो निगदितवच्च भुजांशाः स्युस्ते तस्मिन् काले यन्त्रजा उन्नता अंशा भागाः स्युरित्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः। पूर्वोक्तवैपरीत्येन सुगमा॥ १९

चन्द्रिका—इष्ट उन्नत घटी को ९० से गुणा कर दिनार्ध से भाग देने पर जो अंशादि लब्धि प्राप्त हो उससे लघुखंडों द्वारा क्रान्ति साधन

कर उसे पर से गुणा कर गुणनफल को २४ से भाग देकर लब्धि द्वारा (पूर्वोक्तरीति से) साधित भुजांश इष्टकालिक यन्त्रोत्थ उन्नतांश होता है ।। १९

उदाहरण—उन्नत घटी सावयव ८।४०।५।८ इसके द्वारा यन्त्रोत्थ उन्नतांश जानना अभीष्ट है । अतः श्लोकोक्त विधि से उन्नतघटी ८।४०।५।८ को ९० से गुणा किया गुणनफल ७८०।७।४२ में दिनार्ध १३।१३ का भाग दिया । लब्धि ५९।१।३४ को भुजांश मानकर लघुखंडों द्वारा (श्लोक १२) क्रान्ति २०।४४।२५ साधित किया । इस क्रान्ति को पर १६।१४।३७ से गुणा कर गुणनफल ३३६।५४ में २४ का भाग देने से लब्धि १४।२।१५ द्वारा पूर्वोक्त विधि (श्लो. १३) से साधित भुजांश ३६।६।४५ इष्टकाल यन्त्रोत्थ उन्नतांश हुआ ।। १९ ।।

यन्त्रांशतः कर्णस्य कर्णतश्च यन्त्रांशानामानयनम्—

यन्त्रलवोत्थक्रान्तिलवाप्ता
वस्विभदस्राः स्यादिह कर्णः
कर्णहृतास्ते स्यादपमोऽतो
बाहुलवाः स्युर्यन्त्रलवा वा ।। २०

मल्लारिः—अथ यन्त्रांशेभ्य इष्टकर्णसाधनमिष्टकर्णाद्यन्त्रंशसाधनमेकवृत्तेनाह । यन्त्रलवेभ्य उत्था उत्पन्ना ये क्रान्तिभागास्तैराप्ता भक्ता वास्विभदस्रा इहेष्टकर्णः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । परमक्रान्तिभागाः २४ । परमाल्पेन द्वादशतुल्येनेष्टकर्णेन गुणिता जातो भाज्यः २८८ । स भाज्यः परमक्रान्त्या यावद्भज्यते तावत्परमाल्पेष्टकर्णो भवति । एवमिष्टयन्त्रभागक्रान्त्या भाज्यमान इष्टकर्णो भवत्येवेति ।।

अथ कर्णेन हृता वस्विभदस्रा अपमः क्रान्तिः स्यात् । अतोऽस्याः क्रातबाहुभागास्ते वा प्रकारान्तरेण यन्त्रभागाः स्युरित्यर्थः । अत्र व्यस्तविधिरेव वासना ।। २०

चन्द्रिका—यन्त्रोत्थ उन्नतांश से (श्लोक १२ के अनुसार) क्रान्ति साधन कर उससे २८८ में भाग देने से लब्धि (अङ्गुलादि) कर्ण होता है ।

(कर्ण से यन्त्रोत्थ उन्नतांश ज्ञान के लिए) कर्ण से २८८ मे भाग देने से लब्धि क्रान्ति होती है। क्रान्ति द्वारा (श्लोक १३ के अनुसार) भुजांश साधन करने से भुजांश ही उन्नतांश होता है ॥ २०

उदाहरण—यन्त्र द्वारा प्राप्त उन्नतांश ३६।६।४५ इससे कर्ण ज्ञान करना है। अतः इसे भुजांश मानकर लघुखण्ड द्वारा क्रान्ति १४।२।१५ साधित किया। क्रान्ति को एक राशि ५०५३५ बनाकर इससे २८८ के सजातीयमान १०३६८०० में भाग देने से लब्धि २०।३०।५९ अङ्गुलादि कर्ण हुआ।

इसके विपरीत कर्णज्ञात होने पर यन्त्रोन्नतांश ज्ञान हेतु कर्ण २०।३०।५९ को एक जातीय ७३८५९ बनाकर २८८ के एक जातीय १०३६८०० में भाग देने से लब्धि १४।२।१५ क्रान्ति हुई। इससे श्लोक १३ के अनुसार भुजांश ३६।६।४५ साधित किया। यही भुजांश यन्त्रोत्थ उन्नतांश हुआ ॥ २०

दिक्साधनम्—

वृत्ते समभूगते तु केन्द्रस्थित-
शङ्कोः क्रमशो विशत्यपैति।
छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्या
सिद्धतिमेरुदक् च याम्या ॥ २१

मल्लारिः—अथ सर्वत्र नलिकाबन्धादिकुण्डमण्डपादिविधौ च दिक्साधनोपयोगोऽस्त्यतो दिक्साधनं कथयति। जलवत्समीकृतायां भूमौ वृत्तेऽभीष्टकर्कटेन कृते सति केन्द्रस्थितस्य वृत्तमध्यस्थस्य शङ्कोर्द्वादशांगुलस्य छायाग्रं क्रमशो विशति इहापरा पश्चिमदिक्। यत्रोपैति दिनशेषकाले वृत्तायत्र बहिर्गच्छति तत्र चिन्हे पूर्वा दिक्। ताभ्यां पश्चिमपूर्वदिग्भ्यां सिद्धो यस्तिमिर्मत्स्यस्तस्मान्मत्स्यमुखपुच्छसूत्रादुदगुत्तरा याम्या दक्षिणा स्यात्। एवं यद्दिने त्रिशन्मितमेव दिनमानं तद्दिवस एवामुना प्रकारेण दिक्साधनमन्यथा तु भुजं विना दिक्साधनं न भवति।

अत्रोपपत्तिः—अत्र दिशस्तु प्रतिदेशं भिन्ना न तु प्रतिकालम्। तासां भिन्नत्वे हेतुरुच्यते। यस्मिन् स्थाने सूर्योऽस्ति तदृजुमार्गो हि पूर्वापरा। तत्साधनोपायो यथा। मध्यसूत्रोदयास्तसूत्रयोर्यदन्तरं ज्यारूपं साऽग्रा ततोऽग्रातः शंकुमूलपर्यन्तं

यदन्तरं तत् शंकुतलम् । एवमग्राशंकुतलयोर्योगान्तरं भुजः । स भुजो मध्यसूत्राद्य-थादिशि देयः सा वै । याम्योत्तरा दिक् । तस्मात् मत्स्यात्पूर्वापरेति । अत्र नाडिकामण्डलस्थो ग्रहो यद्दिने भवति तद्दिवस एव दिक्साधनं युक्तमस्ति । यतोऽत्र नाडिकामण्डलस्थे ग्रहे चरज्याक्रान्तिज्याग्राणामभावः अग्राऽभावात् शंकुतलतुल्य एव भुजः स मध्यसूत्राद्देय इत्यत्र यत्र छायाप्रवेशनिर्गमस्थानं तत्रैव भवति यतो हि लघुक्षेत्रे शंकुतलं पलभातुल्यम् । तद्यथा । द्वादशकोटौ पलभा भुजस्तदा शंकुकोटौ क इति जातं शंकुतलं तन्महाशंकुस्थानीयम् । लघुनि छायाक्षेत्रे द्वादशतुल्यैव कोटिः । तत्रत्यकरणायानुपातः । महाशंकुकोटाविदं शंकुतलं तदा द्वादशकोटौ किमिति । एवं शंकुतुल्ययोर्द्वादशतुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशे जाता पलभैव । अतश्छायाप्रवेशनिर्गम-स्थाने पूर्वापरे तन्मत्स्याद्दक्षिणोत्तरे इति शोभनमुक्तम् ।। २१

चन्द्रिका समतल भूमि पर बने हुये वृत्त में केन्द्र भाग में स्थित शंकु की छाया (सूर्योदय काल में) जहाँ प्रवेश करे तथा (अस्तकाल में) जहाँ से निकले (अर्थात् स्पर्श करे) उन दोनों बिन्दुओं में जाने वाली रेखा पूर्वापर होती हैं। (अर्थात् छाया का प्रवेश विन्दु पश्चिम तथा निर्गमन बिन्दु पूर्व दिशा में होता है।) इन दोनों बिन्दुओं पर चापों द्वारा बने हुए मत्स्य के मुख पुच्छ को मिलाने वाली रेखा दक्षिणोत्तर रेखा होगी। (अर्थात् पूर्वापर रेखा के मध्यविन्दु पर किया हुआ लम्ब दक्षिण और उत्तर दिशा का द्योतक होता है।) २१

भुजं संसाध्य दिक्साधनम्—

वार्कक्रान्तिलवाक्षकर्णनिहतिर्भाकर्णनिघ्नी नभो
ऽक्षाग्न्याप्ता रविदिग्भुजो यमदिशाद्विघ्नाक्षभासंस्कृतः ।
केन्द्रं भोत्थवृतौ स पूर्णगुणवद्भाग्रात् प्रदेयो भवेद्
याम्योदक् स भुजार्धकेन्द्रनिहता रज्जुस्तु पूर्वापरा ।। २२

मल्लारिः—अथ नाडिकामण्डलादन्यत्र यस्मिन् कस्मिंश्चिद्दिवसे दिक्साधनार्थं भुजमानयति । वा शब्दः प्रकारान्तरसूची । अर्कस्य ये क्रान्तिलवास्तेषामक्षकर्णस्य च या निहतिः परस्परगुणनं सा भाकर्णेन छायाकर्णेन कर्णः स्यात्तदमर्कभाकृतियु-तेरिति साधितेन निघ्नी गुणिता ततो नभोऽक्षाग्निभिः ३५० पञ्चाशदधिकशतत्रयेण आप्ता भक्ता सती रविदिक् सूर्यो यस्मिन् गोले वर्त्तते तद्दिग्भुजः स्यात् । स भुजो मध्यमो यमदिशया दक्षिणदिशया द्विघ्नया द्विगुणयाक्षभया संस्कृतः सन् स्फुटो

भवति । स भुजः केन्द्रे भोत्थवृतौ छायोत्पादितवृत्ते भाग्रात् छायाग्रात् प्रवेशकालीनाद् वा निर्गमकालीनात् पूर्णगुणवत् यथाशं पूर्णज्या दीयते तद्वद्देयः । भाग्राद्दीयमान-भुजमितशलाकाया अग्रं यथा वृत्तपरिधौ लगति तथा देयमित्यर्थः । सा याम्योत्तरा भवति भुजार्धं भुजमध्यः । केन्द्रं वृत्तमध्यम् । अनयोर्मध्ये मिलिता या रज्जुः सा पूर्वापरा ।

अत्रोपपत्तिः—अत्र भुजलक्षणं तु पूर्वमेव प्रतिपादितं तत्साधनं यथा । तत्रा-दावग्रा साध्यते । कुज्या भुजः । क्रान्तिज्या कोटिः । अग्रा कर्ण इति अक्षक्षेत्रं तथा च पलभा भुजः । द्वादशकोटिः । पलकर्णः कर्ण इति अस्मात्साध्यते ।

तत्रानुपातः—यदि द्वादशकोटौ पलकर्णः कर्णस्तदा क्रान्तिज्या कोटौ कः कर्ण इति अग्रा स्यात् । क्रान्तिः । किञ्चिदधिकेन द्वयेन गुणिता क्रान्तिज्या सा पलकर्णगुणा द्वादशभक्ता अग्रा सा त्रिज्याव्यासार्धे ततोऽनुपातः । यदि त्रज्यावृत्ते इयमग्रा तदा छायाकर्णवृत्ते का । अतश्छायाकर्णो गुणः । त्रिज्या हरः । तत इयमग्रा द्विगुणा कार्या । यतः सम्पूर्णजीवावत् वृत्तमध्ये भुजो देयोऽस्ति । एवं क्रान्तिः पलकर्णगुणा कार्या ततः सिद्धो गुणद्वयघातो गुणः ४।४ । हरः १४४०। गुणहरौ गुणेनापवर्त्तितौ लब्धा हरस्थाने ३५० । अत उक्तमर्कक्रान्तिलवाक्षकर्ण निहतिरिति । साग्रा शंकुतलेन संस्कार्या । तत्र लघुक्षेत्रे शंकुतलं पलभातुल्यं तदग्रायां संस्कार्यम् । अग्राया द्विगुणितत्वादिदमपि द्विगुण कार्यम् । अत उक्तं यमदिशाद्विघ्ना-क्षभासंस्कृत इति । स भुजो भाग्राद्दत्तो याम्योदक् स्यात् । भुजस्य द्विगुणत्वाद् भुजमध्यकेन्द्रोपरिनीयमानो रज्जुः पूर्वापरेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥२२॥

चन्द्रिका—(पूर्वोक्त रीति से) अथवा सूर्य की क्रान्ति को अक्षकर्ण से गुणा कर गुणनफल में छायाकर्ण का गुणा करने से जो गुणनफल हो उसमें ३५० का भाग देने से लब्धि सूर्य की दिशा (सूर्य जिस गोल में हो) का भुज होता है। पलभा की दक्षिण दिशा होने के कारण द्विगुणित पलभा का भुज में संस्कार (एक दिशा में योग भिन्न दिशा में अन्तर) करने से स्पष्ट भुज होता है। इस भुज को छाया से उत्पन्न वृत्त के मध्यस्थ शंकु की छायाग्र विन्दु से पूर्णज्या के रूप में रखने से दक्षिणोत्तर रेखा बनती है तथा भुज के मध्य विन्दु से केन्द्र में जाने वाली रज्जु (रेखा) पूर्वापर होती है। २२

उदाहरण—स्पष्टसूर्य ७।१२।३५।३१ दिग् ज्ञान हेतु भुजसाधन करना है। अतः पूर्वोक्त विधि से ७।१२।३५।३१ का भुज १।१२।३५।३१। इसके अंशादि ४२।३५।३१ द्वारा क्रान्ति १६।११।५० हुई। इसे पलकर्ण १३।१९ से गुणा किया। गुणनफल २१५।४१।३४ में पुनः छायाकर्ण २०।२५ का गुणा किया। गुणनफल ४३३२।३।३९ में ३५० का भाग देने से लब्धि १२।२२।३८ भुज हुआ। सूर्य वृश्चिक राशि का होने से दक्षिण गोल का है अतः द्विगुणित पलभा (५।४५ × २) = ११।३० में भुज को जोड़ने से २३।५२।३८ स्पष्ट भुज हुआ।

यन्त्रद्वारा दिक्साधनार्थं दिगंशानयनम्—

द्युमानखगुणान्तरं शिवगुणं दिनेऽल्पेऽधिके-
ह्यपागुदगथानुदक् भवति यन्त्र भागापमः।
वसुघ्न्युभयसंस्कृतिर्नवति यन्त्रभागान्तरोद्
भवापमहृता ततो भुजलवा दिगंशाः स्मृताः॥ २३

मल्लारिः—अथ तुरीययन्त्रात् दिक्साधनार्थं दिगंशान् साधयति। द्युमानं प्रसिद्धम्। खगुणाः त्रिंशत्। अनयोर्यदन्तरं तत् शिवगुणमेकादशगुणित तत् दिने अल्पाधिके अपाक् उदक् स्यात्। त्रिंशदल्पे दिनमाने दक्षिणमधिके सति उत्तरं फलं स्यात्। अथ शब्दोऽनन्तरवाची। यन्त्रभागानामपमः क्रान्ति सदा अनुदक् दक्षिणेति। उभयोर्द्वयोः संस्कृतिः वसुघ्नी अष्टगुणा सती ततो नवति-यन्त्रभागानां च यदन्तरं तदुद्भवस्तस्मादुत्पन्नो योऽपमः। तेन सा हृता। ततः फलाद्ये भुजलवास्ते दिशामंदा दिक्शाधनार्थमेतेंशाः स्युरित्यर्थः। एते दिगंशा यन्त्रोत्पन्ना एवेति।

अत्रोपपत्तिः—अत्र स्वक्षितिजे चक्रांशा अङ्क्याः। ततः पूर्वस्वस्तिकेष्टदिग् विवरे ये भागास्ते दिगंशास्तज्ज्या दिग्ज्या। एवं पश्चिमस्वस्तिकेऽपि। तत्साधनं यथा-अग्राकर्णवृत्तीया कार्या सा पलभया संस्कार्या स भुजः स्यात्। ततः स त्रिज्यावृत्तीयः कार्यः सा दिग्ज्या भवति। तत्रादावग्रा साध्यते। द्युमानखगुणा-न्तरं दलितं चरघटिकाः ततः षष्टिगुणाः पलानि। ततस्तच्चरं नवगुणं पलभा-भक्तमष्टभक्तं क्रान्त्यंशा इति युक्तिः पूर्वमुक्तास्ति। एवं द्युमानखगुणान्तरस्य-सिद्धो गुणघातो गुणः २७०। अष्टौ पलभा च हरः। स क्रान्तिश्छायाकर्णगुणा

खखाद्रिभक्ता भुजो भवति इत्यग्रे वक्ष्यति । स भुजस्त्रिज्यया गुण्यश्छायया भक्तो दिग्ज्या भवति । एवमत्र छायाकर्णपलकर्णावपि गुणौ खखाद्रीनामष्टानां च घातो हरः ५६०० । चतुर्विंशतिमितत्रिज्या गुणघातगुणा जातो गुणः ६४८० । अत्र छायाकर्णच्छाये साध्ये । यदि शंकुकोटौ त्रिज्याकर्णस्तदा द्वादशकोटौ कः कर्ण इति । तथा च दृग्ज्या भुजो यदि शंकुकोटौ तदा द्वादशकोटौ क इति जाता छाया । एवमत्र छायया भाज्यमाने छायाकर्णेन गुण्यमाने छेदांशविपर्यासे शंकुतुल्ययोस्तथा द्वादशतुल्योर्गुणहरयोर्नाशे कृते पूर्वं त्रिज्या गुणो नतांशज्या हरः । अत्र पलकर्णो गुणः पलभा हरोऽस्ति । अत्र पलभा चतुर्मिता कल्पिता स्वल्पान्तरत्वात् त्रिपञ्चपलभयोरपि स्यात् । अन्यत्र ग्रन्थसञ्चारासंभवः । लाघवेन युक्तिदर्शनार्थं स्थूलमङ्गीकृतमतो न दोषाय । एवं चतुर्मितायां पलभायां पलकर्णः १३।३९। अयं पलभया सषडंशत्रय ३।१० गुणितया तुल्या भवति । ततः पलकर्णपलभयोर्गुणहरयोर्नाशे तस्य सषडंशत्रयं गुणः ३।१० एवं सषडंशत्रयचतुर्विंशतिमितत्रिज्याघातेन ७६ गुणितः पूर्वगुणघातो गुणः ४९२४८० । अयं हरः ५६०० । गुणहरौ हरेणापवर्त्य जातो गुणः ८८ । अतोऽत्र द्युमानखगुणान्तरं गुणेनानेन गुण्यं नतांशापमेन भाज्यम् । एवमत्र द्युमानखगुणान्तरं शिवगुणितं कृतम् । अष्टगुणस्य त्यागो यतोऽन्तिमफलस्य शंकुतलाख्यस्य च अष्टौ गुणोऽस्ति नतांशापम एव हरः । अतः फलसंस्कार एवाष्टगुणो नतांशापमभक्त इति वदिष्यति । तद्यथा । आत्रास्यामग्रायां शंकुतलमपि त्रिज्यागुणितं छायया भक्तं संस्कार्यं दिग्ज्या स्यात् । तत्र शंकुतलं पलभा ४ छायया भाज्यमित्यत्रापि छाया साध्या । शंकुकोटौ दृग्ज्या भुजो द्वादशकोटौ क इति जाता छाया । अनया भाज्यमाने छेदांशविपर्यासे दृग्ज्या द्वादश च हरः । शंकुः पलभा चतुर्विंशतिमितत्रिज्या च गुणः । अतो गुणघातो गुणः ९६ । गुणहरयोर्गुणेनापवर्त्तितयोर्जातो गुणः ८ । नतांशापमो हरः । इदं फलं सदा दक्षिणम् । पलभाया दक्षिणत्वात् । अतोऽत्र यन्त्रांशापम एव द्युमानखगुणन्तरेण संस्कृतो यतस्तस्यापि तौ गुणहरौ वर्तते अत फलसंस्कृतिरेवाष्टभिर्गुण्या नतांशापमेन भाज्येत्युपपन्नं यन्त्रांशहीननवत्यंशापम एव नतांशापम इति प्रत्यक्षं सिद्धम् । अत्र पूर्वफलस्याग्रासंज्ञस्योत्तरदक्षिणोपपत्तिर्यथा । दक्षिणगोलेऽग्रा दक्षिणा तत्र दिनं त्रिंशदल्पम् । तथोत्तरगोले उत्तराग्रा तत्र दिनं त्रिंशदधिकम् । अतो दिनेऽल्पाधिके अपागुदगित्युपपन्नम् । एवमत्रोत्पन्ना दिग्ज्या तस्या धनुर्दिगंशाः स्युरतो हि ततो भुजलवा दिगंशा इत्युक्तम् ॥ २३

चन्द्रिका—दिनमान और ३० के अन्तर को ११ से गुणा करने से जो गुणनफल हो, उसको ३० से अल्प दिनमान होने पर दक्षिण तथा अधिक होने पर उत्तर दिशा होती है। यन्त्रोत्थ उन्नतांश से क्रान्ति साधन करने से (सदैव) दक्षिणा क्रान्ति होती है। इन दोनों (गुणनफल और क्रान्ति) का संस्कार (एक दिशा में योग भिन्न दिशा में अन्तर) करके आठ से गुणा कर गुणनफल में, ९० और यन्त्रोत्थ उन्नतांश के अन्तर से साधित क्रान्ति द्वारा भाग देने पर जो लब्धि हो उसका भुजांश बनाने से दिगंश होता है ॥ २३

उदाहरण—दिनमान २६।२६ को ३० में घटाया शेष ३।३४ को ११ से गुणा किया। गुणनफल ३९।१४ की दक्षिण दिशा हुई क्योंकि दिनमान ३० से अल्प है। यन्त्रोन्नतांश ३६।६।४५ को भुजांश मानकर १२वें श्लोक के आधार पर क्रान्ति १४।२।१५ लाया। जो दक्षिण क्रान्ति हुई। गुणनफल ३९।१४ तथा क्रान्ति १४।२।१५ दोनों की एक ही दिशा होने से दोनों का योग किया तो ५३।१६।१५ हुआ। इसे ८ से गुणा किया गुणनफल ४२६।१० में ९० और ३६।६।४५ यन्त्रोन्नतांश के अन्तर ५३।५३।१५ से साधित क्रान्ति १९।२२।१२ को सजातीय करके भाग देने से लब्धि २२।०।५ प्राप्त हुई इससे श्लोक १३ के अनुसार साधित भुजांश ६७।३०।३० हुआ यही दिगंश होगा ॥२३

दिगंशज्ञानात् तुरीययन्त्राद् दिग्ज्ञानम्—

समभुविनिहिते तुरीयन्त्रे
स्पृशति यथा च दिगंशकाग्रकेन्द्रे।
अवलम्ब विभोत केन्द्रसंस्थे-
षीकाभाऽथ दिशोऽत्र यन्त्रगाः स्युः ॥ २४

मल्लारिः—अथ तैर्दिगंशैर्यन्त्रात् कथं दिक्साधनं भवति तदाह। जलवत्समीकृतायां भूमौ तुरीययन्त्रे निहिते सति स्थापिते दिगंशा यावन्तः स्युस्तद-

ग्रचिन्हमेव केन्द्रं तस्मिन् अवलम्बकस्य विभा छाया। तदुत्थकेन्द्रसंस्थाया ईषीकायाश्छाया यथा स्पृशति तथा यन्त्रे साधिते सति तुरीययंत्रदिगंशकाग्रकेन्द्रोपरि यो रज्जुः सा पूर्वापरा। तन्मत्स्याद्याम्योत्तरे भवतः। अत उक्तं यन्त्रगा दिशः स्युरिति ॥ २४

चन्द्रिका—समतल भूमि में स्थापित तुरीययन्त्र में पूर्वसाधित रीति से दिगंश ज्ञान कर उतने ही अंश पर चिह्न लगाने से यन्त्र में दिगंशाग्र विन्दु होगा। अवलम्ब सूत्र या केन्द्रस्थ इषीका (शलाका) की छाया जिस प्रकार (दिगंश विन्दु को) स्पर्श करे उसी दिशा में यन्त्र को रखने से तदनुसार दिशा होगी। (अर्थात्) तुरीय यन्त्र का एक भुज पूर्वापर तथा दूसरा दक्षिणोत्तर दिशाओं में होगा ॥ २४

ग्रहदर्शनाय नलिकाबन्धोपयोगि भुजकोटिसाधनम्—

क्रान्तिः स्फुटाभिमतकर्णगुणाक्षकर्ण-
निघ्नी खखाद्रि-हृदपक्रमदिग्भुजः स्यात्।
संस्कारितो यमदिशाक्षभया स्फुटोऽसौ
तद्वर्गभाकृतिवियोग पदं च कोटिः ॥ २५

मल्लारिः—अथ नलिकाबन्धनार्थं भुजसाधनमाह। यस्य ग्रहस्य नलिकाबन्धः क्रियते तस्य क्रान्तिः स्वशरेण संस्कृता सती स्पष्टा कार्या सा क्रान्तिरिष्टकर्णेन गुण्या रात्रौ यासु घटीषु नलिकाबन्धा क्रियते तद्घटीम्यश्छायेष्टकर्णयन्त्रभागग्रहद्युगतादिसाध्यम्। तत्साधनमाचार्येणाग्रे प्रोक्तमस्ति। ततः सेष्टकर्णगुणा क्रान्तिरक्षकर्णगुणा सती खाखाद्रिहृत्। अपक्रमदिक् स्पष्टक्रान्तेर्या दिक् तद्दिग्भुजो भवति स मध्यमः। यमदिशा दक्षिणदिशा। अक्षभयाऽसौ संस्कृतः स्फुटः स्यात् तस्य भुजस्य यो वर्गो भायाश्छायाया यो वर्गस्तयोर्वियोगोऽन्तरं तस्य पदं मूलं कोटिः स्यात्। अत्र भुजस्योपपत्तिः पूर्वमेव प्रतिपादितास्ति तत्र द्विगुणः कृतोऽस्ति अत्रैकगुण्योऽतो हरो द्विगुणः पठित एकगुणया पलभया संस्कार्यः ॥

अथ कोटेरुपपत्तिः। दक्षिणोत्तरो भुजः। छायैव कर्णः। यतो हि भुजश्छायावृत्तस्थोऽतो दोः कर्णवर्गयोर्विवरान्मूलं कोटिरिति ॥ २५

चन्द्रिका –ग्रह की स्फुटक्रान्ति को अभीष्टकर्ण से गुणा कर गुणनफल को पुनः अक्षकर्ण से गुणाकर ७०० से भाग देने पर लब्धि भुज होता है। भुज की वही दिशा होती है जो स्पष्टाक्रान्ति की होती है। भुज में दक्षिण दिशा की पलभा का संस्कार (एक दिशा में योग भिन्न दिशा में अन्तर) करने से स्फुट भुज होता है। भुजवर्ग और छायावर्ग के अन्तर का वर्गमूल लेने से कोटि होती है। २५

विशेष—यहाँ स्पष्ट क्रान्ति का अभिप्राय पूर्वसाधित क्रान्ति से नहीं है। शर द्वारा साधित क्रान्ति की आवश्यकता उक्त श्लोक में है। इसका विवेचन ग्रहण एवं ग्रहच्छायाधिकार में किया गया है। अतः शर ज्ञान के अभाव में क्लिष्टता के भय से यहाँ उदाहरण नहीं दिया जा रहा है।

ग्रहदर्शनार्थं नलिकाबन्धनम्—

ज्ञात्वाऽऽशाः परखेचरे परमुखीं प्राक्खेचरे प्राङ्मुखीं
विन्दोः कोटिमितो भुजं स्वदिशि तन्मध्ये प्रभां विन्यसेत्।
विन्दोर्भाग्रगशंकुमस्तकगते सूत्रे नले खे खगं
के विन्दुस्थनराग्रभाग्रकगते सूत्रे नले लोकयेत्॥ २६

मल्लारिः—अथ भजकोटिकर्णनलिकासंस्थानमाह। आशा दिशो ज्ञात्वा पूर्वोक्तवज्जलसमीकृतभूमौ दिवसाधनं कृत्वा तत्रेष्टकालीनच्छायाव्यासार्धेन वृत्तं कृत्वा तत्र दिक्चिह्नानि कार्याणि। ततो विन्दोर्वृत्तमध्यात् परखेचरे खमध्यात् पश्चिमकपालस्थे ग्रहे परमुखीं पश्चिमाभिमुखीं कोटि यथागतां दद्यात्। प्राक्खेचरे पूर्वकपालस्थे ग्रहे प्राङ्मुखीं कोटिं विन्दोरेव दद्यात्। अतः कोट्यान्तात् स्वदिशि भुजं दद्यात्। छायां विन्यसेत् केन्द्रादारभ्य भुजान्ताग्रपर्यन्तं छाया प्रसार्या स एव कर्णः। एव जातं त्र्यस्रं क्षेत्रम्॥

अथ नलिकानिवेशमाह विन्दोरिति। विन्दोर्वृत्तमध्याद्भाग्रे गच्छति स तथा एवं भूतो यः शंकुः। भुजान्तच्छायान्तसंयोगे द्वादशांगुलः शंकुः स्थाप्याः। तथा

केन्द्रे कीलकण्टकादिबद्धं सूत्रं भूलग्नं कृत्वा तत्सूत्रं तच्छङ्कोर्मस्तकोपरि नीत्वा तेनैव ऋजुमार्गेणाग्रादूर्ध्वं नयेत्। तत्र सूत्रे नलो निवेश्यः। तस्य द्वौ वंशौ आधारभूतौ कार्यौ। नलो नामान्तः ससुषिरं वंशनालं तस्मिन् नले यत्कालीनं भुजादि कृतं तद्घटीषु मूलमध्यस्थदृष्टया खे आकाशे खगं ग्रहं विलोकयेत्। एवं विलोक्यमाने तस्मिन् नलमध्ये स चेद् ग्रहो नावलोक्यते तदा स ग्रहो न घटते तत्रान्तरमपि लक्ष्यम्। एवमनयैव युक्त्याऽऽचार्येण सर्वग्रहाणां नलिकाबन्धं विधाय अन्तराणि ज्ञात्वा ग्रहसाधनं कृतम्।

अथ जले ग्रहदर्शनार्थं नलिकानिवेशमाह क इति। उदके ग्रहं विलोकयेत् तद्यथा। अत्र शंकुः केन्द्रे स्थाप्यः। तच्छङ्कुकवग्रात् सूत्रं भाग्रपर्यन्तमधो नयेत्। तत्सूत्रे नलः स्थाप्यः। ततश्छायाग्रस्थाने जलपूर्णपात्रं स्थाप्यम्। तत्र मध्येऽधोदृष्टया जले ग्रहो विलोक्यः। अत्रेदं सर्वदिक्साधननलिकानिवेशादि कृत्वा ततस्तस्मिन्नेव काले विलोक्यमिति। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

दर्शयेद्दिविचरं दिवि के वाऽन्हेसि द्युचरदर्शनयोग्ये।[1]
पूर्वमेव विरचय्य यथोक्तं रञ्जनाय सुजनस्य नृपस्य॥

अस्योपपत्तिः। प्रत्यक्षसिद्धार्थत एव ज्ञायते। इदं दिक्साधननलिकाबन्धादिनान्यकरणेष्वस्ति। आचार्येण राज्ञां चमत्कारदर्शनार्थं स्वकृतग्रहघटनार्थं कृतमिति।

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य त्रिप्रश्नाधिकारः परिपूर्त्तिमागात्॥ २६॥
इति श्रीगणेशदैवज्ञकृतग्रहलाघवस्य त्रिप्रश्नाधिकारश्चतुर्थः॥ ४॥

चन्द्रिका—(पूर्वोक्त विधियों से) ग्रहों की दिशा का ज्ञान कर, ग्रह यदि पश्चिम कपाल में हो तो पश्चिमाभिमुख, ग्रह यदि पूर्वकपाल में हो तो पूर्वाभिमुख पूर्वापर रेखा में (पूर्वसाधित) कोटि का न्यास केन्द्र विन्दु से कर, कोट्यग्र से पूर्वापर रेखा पर जिस दिशा का भुज हो उस दिशा में लम्बरूप रेखा खींचकर भुज और केन्द्र के मध्य में छाया का न्यास कर छाया के अग्र भाग में शंकु स्थापित कर शङ्कु के अग्रभाग से (मस्तक से) गए हुए सूत्र में नलिका द्वारा आकाशस्थ ग्रह का अवलोकन करें। यदि जल में अवलोकन अभीष्ट हो तो छायाग्र विन्दु पर जल (पात्र) रख कर शङ्कु के मस्तक से छाया के अग्र में नलिका द्वारा जल में ग्रह का प्रतिविम्ब देखें। २६।

श्री गणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के त्रिप्रश्नाधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥ ४॥

---

१. सि. शि. ग. १०९।
९ ग्रह०

५. चन्द्रग्रहणाधिकारः

इष्टकालिकग्रहसाधनम्—

गतगम्यदिनाहतद्युभुक्तेः खरसाप्तांशवियुग्युतो ग्रहःस्यात् ।
तत्कालभवस्तथाघटीघ्न्याः खरसैर्लब्धकलोनसंयुतःस्यात् ॥ १ ॥

मल्लारिः—तत्रेदं चिन्त्यते ननु किं नाम ग्रहणम् । गृह्यतेऽनेनेति ग्रहणं योऽयं ग्रहीतुमिच्छति स तं प्रति यदा गच्छेत् तदैव ग्रहणम् । अतो ग्राह्यग्राहकयोर्योगो ग्रहणम् । योगो नामान्तराभावः । अतो ग्राह्यग्राहकयोरन्तराभावो ग्रहणमिति ।

अस्ति ग्रहाणां गतिः षोढ़ा पूर्वापरा याम्योत्तरोर्ध्वाधरा चेति । तत्र कि पूर्वापरयाम्योत्तरोर्ध्वाधरान्तराणामभावो ग्रहणम् । किं वा पूर्वापरयाम्योत्तरान्तराभावो ग्रहणम् किं वा पूर्वापरोर्ध्वाधरान्तराभावो ग्रहणम् । वा पूर्वापरान्तराभावो ग्रहणम् । उत याम्योत्तरान्तराभावो ग्रहणम् । किमुत ऊर्ध्वाधराभावो ग्रहणम् । अत्रोच्यते । ग्रहकक्षयोर्महदन्तरस्य विद्यमानत्वाद्ग्राह्यग्राहकयोरुर्ध्वाधरान्तराभावः कल्पान्तेऽपि न स्यात् । अतः प्रथमतृतीयषष्ठाः पक्षा न सुन्दराः । अथ वक्तव्यं पूर्वापरयाम्योत्तराभावो ग्रहणमिति साऽपि संज्ञा न घटते यतो हि विद्यमाने शरतुल्ये दक्षिणोत्तरान्तरे ग्रहणं भवत्येव । अनेन हेतुना द्वितीयपञ्चमपक्षौ न शोभनौ । अथ वक्तव्यं पूर्वापरान्तराभावो ग्रहणं तत्र प्रतिपर्वणि ग्राह्यग्राहकयोः पूर्वापरान्तराभावोऽस्त्येव न प्रतिपर्वणि भवति । अतो नापि चतुर्थः पक्षः शोभनः । तत्र किं नाम ग्रहणमिति मन्दमतयोऽत्र मुह्यन्ति । अत्रोच्यते । पूर्वापरान्तराभावे मानैक्यखण्डादूने शरे ग्रहणं मौनक्यखण्डतुल्ये शरे बिम्बप्रान्तयोः संयोगमात्रं भवति । यथा यथा मानैक्यखण्डाच्छरोन्यूनो भवति तथा तथा ग्राह्यबिम्बं ग्राहकबिम्बे प्रविशति तावानेव ग्रासः । एवं सत्यपि ऊर्ध्वाधरान्तरे ग्रहणम् । तत्र हेतुः । अस्मदादिदृष्टेरावरणीभूतत्वं तावद्ग्रहणकर्तृत्वं न तु ग्राह्यग्राहकयोर्विम्बसंयोगः । अहो आस्तां तावदनेन विचारेण । यतः प्रथमं सूर्यचन्द्रयोर्ग्राह्यग्राहकयोः को वा ग्राहक इति न ज्ञायते । अत्रोच्यते । अत्र सूर्यचन्द्रग्रहणे राहुरेव कारणीभूतः । यतो राहुर्नाम पातः । पातवशाच्छरः । शरव-

शादेव ग्रहणमतोऽवश्यं ग्रहणे राहुर्हेतुभूतः। अत्र 'ग्रहणे कमलासनानुभावात्।' 'राहुग्रस्ते दिवाकरे निशाकरे चे'ति स्मृतिवाक्यपर्यालोचनेन च राहुरेव सूर्यचन्द्रग्रहणयोर्ग्राहक इति पूर्वः पक्षः। अत्र वयं तु ब्रूमः। ननु राहोर्ग्रहणकर्तृत्वे प्रोच्यमाने राहुणा सूर्यचन्द्रतुल्येन भवितव्यम्। यतः पूर्वापरान्तराभावं विना ग्रहणं वक्तुं न शक्यते। नात्र ग्रहणं राहुणा सह पूर्वापरान्तराभावो दृश्यते नातो ग्रहणे राहोर्ग्राहिकत्वमिति सिद्धान्तः। ननु पूर्वपक्षीत्याशङ्कते। अहो भवद्भिः ग्रहणे ग्राह्यग्राहकयोः पूर्वापरान्तराभाव एवोच्यते तदयुक्तम्। यत्ते यथा ग्रहाणामस्ते भवन्तः कालांशान्तरिते सूर्याद् ग्रहे सति ग्रहास्तादिरिति मन्यन्ते। तथैवास्माभिः सप्तभिर्द्वादशभिः कालांशैःसूर्यचन्द्राभ्यां यथाक्रममन्तरिते राहौ ग्रहणादिबिम्बसंयोगमात्रं मन्यते कालांशान्तराभावे परमं ग्रहणम्। यथा सूर्यग्रहान्तराभावे परमास्तमय उच्यते। एते कालांशा राहुवशेनैव मानैक्यखण्डतुल्यशरादुत्पन्ना युक्तियुक्ता एव सन्ति। अतो राहुणा ग्राहकेण कालांशान्तरितेन सूर्यचन्द्रौ ग्रस्येते इति युक्तिः कथं भवच्चेतो न सहते। एवं चेत् तदाऽस्तेऽपि सूर्यग्रहयोः पूर्वापरान्तराभावमेव वदन्तु भवन्तो न कालांशान्तरे। चेत् तत्र कालांशान्तरमङ्गीक्रियते तर्हि किमनेनापराद्धमिति ग्रहे प्रतिबन्धराहुरेव कारणमिति युक्तम्। सत्यम्। अहो भवतु राहुर्ग्रहणे कारणं परं तस्य राहोर्ग्राहकस्य बिम्बसिद्धिः कर्त्तव्या। तद्बिम्बं गगने नावलोक्यते। अत्र तु ऋजुत्रिज्यामितशलाकाभ्यां बिम्बप्रान्तौ वेध्यौ तन्मध्ये याः कलास्ता बिम्बकलाः। अनयैव युक्त्या सर्वेषां बिम्बानि साधितानि। अनेन विधिना राहोर्बिम्बं ज्ञातुं नैव शक्यतेऽदर्शनादेव। अतः सति कुड्ये चित्रमिति न्यायात् राहोर्ग्राहिकत्वं नैव सम्भवतीति सिद्धान्तः। अत्रोच्यते। अहो भवद्भी राहुबिम्बसाधनोपायादर्शनान्न तस्य ग्राहकत्वमुच्यते। तद्यथा। राहुश्चन्द्रकक्षायां क्रान्तिमण्डलविमण्डलसम्पातेऽस्ति। तत्र सूर्यग्रहणे सूर्यचन्द्रौ समकलौ। सूर्यात् सप्ताल्पेष्टकालांशान्तर एव राहुः स पुच्छादियुतो मुखपृच्छाकारो वर्त्तते। तस्य मुखं तु क्रान्तिविमण्डलसम्पाते नास्त्येव 'अमृतास्वादवेलायां छिन्नश्चक्रेण विष्णुने'ति स्मृतिवाक्यबलेन राहुमुखं सम्पातात् कालांशान्तरितमस्तीति कल्पनीयमेव। यतो यदाकाशे दृश्यते तदेव गणितेन सिद्ध्यतीति राहुमुखाभावाद्राहुमुखस्थानाज्ञानात् तस्य मुखहीनशरीरस्य सम्पातसंज्ञ स्थानमंगीकृतम्। ततस्तत्सम्पातात् कालांशान्तरे राहुशीर्षं सम्पयतात् कालांशान्तरे चन्द्रश्च। सूर्यश्चन्द्रतुल्यः। अतः सूर्यस्य ग्राह्यस्य राहुणा ग्राहकेण सह पूर्वापरान्तराभावोऽप्यस्ति। राहुशीर्षं तु चन्द्रबिम्बोपरि तत्समानमेव। एककक्षत्वात् तत्तुल्यत्वाच्च यच्चन्द्रबिम्बं श्यामं तदेव सूर्यग्रहणे सूर्यस्यावरणीभूतम्। तथा चन्द्रग्रहणे चन्द्रः षड्भान्तरे सूर्याद् भूछा-

याऽपि षड्भान्तरेण। चन्द्रभूछाये समाने। चन्द्राद्वृत्तसम्पात इष्टकालांशान्तरे सम्पाताद्राहुशीर्षमपि कालांशान्तरेऽतो राहुशीर्षं भूछायातुल्यम्। अत एव चन्द्रकक्षायां यावती भूछायाविस्तृतिस्तावदेव राहुविम्बम्। अतश्चन्द्रग्रहणेऽपि राहुविम्बं भूभातुल्यं चन्द्रस्यावरणीभूतम्। तयोः पूर्वापरान्तराभावोऽप्यस्ति। अतो बिम्बसिद्धिरपि वर्त्तते इति युक्तिबलादागमप्रामाण्याच्च राहुरेवावश्यं ग्रहणद्वयेऽपि कारणीभूतो वक्तव्य इति सिद्धम्। ननु सूर्यग्रहणे चन्द्रविम्बतुल्यं राहुविम्ब भवद्भिरुच्यते चन्द्रहणे भूच्छायातुल्यं राहुविम्बम्। इदं न घटते यत एककक्षास्थितस्य राहोर्विम्बं कथं महान्तरितम्। चन्द्रविम्बाद् भूछाया तु त्रिगुणितासन्ना दूरस्थग्रहे विम्बं लघुगतिश्च लघवी। समीपस्थे ग्रहे विम्बं पृथु गतिश्च पृथ्वी। तत्र राहोर्गतिः सदा समैव। अतो विम्बलघुमहत्त्वं न स्यादेव।

अथ वक्तव्यं चन्द्रकक्षायां राहुः। यथा चन्द्रस्योर्ध्वाधरगमनेन विम्बलघुमहत्वं तथैव राहोरिति तदप्ययुक्तम्। यतश्चन्द्रविम्बोर्ध्वाधर गमनवशेनैव यदास्य बिम्बो नाधिक्यं स्यात् तदा सर्वदा सूर्यग्रहणेऽपि चन्द्रविम्बतुल्यमेव राहुबिम्वं नाधिकं स्यात्। कथं चन्द्रग्रहणे भूच्छायातुल्यं राहुविम्बमुच्यते। अतस्तदसत्। यदि ग्रहणद्वयेऽपि चन्द्रविम्बतुल्यमेव राहुविम्बं वक्तव्यं तदा चन्द्रग्रहणे स्थितिर्महती सूर्यग्रहणे स्थितिर्लघ्वी एवं कथं स्यात्। स्थितिलघुमहत्वं तु प्रत्यक्षं ग्रहणे दृश्यते। अतश्चन्द्रविम्बतुल्थं राहुविम्बं सर्वदा कल्प्यमित्यतेदप्यसत्। अन्यच्च। सूर्यग्रहणेऽर्धग्रासे सूर्यविम्बश्रृंगे तीक्ष्णे चन्द्रग्रहणे श्रृंगयोः कुण्ठता दृश्यते। अतो हि छादको ग्रहणद्वये भिन्न एव कल्प्यः। अतोऽपि राहुर्न छादकः। पूर्वं भवद्भिः कालांशान्तरेऽस्तप्रतिबंधग्रहणमिति यदुक्तं तदप्यसत्। यतः सूर्येण स्वतेजसा कालांशान्तरेऽपि ग्रहो निष्प्रभः क्रियते। अतस्तत्रैव तस्यास्त इति युक्तम्। अत्र राहुरन्धकाररूपः। अन्धकारो नाम तेजोहानिः। तेजो हान्या कालांशान्तरेण सूर्यचन्द्रावाच्छाद्येते इदं सर्वथाऽल्पसंबन्धम्। एवं सति गणितयुक्तिबलेन प्रत्यक्षदर्शनतया च राहोर्ग्रहणे ग्राहकत्वं न सम्भवत्येवेति सिद्धान्तः। नन्वेवं चेत् तर्हि वेदाप्रामाण्यप्रसंगः स्यात्। अत्रोच्यते। सूर्यग्रहणे चन्द्रश्छादकश्चन्द्रग्रहणे भूछाया छादिनी। तत्रामायां चन्द्रविम्बं श्यामं राहुविम्बमपि श्यामं यद्यपि तत्र न कालांशान्तरे वृत्तसम्पातेऽस्ति तथापि ब्रह्मवरदानाद्ग्रहणकाले तत्र गच्छतीति कल्प्यते। एवं चन्द्रग्रहणेऽपि भूछाया श्यामली राहुविम्बमपि तथा यद्यपि तत्र न कालांशान्तरे वृत्तसम्पातेऽस्ति। तथापि वरवशाद्ग्रहणे भूछायान्तर्वर्त्ती राहुर्भवतीति कल्प्यते आगमभयात्। उक्तं च भास्कराचार्यैः। सिद्धान्तशिरोमणौ—

दिग्देशकालावरणादिभेदैर्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति।
यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत्संहितावेदपुराण बाह्यम् ॥ १ ॥

राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं शशांङ्कगश्छादयतीनबिम्बम् ।
तमोमयः शम्भुवरप्रदानात् सर्वागमानामाविरुद्धमेतत् ॥

एवमत्र मुख्यतया सूर्यस्य चन्द्रश्छादकश्चन्द्रस्य भूछाया छादिनीति सिद्धम् । अहो भवद्भी राहोर्ग्रहणकर्तृत्वं कृतं चेत् तदा सूर्यग्रहणे सूर्यबिम्बस्य पश्चिमे स्पर्शः चन्द्रग्रहणे चन्द्रबिम्बस्य पूर्वस्पर्शः भूमेश्छायायां प्रविशति इति कथम् ॥

अथ प्रकृतं ग्रहसाधनं तदर्थं पर्वान्तकालीनौ चन्द्रसूर्यौ कार्यावेव । राहुरपि कार्यः । यतो राहुं विना शरसिद्धिर्न । अतः पञ्चांगीयावधिस्थितग्रहाणां तद्दिनजकरणार्थं स्थूलामेव तदवधिस्थितां गतिं तद्दिनान्तरे समानामेवांगीकृत्य ग्रहाणां चालनं वदति तत्स्वल्पान्तरं स्यात् । अतो न दोषाय भवति इति । अथ वा सूर्यचन्द्रयोः सूर्योदयिकयोः पर्वान्तकालीनकरणार्थं चालनमाह । व्याख्या यद्दिनजो ग्रहस्तद्दिनांत पूर्वकालीनग्रहसाधनार्थं गतदिनानि । अग्रिमकालीनग्रहसाधनार्थं यावन्ति दिनानि तावन्ति गम्यानि । तैर्गतैरथ वा गम्यदिवसैर्ग्रहस्य द्युभुक्तेर्दिनगतेर्गुणिताया यैः खरसैः षष्ठ्या आप्तांशा लब्ध भागास्तैर्वियुग्युतो ग्रहश्चेत् पूर्वं क्रियते तदा हीनः । अग्रिमश्चेत् तदा युक्तः । स तद्दिनजो ग्रहः स्यात् । तथा इष्टघटीघ्न्या गतेः खरसैर्या लब्धकलास्ताभिर्यथाक्रममूनसंयुतः सन् तत्कालभवो ग्रहो भवतीत्यर्थः ।

अत्रोपपत्ति :—अत्रानुपातो यदि सावनाभिः षष्टिघटीभिर्गतिकला ग्रहः पूर्वगत्या क्रामति तदा इष्टघटीभिः कति कला । एवं दिनगुणितायां गतौ कलाः स्युः । षष्ट्या भाज्या भागार्थम् । अत उक्तं गतगम्येत्यादि । धनर्णोपपत्तिः प्रत्यक्षतोऽतिसुगमा ॥ १ ॥

चन्द्रिका :—गत-गम्य दिनादि (दिन, घटी-पला) को ग्रहगति से गुणाकर ६० से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो उसे पूर्व साधित ग्रह के अंशादि में, गम्यदिनादि होने पर जोड़ने तथा गत दिनादि होने पर घटाने से अभीष्ट काल का स्पष्ट ग्रह होता है। यदि गत-गम्यकाल घट्यादि हो तो उसे ग्रह गति से गुणाकर ६० से भाग देकर लब्धि को पूर्व साधित ग्रह की कला विकला में उक्तरीति से संस्कार करने पर स्पष्ट ग्रह होता है ॥ १ ॥

विशेष :–गत-गम्यका निर्णय साधितग्रह के आधार पर होता है। प्रायः किसी एक दिन सूर्यादय कालिक या मध्यरात्रि कालिक ग्रह सिद्ध करके व्यवहारार्थ रख लिये जाते थे। उससे पूर्व यदि किसी समय का ग्रह अभीष्ट हो तो साधित ग्रह से अभीष्ट समय तक का अन्तर गत काल या

गत दिनादि होता है तथा साधित ग्रह से जितने दिन घटी पश्चात् ग्रह-साधन अभीष्ट हो उतना समय गम्य काल या गम्यदिनादि कहलाता है। परन्तु आजकल प्रत्येक दिन के ग्रह सूर्योदय कालीन अथवा मिश्रमान कालिक दिये जाते हैं।

उदाहरण—सं० २०३१ शक १८९६ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवार को उदयकालिक स्पष्टसूर्य ७।१२।३५।३१ स्पष्टचन्द्र १।१५।१३।१९ राहु ७।१६।४७।१३ चन्द्रोच्च १०।१।४१।४७ स्पष्टासूर्य गति ६०।५३।४२ स्पष्टा-चन्द्रगति ८००।५१ पूर्णिमा की भोग्य घटी ३५।५१। स्पष्ट सूर्यादि को पर्वान्त कालिक बनाने के लिए तत्तद् ग्रहों की गतियों को पूर्णिमा के भोग्यकाल ३५।५१ से गुणाकर ६० से भाग देने पर प्राप्त लब्धि को उदयकालिक स्पष्ट ग्रहों में जोड़ने तथा राहु में घटाने से पर्वान्त कालिक सूर्य ७।१३।११।५४, चन्द्रमा १।२३।११।४९॥ चन्द्रोच्च १०।१।४५।४६ तथा राहु ७।१६।४५।१९ हुआ॥ १॥

ग्रहणसम्भवज्ञानं शरसाधनञ्च—

एवं पर्वान्ते विराह्वर्कबाहो-
रिन्द्राल्पांशाः सम्भवश्चेद्ग्रहस्य।
तेंऽशा निघ्नाः शंकरैः शैलभक्ता
व्यग्वर्काशः स्यात् पृषत्कोऽङ्गुलादिः॥ २॥

मल्लारिः—अथ ग्रहणसम्भवासम्भवज्ञानार्थं पर्वसम्भूतिं कथयति। एवं कृते सति सूर्यचन्द्रौ तु पर्वान्ते समकलौ भवतः। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

'पूर्णान्तकाले तु समौ लवाद्यैर्दर्शान्तकालेऽवयवैर्गृहाद्यैः' इति।

ततः पर्वान्तकालीनराहूनितस्य सूर्यस्य यो बाहुर्भुजस्तस्य भुजभागाश्चेत् इन्द्राल्पांशाश्चतुर्दशाल्पास्तदैव ग्रहस्य ग्रहणस्य सम्भवः स्यादधिकेषु नैव ततस्तेंऽशा भुजभागाः शङ्करैरेकादशभिर्निघ्ना गुणिताः शैलैः सप्तभिर्भक्ताः सन्त उद्दिष्टं फलं सोंऽगुलादिरंगुलपूर्वकः पृषत्कः शरो व्यग्वर्कांशो भवति। राहूनितसूर्यो यस्मिन् गोले तद्दिग्भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—अपवृत्ते यद्राशौ भागे कलायां चन्द्रपातो वर्त्तते तं तु विलोमं दत्त्वा तत्र विमण्डलापमण्डलयोः सम्पातो द्वितीयः षड्भान्तरेण द्वयोः सम्पातयोस्त्रिभेऽन्तरे परमविक्षेपतुल्यैर्भागैरपवृत्ताद्विमण्डलाद्यर्धमुदग्विदध्यात् तथा द्वितीयं दक्षिणेन। एवं स्थिते चन्द्रपातावपि द्वौ मेषादितः पूर्वगतौ प्रवृत्तौ चन्द्रः शीघ्रत्वादग्रतो याति तत्र यदा पातसमश्चन्द्रो भवति तत्र विक्षेपाभावः। अतो

विगतराहुश्चन्द्रः। चन्द्रशरार्थं केन्द्रम्। अत्र तु सूर्यग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः समत्वात् राहुणा सूर्य एव हीनः कृतश्चन्द्रग्रहणेऽपि सूर्यचन्द्रयोः षड्भान्तरात् विराहु-चन्द्रविराहुसूर्ययोर्भुजसाम्यमेव। परमत्र गोलान्यत्वात् शराऽन्यदिक् स एव परि-लेखे प्रयोजकः। अतः एवाचार्येण चन्द्रग्रहे व्यस्तदिक् शर इति प्रोक्तम्। तत्र त्रिभे परमः शरः अतोऽनुपातः। यदि त्रिज्यातुल्यया १२० विराह्वर्कभुजज्यया परमो नवत्यंगुलतुल्यः शरः ९० तदेष्टदोर्ज्यया किमति। अत्र भुजभागाः सप्त-मिताः प्रकल्पिताः। तेभ्यः साधितः शरः ११। ततोऽनुपातः यदि सप्तभिर्भुजभा-गैर्भवतुल्यः शरस्तदेष्टैः किमिति। अत उक्तन्तेंऽशा निघ्नाः शङ्करैः शैलभक्ता' इति गोलवशाद्दिग्भवतीत्यर्थतः एव सिद्धम्।

अथ पूर्वार्धोपपत्तिः—मानैक्यखण्डाधिके शरे ग्रहणाभावः। अतश्चन्द्रभूभा-विम्बे परमगतिप्रमाणेन कृत्वा तयोर्योगार्धं मानैक्यखण्डं कृतम्। २०।३७। एता-वान् शरस्तु चतुर्दशतुल्यभुजभागेभ्य एव भवति। अत इन्द्राल्पांशा यदा तदा ग्रहणमित्युपपन्नम्॥ २॥

चन्द्रिका—इस प्रकार पर्वान्त कालिक सूर्य से पर्वान्तकालिक राहु को घटाने से जो शेष हो उसका भुजांश यदि १४ अंश से अल्प हो तो ग्रहण सम्भव होता है अन्यथा नहीं। यदि ग्रहण सम्भव हो तो राहु रहित सूर्य के भुजांश को ११ से गुणा कर गुणनफल में ७ का भाग देने से लब्धि अंगुलादि उसी दिशा का शर होता है जिस दिशा (गोल) का राहुरहित सूर्य होता है॥ २॥

उदाहरण—पर्वान्तकालिक सूर्य ७।१३।११।५४ राहु ७।१६।४५।१९ सूर्य से राहु को घटाने पर शेष ११।२६।२६।३५/बचा इसको १२ में घटाकर शेष का भुज बनाया ०।३।३३।२५। भुजांश (३।३३।२६) चौदह अंशों से अल्प है अतः ग्रहण सम्भव है। उक्त नियमानुसार भुजांश को ११ से गुणा कर गुणनफल ३९।७।३५ में ७ का भाग देने से लब्धि ५।३५ शर अंगुलादि प्राप्त हुआ। राहु रहित सूर्य मीन राशिगत होने से दक्षिण गोल का है अतः शर की भी दिशा दक्षिण होगी॥ २॥

रविचन्द्रभूभा विम्बसाधनम्—

व्यसुशरगतीष्वंशो दिग्युग्भवेद्वपुरुष्णगो-
रथ सितरुचो विम्बं भुक्तियुगाचलभाजिता।
तदपि हिमगोर्विम्बं त्रिघ्नं निजेशलवान्वितं
विवसु भवति क्ष्माभाविम्बं किलाङ्गुलपूर्वकम्॥ ३॥

मल्लारिः—अथ सूर्यचन्द्रभूच्छायाविम्बानां साधनं कथयति । विगता असुशराः पञ्चपञ्चाशत् ५५ यस्याः सा तथा एवंभूता या गतिस्तस्या इष्वंशः पञ्चमांशा स दिग्भिर्दशभिर्युग्युक्तः कार्यः । तत् उष्णगोः सूर्यस्य वपुर्विम्बं स्यात् । अंगुलपूर्वकमिति सर्वविम्बेषु संयुज्यते ॥

अथ सितरुचश्चन्द्रस्य भुक्तिर्गतिर्युगाचलैश्चतुःसप्तत्या ७४ भाजिता सती चन्द्रविम्बं स्यात् ॥

अथ भूच्छायां साधयति । तदपि हिमगोश्चन्द्रस्य विम्बं त्रिघ्नं त्रिगुणं ततः निजेन ईशभागेन एकादशांशेन युक् । विवसु अष्टोनं सत् क्ष्माया भुवो या भा छाया तस्या विम्बं भूछायाविम्बं भवतीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः—उच्चस्थितग्रहस्य विम्बं लघु गतिश्च लघ्वी । तथा नीचसमस्य ग्रहस्य विम्बं पृथु गतिर्महती । यथा यथा गतिर्वर्धते तथा तथा विम्बमपि वर्धते । यथा ह्रीयते तथाऽपचीयते । अतो गतेर्विम्बानयनं कर्त्तुं युज्यते । तद्यथा । यदि दिनगतियोजनैर्गतिकलास्तदा विम्बयोजनैः किमिति कलादीनि विम्बानि स्युः । तानि त्रिभक्तान्यंगुलानि । यतोऽत्रांगुलं त्रिकलमेव कल्पितमस्ति । अत्राचार्येण लाघवार्थं सूर्यगतिं पञ्चपञ्चाशन्मितां प्रकल्प्य सूर्यविम्बमंगुलाद्यं साधितम् । तद्यथा । दिनगतियोजनानि पादोनगोक्षधृतिभूमितानि ११८५८४५ । एभिः पञ्चपञ्चाशन्मितायां गतौ भाजितायामेभिः सूर्यविम्बयोजनैः ६५२२ गुणितायां जातं कलाद्यमर्कविम्बम् ३० । इदं त्रिभक्तं जातमगुलाद्यम् १० । अथ पञ्चपञ्चाशदधिकस्य गतेः खण्डस्य विम्बं साध्यं तदत्र योज्यं विम्बं स्यात् । अत्र गतिखण्डस्य सार्धपञ्चभागो भवति । गतिखण्डस्याल्पत्वात् पञ्चमांश एवाङ्गीकृतः । अतो व्यसुशरगतीष्वंशो दिग्युगित्युपपन्नम् । एवमेव चन्द्रस्य मध्यगतिप्रमाणेनांगुलाद्यं चन्द्रविम्बं साधितम् १०।४० चन्द्रविम्बयोजनानि ४८० अतोऽनुपातः । यदि मध्यगत्या ७९० इदं चन्द्रविम्बं तदा स्पष्टगत्या किमिति । स्पष्टगतेर्विम्बं गुणो मध्यगतिर्हरः । गुणहरौ गुणेनापवर्त्तितौ हरस्थाने जाता, ७४ । अतः सितरुचो विम्बं भुक्तिर्युगाचलभाजितेत्युपपन्नम् ।

अथ भूच्छायोपपत्तिः—अत्रार्कविम्बभूव्यासान्तरयोजनानां रविकक्षायां कलाकरणार्थमनुपातः । यदि दिनगतियोजनैः ११८५९ गतिकला लभ्यन्ते ५९।८ तदाऽर्कविम्बयोजनभूव्यासान्तरयोजनैः ४९४१ किमिति । अतो लाघवार्थं मध्यगतेरेवानीताः कलाः २४ । एतास्त्रिभक्ताः जातानि रविगतिसम्बन्धीनि अंगुलानि ॥ ८ ॥

अथ भूव्यासस्य चन्द्रकक्षायां कलाकरणायानुपातः। यदि गतियोजनैः ११८५९ चन्द्रगतिकला लभ्यन्ते तदा भूव्यासयोजनैः १५८१ किमिति। अंगुलार्थ त्रीणि हरः ३। चन्द्रगतेर्गुणः १५८१। हरघातो हरो जातः ३५५७७। गुण-हरौ सार्धत्रिवेदैरपवर्त्तितौ ४३।३०। जातं गुणस्थाने ३६। हरस्थाने ८१७। अत्र खण्डगुणनं विहितम्। प्रथमस्थाने एकादशभिर्गुणहरावपवर्त्तितौ ३।७४। अत्र वेदाद्रिभक्ता चन्द्रगतिश्चन्द्रविम्बं भवति। अतश्चन्द्रविम्बं त्रिगुणं पृथक् स्थाप्यम्। द्वितीयस्थानीयो हरश्चतुःसप्तत्या भक्तश्चन्द्रविम्बस्य गृहीतत्वात्। अतो जातो द्वितीयहरः ११। गुणकस्त्रिमित एवोभयत्र। अत एव हिमगोर्विम्बं त्रिनिघ्नं निजेशलवान्वितमिति। तत् सूर्यगतिसम्बन्धिभिरंगुलैः स्वल्पान्तरैः८ हीनं कार्यम्। यतो भूव्यासाद्यावद्रविविम्बमधिकं तावत्प्रमाणेनोपर्युपरि गच्छन्त्या भूभाया विस्तृतिरपचयिनी स्यात्। यथा पृथुदीपेऽल्पवस्तुनश्छायाऽग्रेऽपचीयमाना सूच्यग्रा भवति। अल्पे दीपे पृथुवस्तुनोऽग्रे उपचीयमाना स्थूला भवति। अतो भूव्या-साद्यावदधिकं तेन भूव्यासो हीनः कृत इति ॥ ३॥

चन्द्रिका—सूर्य की स्पष्टागति में ५५ कला घटाकर शेष पञ्चमांश को १० में जोड़ने से अंगुलादि सूर्यबिम्ब होता है। चन्द्रमा की गतिकला में ७४ से भाग देने पर अंगुलादि चन्द्रबिम्ब होता है। तथा उसी चन्द्रविम्ब को ३ से गुणाकर गुणनफल में उसी का एकादशांश जोड़कर योगफल से ८ रहित करने पर अंगुलादि भूभा विम्ब होता है॥ ३॥

उदाहरण[1]—सूर्य की स्पष्टागति ६०।५३ इसमें से ५५ कला घटाने से

१. आचार्य विश्वनाथ ने विम्बसाधन में इस नियम का आश्रय नहीं लिया है। यहाँ पर उन्होंने सूक्ष्म प्रकार से आनयन किया है किन्तु विधि का उल्लेख नहीं किया। पं० सुधाकर द्विवेदी ने अपनी टीका में विश्वनाथ द्वारा अपनाये हुए नियम का उल्लेख किया है तथा प्रमाण पद्य भी उद्धृत किया है। छात्रों के ज्ञान हेतु उक्त विधि सुधाकरोक्त उपपत्ति सहित यहाँ भी उद्धृत की जा रही है।

विश्वनाथोक्तरीत्या रविविम्बभूभाविम्बयोरानयनम्—

"गतिर्द्विघ्नीशाप्तांगुलमुखतनुः स्यात् खररुचोः
विधोर्भुक्तिर्वेदाद्रिभिरपहृता विम्बमुदितम्।
नृपाश्वोना चान्द्री गतिरपहृता लोचनकरैः
रदाढ्या भूभा स्याद् दिनगतिनगांशेन रहिता॥

अर्थात्—द्विगुणित रविगति को ११ से भाग देने पर लब्धि अङ्गुलादि रवि-विम्ब होता है।

चन्द्रमा की गति को ७४ से भाग देने पर लब्धि अंगुलादि चन्द्रविम्ब होता है। चन्द्रमा की गति से ७१६ घटाकर शेष में २२ का भाग देने से प्राप्त लब्धि में ३२ जोड़ कर रविगति का सप्तमांश घटाने से अंगुलादि भूभाविम्ब होता है।

उपपत्तिः—तत्र भास्करविधिनैवाङ्गुलात्मकं रविविम्बम्

$$= \frac{११ \times र.ग.}{६०} = \frac{११ \times २ \times र.ग.}{१२०} = \frac{२ \times र.ग.}{११}$$

=स्वल्पन्तरादुपपन्नम् चन्द्रविम्बसाधनं तु पूर्ववदेव।

$$\left(च.वि. = \frac{च.ग.}{७४} \right)।$$

अथ भास्करविधिनैवाङ्गुलात्मकं भूभाविम्बं प्रदर्शितम्

$$च = \frac{२ च.ग.}{४५} - \frac{५ र.ग.}{३६}$$

$$= \frac{२}{४५}(च.ग. - ७१६ + ७१६) - \frac{५ र.ग.}{३६}$$

$$= \frac{२}{४५}(च.ग. - ७१६) + \frac{२ \times ७१६}{४५} - \frac{५ र.ग.}{३६}$$

$$= \frac{२}{४५}(च.ग. - ७१६) + \frac{१४३२}{४५} - \frac{५ र.ग.}{३६}$$

$$= \frac{(च.ग. - ७१६)}{२२} + ३२ - \frac{र.ग.}{७} \text{ स्वल्पान्तरात्।}$$

अत उपपन्नम्

उदाहरण—स्पष्ट रविगति=६०।५३

२(६०।५३) = १२१।४६

$$१२१।४६ \div ११ = \frac{१२१।४६}{११} = ११।४।१० = \text{रविविम्ब अंगुलादि}$$

चन्द्रगति=८००।५१

$$८००।५१ \div ७४ = \frac{८००।५१}{७४} = १०।४९।२० \text{ चन्द्रविम्ब}$$

चन्द्रगति ८००।५१ − ७१६।००

= ८४।५१ ÷ २२ = $\frac{८४।५१}{२२}$ = ३।५१।२४

 ३।५१।२४
३२
३५।५१।२४

रविगति ६०।५३ ÷ ७ = $\frac{६०।५३}{७}$

सप्तमांश = ८।४१।५१

३५।५१।२४

−८।४१।५१
२७। ९।३३ = भूभाविम्ब अंगुलादि।

शेष ५।५३ रहा। इसके पञ्चमांश १।१० में १० जोड़ने से ११।१० अंगुलादि सूर्य विम्ब हुआ।

चन्द्रमा की स्पष्टागति ८००।५१। इसमें ७४ का भाग देने से लब्धि १०।४९ अंगुलादि चन्द्रविम्ब हुआ।

चन्द्रविम्ब १०।४९ को ३ से गुणा कर गुणनफल ३२।२७ में इसी का एकादशांश २।५७ जोड़ने से ३५।२४ हुआ। इसमें से ८ घटाने पर शेष २७।२४ भूभाविम्ब हुआ॥

छादकछाद्यनिर्णयपूर्वकं ग्रासानयनम्—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा
छादकच्छाद्यमानैक्यखण्डं कुरु।
तच्छरोनं भवेच्छन्नमेतद्यदा
ग्राह्यहीनावशिष्टं तु खच्छन्नकम्॥४॥

मल्लारिः—अथ मानैक्यखण्डग्रासप्रमाणे साधयति। इन्दुश्चन्द्रोऽर्कं छादयति। अस्मदादिदृष्टेरावरणीभूतो भवति। भूमिभा विधुं चन्द्रमसं छादयति।

छादकच्छाद्ययोः सूर्यग्रहणे सूर्यचन्द्रयोश्चन्द्रग्रहणे चन्द्रभूछाययोर्ये माने बिम्बे तयोर्यदैक्यं तस्य यत् खण्डमर्धं तत् कुरु तन्मानैक्यखण्डमिति शरेण पूर्वसाधितेन ऊनं रहितं सद्यदवशिष्टं तच्छन्नमंगुलाद्यो ग्रासः स्यात् । चेन्मानैक्यखण्डाच्छरो न निर्गच्छति तदा ग्रहणमपि नास्तीति ज्ञेयम् । ततश्छन्नं यदा ग्राह्येन छाद्य-बिम्बेन हीनं सदवशिष्टं तदा तु शेषतुल्यः खग्रासो भवति । खच्छन्नमिति यथार्थं नाम यतः सर्वबिम्बं ग्रासयित्वाकाशमपि तावद्ग्रसितम् । इदं तु सर्वग्रहण एव भवति ।

अस्योपपत्तिः रवेर्भार्धान्तरे क्रान्तिवृत्ते भूभा भ्रमति । रवेर्भार्धान्तरे चन्द्रश्च । अतः पौर्णमास्यन्ते भूभाचन्द्रौ समौ भवतः । अतश्चन्द्रस्य भूछाया छादिनी स्यात् । दर्शान्ते चन्द्रादूर्ध्वं रविश्चन्द्रसमोऽतो रवेश्चन्द्रमाश्छादको भवति ।

अथ ग्रासोपपत्तिः—चन्द्रविमण्डलापवृत्तयोः सम्पातश्चन्द्रपातः । तथा तस्मात् षड्भान्तरेऽपि । एवं स्थानद्वये शराभावः । ततस्त्रिभेऽन्तरे परमः शरः एवंकृते चन्द्रबिम्बमध्यकेन्द्रविमण्डले सदैव वर्त्तते । सूर्यस्य मण्डलकेन्द्रं क्रान्ति-मण्डले । तस्मात् षड्भान्तरे भूछायायाः केन्द्रमपि क्रान्तिमण्डल एव । यदा चन्द्र-स्य शराभावस्तदा चन्द्रः क्रान्तिवृत्तमाश्रयति । एवमुभयोरेकमार्गाश्रितत्वान्मण्डल-भेदः स्यात् । तदा चन्द्रमण्डलं भूछायां प्रविश्य पूर्वतो निःसृत्य गच्छति तदा सर्व-ग्रहणं भवति । स्वल्पे शरे ग्रासादिकस्य सम्भवः । उभयोर्मण्डलयोर्योगार्धाधिके शरे ग्रहणाभाव एवमत्र राहोरकारणं परिदृश्यते । उक्तं च– 'दिग्देशकालावर-णादिभेदैर्नच्छादक' इति । किन्तु संहितादिषु राहुकृतं ग्रहणमिति प्रसिद्धिः । तत्कारणं लल्लेनोक्तं 'ग्रहणे कमलासनानुभावा' दित्यादि । छाद्यच्छादकयो-र्मण्डलमध्यकेन्द्रयोर्विमण्डलापमण्डलस्थयोर्नेमिस्पर्शं उभयोर्मण्डलार्धमेव केन्द्रान्तरं भवति । तावति शरे मण्डलस्पर्श एव । तदूने यावानुभयोः संयोगस्तावान् ग्रास इति अधिके मण्डलयोः सम्पर्को न भवत्येव तस्मादग्रहणाभावः । छाद्यतुल्ये छन्ने पूर्णग्रहणं तस्माच्छाद्योने छन्नं चाकाशग्रासः खच्छन्नसंज्ञा इति ।। ४

चन्द्रिका—(सूर्य ग्रहण में) चन्द्रमा सूर्य को आच्छादित करता है तथा (चन्द्रग्रहण में) भूमि की छाया चन्द्रमा को आच्छादित करती है ।[1]

---

१. छाद्य छादक भेद से सूर्य और चन्द्र ग्रहण की परिस्थितियों में पर्याप्त अन्तर होता है । चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में प्रविष्ट हो जाने से अदृश्य हो जाता है अथवा जितना भाग छाया से ग्रस्त होता है उतने भाग का ग्रहण होता है । यही कारण है कि चन्द्रग्रहण जहाँ तक चन्द्रमा दृश्य होता है वहाँ तक एक ही रूप में

छाद्य और छादक के विम्बों का योगकर उसके आधे (मानैक्य खण्ड) में शर घटाने से शेष ग्रासमान होता है। ग्रासमान से छाद्य विम्ब घटाने पर शेष खग्रास होता है ॥ ४

उदाहरण—छादक (भूभा) विम्ब=२७।२४, छाद्य (चन्द्रमा) विम्ब १०।४९ इन दोनों का योग ३८।१३ मानैक्य हुआ इसका आधा १९।६ मानैक्यार्ध या मानैक्यखण्ड कहलाता है। इसमें शर ५।३५ घटाने से १३।३१ ग्रासमान हुआ। यह छाद्य विम्ब १०।४९ से अधिक है। अतः ग्रासमान १३।३१ से १०।४९ को घटाने से शेष २।४२ खग्रास हुआ।

स्थितिदलमर्दघट्योरानयनम्—

मानैक्यखण्डमिषुणा सहितं दशघ्नं
छन्नाहतं पदमतः स्वरसांशहीनम्।
ग्लौविम्बहृत् स्थितिरियं घटिकादिका स्या-
न्मर्दं तथा तनुदलान्तरखग्रहाभ्याम् ॥ ५

मल्लारिः—अथ ग्रहणस्य स्थितिसाधनमाह। मानैक्यखण्डमिषुणा शरेण सहितं ततो दशभिर्हन्येत तत् तथा। ततश्छन्नेन ग्रासेन आहतं गुणितम्। अतः पदं मूलं तत् स्वषडंशहीनं चन्द्रविम्बभक्तं घटिकादिका स्थितिः स्यात्। तथा तनुदलान्तरखग्रहाभ्यां मर्दं स्यात्। तद्यथा। विम्बार्धान्तरं शरयुक्तं खग्रासगुणम्। अतो मूलं स्वषडंशहीनं चन्द्रविम्बभक्तं घटिकादिकं मर्दं स्यादित्यर्थः।

दृश्य होता है। परन्तु सूर्यग्रहण की ऐसी स्थिति नहीं है। सूर्यग्रहण स्थान भेद से पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि सूर्यग्रहण में वस्तुतः सूर्य आच्छादित नहीं होता अपितु द्रष्टा और सूर्य के मध्य चन्द्रमा अवरोधक होता है। चन्द्रमा हमारे दृष्टि पथ को जितना अवरुद्ध करता है उतना ही सूर्य ग्रहण दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रविम्ब लघु है सूर्य विम्ब बृहद् है। अतः यदि द्रष्टा सूर्य और चन्द्र के केन्द्रगत सूत्र में स्थित होकर सूर्य को देखता है तो सूर्य का वलय या कंकण ग्रहण उसे दिखलाई देगा। क्योंकि केन्द्र गत होने से चन्द्रमा सूर्य विम्ब के मध्य में स्थित होगा। तथा चन्द्रविम्ब के चारों तरफ सूर्य का अवशिष्ट प्रकाशित भाग एवं मध्य में चन्द्रमा से छादित कृष्ण प्रदेश दिखाई देगा जो एक वलय के आकार में होगा। कुछ स्थल ऐसे भी होगें जहाँ पर सूर्यग्रहण दृश्य नहीं होगा इसीलिए सूर्यग्रहण में आक्षांश देशान्तर से दृश्यादृश्य का निर्णय करना पड़ता है।

अत्रोपपत्तिः—समायां भुवि अभीष्टव्यासार्धेन वृत्तमालिख्य दिगङ्कं कृत्वा या पूर्वापरा वृत्तरेखा ततः स्वदिशि मध्यग्रहणिकं शरं प्रसार्य तदग्रे विन्दुः कार्यः। ततस्तदग्रसूत्रस्पृक् पूर्वापरायता रेखा कार्या सा विमण्डलरेखा। ततो ऽपवृत्तरेखामध्ये मध्य कृत्वा भूभाव्यासार्धेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तद्भूभावृत्तम्। ततो विक्षेपाग्रबिन्दुं मध्यं कृत्वा ग्राह्यविम्बार्धेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तच्चन्द्रवृत्तम्। तच्चन्द्रभूभावृत्तान्तयोः परस्परमनुप्रवेशो ग्रासः। अत्र स्पर्शान्मिध्यग्रहणं यावद्येन मार्गेण छादको गच्छति तस्य छादकमार्गस्य प्रमाणं ज्ञातुं त्रिभुजकल्पना कृता। सा यथा। ग्राह्यग्राहकयोरवश्यं (१) मानैक्यार्धंतुल्यमन्तरं स एव कर्णः। मध्यग्रहणकालिकः शरः कोटिः। कोटिकृतिं कर्णकृतेर्विशोध्यं मूलं पूर्वापरो भुजो भवति। अत्र वर्गान्तरं योगान्तरघातसममतो मानैक्यखण्डशरयोर्योगो मानैक्यखण्डशरान्तरेण गुण्यो वर्गान्तरं भवति। मानैक्यखण्डमिषुणा सहितं छन्नाहतमिति सिद्धम्। ततस्तदंगुलात्मकं जातं कलीकरणार्थं गुणः ३। ततो घटीकरणार्थमनुपातः यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदाऽऽभिर्भुजकलाभिः किमिति। फलं स्थित्यर्धघटिकाः। एवं मानैक्यखण्डशरयोगस्य ग्रासगुणस्य पूर्वं गुणः ३। इदानीं षष्टिर्गुणः। एवं जातो गुणघातो गुणः १८०। गत्यन्तरं हरः। गुणहरावष्टषष्टया ६८। अपवर्तितौ जातं गुणस्थाने सावयवं २।३८।२०। हरो गत्यन्तरं यावदष्टषष्ट्या भाज्यते तावच्चन्द्रविम्बमेव हरः। अत्र खण्डगुणनार्थं सषडंशत्रयमितो गुणो धृतः। अत्र मूलं गृहीत्वाऽनेन गुण्यम्। अत्राचार्येण ३।१० अस्य गुणस्य वर्गं कृत्वा १० अनेन वर्ग एव प्रथमं गुणितस्ततो मूलं गृहीतं तुल्यमेव भविष्यति यतो 'वर्गेण वर्गं गुणये' दित्याद्युक्तमिति। अतो दशघ्नं ततो मूलमित्युक्तं पूर्वं गुणखण्डस्थाने एतावदधिकं गृहीतम् ०।३१।४० इदं षड्भिः सर्वणित जातम् ३।१० इदं पूर्वगुणतुल्यं जातमतः स्वरसांशहीनमिति। चन्द्रविम्बं हरोऽस्ति। अतो ग्लौविम्बहृदिति। एवं स्थितिघटिकाः स्युरित्युपपन्नम्। अथ मर्दानयने युक्तिः तत्र संमीलनकाल विम्बान्तरार्धतुल्यं ग्रहकेन्द्रयोरन्तरं भवति स च कर्णः। मध्यशरः कोटिः। अनयोर्वर्गान्तरात् स्थितिवन्मर्दसिद्धिर्भवतीति। अनुपातसादृश्यात्। अतः उक्तं तनुदलान्तरखग्रहाभ्यां मर्दमिति। एवं कृते स्थितिमर्दयोः खण्डे न सकले। यतः स्पर्शान्मध्यपर्यन्तमेकं स्थितिखण्डं मध्यान्मोक्षपर्यन्तमेकं स्थितिखण्डम्। तथैव मर्दखण्डमपि। मर्दखण्डं तु खग्राससम्भवे नान्यथेत्यर्थत एव सिद्धम्॥ ५

चन्द्रिका—मानैक्यार्ध (छाद्य विम्ब और छादक विम्ब का योगार्ध) में शर जोड़कर १० से गुणाकर गुणनफल में पुनः ग्रासमान से गुणा करके वर्ग मूल लेने से जो प्राप्त हो उसमें उसी का षष्ठांश घटाकर शेष में चन्द्र-

बिम्ब का भाग देने से लब्धि घट्यादि 'स्थिति' होती है। इसी प्रकार छाद्य छादक के बिम्बान्तर एवं खग्रास द्वारा घट्यादि मर्द का साधन होता है।

उदाहरण—छाद्य बिम्ब १०।४९ छादक बिम्ब २७।२४ दोनों का योग ३८।१३ इसका आधा १९।६ (मानैक्यार्ध) इसमें शर ५।३५ जोड़कर योगफल २४।४१ को १० से गुणा किया गुणनफल २४६।५० को पुनः ग्रासमान १३।३१ से गुणाकर गुणनफल ३३३६।२१ के वर्गमूल ५७।४५ में इसका षष्ठांश ९।३७ घटाया शेष ४८।८ को एक राशि २८८८ बनाकर उसमें चन्द्रविम्ब १०।४९ के एक राशिगत मान ६४९ से भाग देने पर लब्धि ४।२७ 'स्थिति' घटी हुई।

छादक (भूभा) २७।२४ तथा छाद्य (चं.वि.) १०।४९ के अन्तर १६।३५ के आधे ८।१७ में शर ५।३५ जोड़कर योगफल १३।५२ को १० से गुणाकर गुणनफल १३८।४० को पुनः खग्रास २।४२ से गुणाकर गुणनफल ३७४।२४ के वर्गमूल १९।२१ में इसी का षष्ठांश २।४८ घटाकर शेष १६।७ के पलात्मक मान ९६७ में चन्द्रविम्ब १०।४९ के एक राशिगत मान ६४९ से भाग देने पर लब्धि १।२९ 'मर्द' घटी हुई।

संस्कारविशेषात् स्पर्शमोक्षस्थित्योः साधनम्—

युग्माहतैर्व्यगुभुजांशसमैः पलैः सा
द्विष्ठा स्थितिर्विरहिता सहिताऽर्कषड्भात्।
ऊने व्यगावितरथाऽभ्यधिके स्थिती स्तः
स्पर्शान्तिमे क्रमगते च तथैव मर्दे ॥ ६

मल्लारि:—अथ स्पर्शमोक्षस्थितिसाधनमाह। युग्माहता द्विगुणिता ये व्यगोर्भुजांशास्तन्मितैः पलैः सा द्विष्ठा स्थितिर्विरहिता सहिता सती स्पर्शमोक्षयोः स्थितिः स्यात्। इदं कदा तदाह। अर्कषड्भाद्द्वादशराशिभ्यः षड्राशिभ्यश्च व्यगौ ऊने सति। अधिके सति इतरथा विपरीतम्। यत्र विरहिता सा मोक्षस्थितिः। मर्देऽपि तथैव कार्ये।

अत्रोपपत्तिः—अत्र त्वसकृत्प्रकारेण स्थितिखण्डे साध्ये। ते यथा। स्थितिखण्डेन गतिर्गुण्या षष्ट्या भाज्या फलं स्पर्शार्थं ग्रहेषु हीनं मोक्षार्थं युक्तं तेभ्यः पुनः शरादिकं विधाय पृथक् स्थितिखण्डे साध्ये। ततः पुनस्ताभ्यां स्थितिखण्डाभ्यां रविराहू चालयित्वा स्थिती कार्ये। एवं असकृत्समे भवतः। इदं जडकर्म दृष्ट्वा आचा-

र्येणेत्थमनुकल्पोऽङ्गीकृतः । द्विगुणितव्यगुभुजभागतुल्यानि पलानि मध्यस्पर्शस्थित्यन्तराले मध्यमोक्षास्थित्यन्तराले च स्वल्पान्तरत्वात् तुल्यान्येव दृष्टानि अतो द्विगुणितव्यगुभुजभागतुल्यैः पलैः सा स्थितिर्द्विष्ठा युतोना मोक्षस्पर्शस्थितिखण्डे भवत इत्युपपन्नम् । युतोनितस्योपपत्तिर्यथा षड्भार्कभोने व्यगौ सति स्पर्शकालार्थमृणंचालनं दत्वा मध्यकालीनान्न्यूने सति भुजवृद्धिरतः शरवृद्धिः । शरवृद्धौ स्थितेरल्पत्वम् । अतो विरहिते सति मोक्षार्थं धनचालने दत्ते व्यगोराधिक्यं तत्र भुजशराल्पत्वात् स्थितेराधिक्यम् । अतः सहितेति । अर्कषड्भादधिके व्यगौ अग्रे भुजवृद्धिः पूर्वं भुजह्रासः । अतो विपरीतमिति । एकक्षेत्रमूलत्वात् स्थित्यर्धमदार्धे अपि कार्ये इत्युपपन्नम् ॥ ६ ॥

चन्द्रिका—राहु रहित सूर्य यदि १२ राशि या ६ राशि से अल्प हो तो उसके (राहु रहित सूर्य के) भुजांश को २ से गुणा कर द्विगुणित अंश (यहाँ पल नहीं लेना है।) तुल्य पल को स्थिति घटी में एक स्थान पर घटाने से स्पर्श स्थिति तथा दूसरे स्थान में जोड़ने से मोक्ष स्थिति होती है। यदि राहु रहित सूर्य १२ राशियों से अधिक हो तो विपरीत संस्कार अर्थात् द्विगुणित भुजांश तुल्य पल को स्थिति घटी में जोड़ने से स्पर्श स्थिति एव घटाने से मोक्ष स्थिति होती है। इसी मर्द घटी में संस्कार करने से सम्मीलन एवं उन्मीलन मर्द होता है ॥ ६ ॥

उदाहरण—सूर्य ७।१३।११।५४ राहु ७।१६।४५।१९ सूर्य से राहु को रहित करने से शेष ११।२६।२६।३५ हुआ यह १२ राशि से अल्प है अतः इसके भुज ०।३।३३।२५ को २ से गुणा कर गुणनफल ७।६।५० में से केवल द्विगुणित अंश ७ तुल्य पल स्थिति घटी ४।२७ में घटाया तो ४।२० स्पर्श स्थिति हुई एवं ४।२७ में ७ जोड़ा तो ४।३४ मोक्षस्थिति हुई।

इसी प्रकार मर्द घटी १।२९ में ७ पल घटाने से १।२२ सम्मीलन मर्द तथा ७ जोड़ने से १।३६ उन्मीलन मर्द हुआ ॥ ६ ॥

स्पर्शादिकालज्ञानम्—

तिथि विरतिरयं ग्रहस्य मध्यः
स च रहितः सहितो निज स्थितिभ्याम् ।
ग्रहणमुख विरामयोस्तु काला—
विति पिहितापिहिते स्वमर्दकाभ्याम् ॥ ७

मल्लारि :—अथ स्पर्शकालादिसाधनं कथयति । तिथेर्गणितागता या विरतिरन्तोऽयं ग्रहस्य ग्रहणस्य मध्यः । स मध्यकालः । निजे ये स्थिती ताभ्यां विरहितः सहितः सन् ग्रहणमुखं स्पर्शो विरामो मोक्षः । तयोः कालौ भवत इत्यनेनैव प्रकारेण स्वमर्दकाभ्यां पिहितापिहिते सम्मीलनोन्मीलने भवतः । एतदुक्तं भवति । तिथ्यन्तकालो ग्रहस्य मध्यः । स चतुर्षु स्थानेषु स्थाप्यः । स्पर्शस्थित्या न्यूनः स्पर्शकालः स्यात् । अन्यत्र मोक्षस्थित्या युक्तो मोक्षकालः स्यात् । तथा प्रथममर्देनोनो मध्यः सम्मीलनकालो भवति द्वितीयमर्देनान्यत्र युक्तो मध्य उन्मीलनकालः । ७

अत्रोपपत्तिः—मध्यकालात् पूर्वं स्थित्यर्धकालेन स्पर्शो भवत्येवातो मध्यकाले स्पर्शस्थितिर्न्यूना कृता । मोक्षकालस्तु मध्यादग्रतो मोक्षस्थित्यर्धेन भवत्यतो मोक्षस्थितियुक्तो मध्यो मोक्षो भवतीत्युपपन्नम् । तथैव मध्यान्मर्दार्धतुल्यकालाभ्यां सम्मीलनोन्मीलने भवत एव ॥ ७

चन्द्रिका–तिथ्यन्त काल ग्रहण का मध्यकाल होता है । उसमें (तिथ्यन्त काल में) स्थिति घटी घटाने से स्पर्श काल तथा मोक्षस्थिति जोड़ने से ग्रहण का मोक्षकाल होता है । एवमेव तिथ्यन्तकाल में सम्मीलन मर्द घटाने से सम्मीलन काल तथा उन्मीलन मर्द जोड़ने से उन्मीलन काल होता है ॥ ७

उदाहरण :—स्पर्श स्थिति ४।२० मोक्षस्थिति ४।३४ तिथ्यन्तकाल ३५।५१ इसमें स्पर्श स्थिति ४।२० घटाने से ३१।३१ स्पर्श काल हुआ । मोक्षस्थिति ४।३४ को तिथ्यन्तकाल ३५।५१ में जोड़ने से ४०।२५ मोक्ष काल हुआ ।

सम्मीलन मर्द १।१० को तिथ्यन्तकाल ३५।५१ में घटाने से शेष ३४।४१ सम्मीलन काल एवं ३५।५१ में १।२४ उन्मीलन मर्द जोड़ने से ३७।१५ उन्मीलन काल हुआ ।

इष्टग्रासानयनम्—

पिहितहतेष्टं स्थितिविहृतं तत् ।
सचरणभूयुग् ग्रसनमभीष्टम् ॥ ८

मल्लारि : अथेष्टकाले ग्रासमानयति । पिहितेन ग्रासेन हतं गुणितं यदिष्टघटिकाद्यं स्थित्या विहृतं कार्यम् । चेत् स्पर्शकालकमिष्ट तदा स्पर्शस्थित्यां भाज्यम् ।

मोक्षेष्टं चेत् तदा मोक्षस्थित्या भाज्यमिति । तत् फलं द्विष्ठं सचरणभुवा सपादैकेन युगभीष्टं ग्रसनमंगुलाद्यं स्यादिति व्याख्या ॥ ८

अत्रोपपत्ति : अत्रेष्टकर्णं प्रसाध्य तदूनमानैक्यखण्डं कृत्वा यच्छेषं तदिष्टकाले छन्नं स्यात् । इष्टकर्णानयने प्रयासोऽस्ति । अतो लाघवार्थमनुपातः कल्प्यः । यदि स्थितिघटीभिर्यथागतो ग्रासस्तदेष्टघटीभिः किमिति अतः पिहितहतेष्टं स्थितिविहृतमिति । अत्रानुपातस्यासम्भवः । वृत्तक्षेत्रपरिध्याश्रितत्वादप्राप्तावपि प्राप्तिः कृता । अतो महदन्तरं स्यात् । तत्रानुकल्पेनेत्थमङ्गीकृतम् । सचरणभूयुक् सूक्ष्मासन्नं भवति ॥ ८

चन्द्रिका :—ग्रहणकाल में किसी समय का ग्रासमान अभीष्ट हो तो इष्टकाल को ग्रासमान से गुणाकर गुणनफल में स्थिति घटी से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो उसे १।१५ में जोड़ने से अभीष्ट गासमान होता है ॥ ८

उदाहरण :- कल्पित इष्टघटी २।० (ग्रहणकालान्तर्गत) । अतः इसे ग्रासमान १३।३१ से गुणाकर गुणनफल ३०।३२ को एक [illegible] कर स्थिति घटी ४।२० के एक राशिगत मान २६० से [illegible] देने पर लब्धि ९।२१ को १।१५ में जोड़ने से १०।३६ अङ्गु[illegible] [illegible] ॥

वलनसाधनम्—

त्रिभयुतोनरविः स्वविधुग्रहे-
ऽयनलवाढ्य इतश्चरवद्दलैः ।
नगशरेन्दुमितैर्वलनं भवेत् ।
स्वरविदिक् [illegible] मध्यनता[illegible]

मल्लारि :—अथ म[illegible]स्पशमोक्षादिगूढमाना[illegible] [illegible] साध[illegible] षुस्तावदायनं साधयति । स्वविधुग्रहे [illegible]तोन[illegible] [illegible] कार्यं चन्द्रग्रहणे रवि[illegible] त्रिभोन[illegible] [illegible] । ततः [illegible] [illegible] [illegible]र्यः । इतः सा[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]यनव[illegible] [illegible]

[illegible] ॥ [illegible]

तदाक्षवलनमन्वर्थं नाम। यतो नाडिकासममण्डलयोरन्तरमक्षांशा एव। तथैं नाडीमण्डलप्राच्याः क्रान्तिमण्डलप्राची यावताऽन्तरेण वलति तदायनं वलनम्। अयनसम्बन्धित्वादायनम्। तदादौ साध्यते। गोलसन्धौ तु यद्यपि नाडिकामण्डल-क्रान्तिमण्डलयोर्योगोऽस्ति तथाऽपि प्राच्यो ऋजुमार्गेण परममन्तरम्। अयनसन्धौ तु क्रान्तिवृत्तनाडीवृत्तयोर्यद्यपि परममन्तरं तथाऽपि ऋजुमार्गात् प्राच्यन्तराभावाऽतो-ऽयनसन्धौ वलनाभावः। गोलसन्धौ परमम्। गोलसन्धौ ग्रहस्य दोर्ज्याभावात्तु कोटिज्या परमा। अयनसन्धौ दोर्ज्यापरमत्वात् कोटिज्याऽभावः। यत्र कोटिज्या-परमत्वं तत्रायनवलनस्य परमत्वं यत्र कोटिज्याऽभावस्तत्रायनवलनाभावोऽतः कोटिज्यातो वलनं साध्यम्। तत्र ग्रहः सत्रिभः। तस्य भुजज्या कोटिज्यैव प्रत्यक्षं भवति। एवं सूर्यग्रहणे सूर्यस्त्रिभयुक्त इति। एवं चन्द्रग्रहणे चन्द्रस्यापि त्रिभं योज्यम्। तत्र सूर्यचन्द्रयोःषड्भान्तरत्वाद्भुजतुल्यत्वम्। अतो रवावेव त्रिभं देयम्। परमत्र त्रिभं हीनं कार्यं गोलान्यत्वसद्भावात्। ततः सायनः कार्य एवायनसम्ब-न्धित्वाद्यतस्त्रिभयुतोनसायनरविदोर्ज्यातो वलनसाधनेऽनुपातो यथा। यदि त्रिज्या-१२० तुल्यया दोर्ज्यया परमक्रान्तिज्यातुल्यमायनं वलनं ४८।४५ तदेष्टया किमिति। अन्योऽनुपातः। यदि द्युज्यावृत्ते इदं त्रिज्यावृते किमेवं जाताऽऽयनवलनज्या। अस्या धनुरायनं वलनं स्यात्। तत्रेदं गुरुकर्म दृष्ट्वा आचार्येण राशित्रयमध्ये प्रतिराशिवलनानि प्रसाध्य तान्यधोऽधो विशोध्य खण्डानि कृतानि ७।५।१। एवं तानि वलनानि। अन्यत्र सम्पूर्णज्यावद्वलनप्रदानार्थं द्विगुणानि कृतानि सन्ति। एवमेभिः खण्डैश्च वद्वलनं साध्यम्। यतश्च खण्डान्यपि राशित्रयमध्ये त्रीण्येव सन्ति। अतो भुजसंख्याचरार्धयोग इत्यादि सममेव ॥ ९

चन्द्रिका : सूर्यग्रहण में सूर्य की राशि में ३ राशि जोड़कर तथा चन्द्रग्रहण में सूर्य की राशि से ३ राशि घटा कर शेष में अयनांश जोड़कर [illegible] (र. च. स्प. अ श्लोक ९) की तरह ७।५।१ खण्डों से [illegible] वलन होता है। [illegible] ([illegible]) या [illegible]) सूर्य [illegible]

[illegible] अयनां[illegible]

कल्पना कर भोग्य खण्ड ७ से भुज के अंशादि २२।३५।३७ के गुणनफल १५८।९ में ३० का भाग देने से लब्धि ५।१६ आयन वलन हुई। त्रिभोन सूर्य उत्तर गोल का है अतः आयनवलन की भी उत्तर दिशा होगी।

आक्षवलनसाधनम्—

विषयलब्धगृहादित उक्तवद्
वलनमक्षहृतं पलभाहतम्।
उदगपागिह पूर्वपरे क्रमाद्
रसहृतोभय संस्कृतिरङ्घ्रयः॥ १०

मल्लारि :—एवमायनं वलनं प्रसाध्येदानीमाक्षजं वलनं साधयति मध्यनताच्च यत्। मध्यनतात् मध्यकालद्युदलान्तरनतं ततः विषयैः पञ्चभिर्लब्धं यद्ग्रहादि राश्यादि तत् उक्तवत् नगशरेन्दुमितैरेव खण्डैर्वलनं साध्यम्। तत् पलभया हतं गुणितमक्षैः पञ्चभिर्हृतं भक्तं कार्यं तदाक्षं वलनं भवति। तत् पूर्वपरे नते क्रमादुदगपाक् स्यात्। पूर्वनते उत्तरं पश्चिमनते दक्षिणम्। एवमुभयोर्वलनयोर्या संस्कृतिः सा रसैः षड्भिर्हृता भक्ता सती अंघ्रयो वलनदिक्चरणाः स्युरित्यर्थः। १०

अत्रोपपत्ति :—क्षितिजे यद्यपि नाडीमण्डलसममण्डलयोः सम्पातस्तथाऽपि प्राच्योर्ऋजुमार्गेण तत्र परमनन्तरमक्षज्यातुल्यम्। खमध्ये नाडिकामण्डलसममण्डलयोर्यद्यपि परममन्तरमस्ति तथाऽपि ऋजुमार्गारम्भात् प्राच्योरन्तराभावः उदये परमक्षज्यातुल्यमांक्षं वलनं तत्र नतमपि परमम्। खमध्ये आक्षवलनाभावः। तत्र नतस्याभावः। अतो नताद्वलनं साध्यम्। अत्रानुपातो यथा। नतघटीनां पञ्चमांशो राशयः स्युः। अतः पञ्चदशघटीनां मध्ये राशित्रय एव। अतो नतस्य पञ्चमांशस्य दोर्ज्यातो वलनं साध्यम्। तद्यथा। यदि त्रिज्या-१२० तुल्यया नतज्या अक्षज्यातुल्यं परमं वलनं तदेष्टनतदोर्ज्यया किमिति। ततो द्युज्यावृत्ते इदं तदा त्रिज्यावृत्ते किमिति। अत्र लाघवार्थं पञ्चमितां पलभां प्रकल्प्य सार्धद्वाविंशति-२२।३० मितान् अक्षांशान् कृत्वा पञ्चसु-पञ्चसु घटीषु त्रीणि वलनानि पृथक् प्रसाध्य तान्यधोऽधो विशोध्य ततोऽर्धानि कृत्वा वलनखण्डानि क्रियन्ते। तानि तु पूर्वायनतुल्यान्येव भवन्ति। अतस्तैरेव वलनमिति। परमेतद्वलनं पञ्चपलभाप्रमाणेन जातम्। स्वदेशीयकरणार्थमनुपातः। यदि पञ्चपलभाप्रमाणेनेदं तदेष्टाक्षभया किमिति। अतोऽक्षहृतं पलभाहतमिति। पूर्वापरे नते दक्षिणोत्तरमिति। अस्योपपत्तिर्गोलोपरि प्रत्यक्षतो दृश्यते। अथ रसहृतेत्यस्योपपत्तिः। अत्रेद वलनं भागाद्यं वृत्तपरिधौ देयम्। अथ एतमङ्गुलिद्वमध्येऽपी चरणाः कृताः ततोऽनुपातः यदि त्रांशै-

द्वात्रिंशत् सर्वचरणा ३२ लभ्यन्ते तदेष्टवलनांशैः किमिति। गुणहरयोर्गुणनापवर्तितयोर्लब्धा हरस्थाने ११।१५। अत्र वलनार्धं कृतमस्त्यतो हरार्धं कृतम्। ५।३७॥ (१०)

चन्द्रिका :—(पूर्वश्लोक से 'अथ मध्यनताच्च यत्' का भाव यहाँ ग्रहण करेंगे) अर्थात् मध्यनतकाल में ५ से भाग देकर लब्धि राश्यादि को सूर्यमान कर पूर्वोक्त विधि (७।५।१ खण्डों) से चर की तरह साधित फल को पलभा से गुणाकर गुणनफल में ५ का भाग देने से जो लब्धि प्राप्त हो वह आक्षवलन होती है। पूर्वनत में आक्षवलन की दिशा उत्तर परनत मे दक्षिण होती है। दोनों (आयन-आक्ष) वलनों की दिशा यदि एक ही हो तो दोनों का योग करने से तथा भिन्न दिशा हो तो अन्तर करने से स्फुटवलन होता है। स्फुटवलन में ६ का भाग देने से लब्धि स्फुटवलनांघ्रि होता है। १०

उदाहरण :—स्प. सू. ७।१३।११।५३ अयनांश २४।१२।३० दिनार्ध १३।१३, रात्र्यर्ध १६।४७, पर्वान्तकाल ३५।५१, पर्वान्तकाल में दिनार्ध १३।१३ घटाने से शेष २२।३८ पूर्वनत हुआ। दिनमान २६।२६ में रात्र्यर्ध १६।४७ जोड़ने से ४३।१३ रात्रिमध्यकाल हुआ। मध्यरात्रि से पूर्व ही ग्रहणमध्यकाल होने से पूर्वकपाल हुआ। श्लोकोक्त नियमानुसार पूर्वनत २२।३८ में ५ का भाग देने से राश्यादि ४।१९।३६।० हुआ। इसे सायन सूर्य मानकर इसका भुज १।१०।२४।० बनाया। राशि स्थान में १ है अतः प्रथम खण्ड ७ गताङ्क हुआ। ऐष्याङ्क ५ से शेष अंशादि भुज १०।२४।० को गुणाकर गुणनफल ५२ में ३० का भाग देकर लब्धि १।१४ को गताङ्क ७ में जोड़ने से ८।४४ हुआ। इसे पलभा ५।४५ से गुणा कर गुणनफल ५०।१३ में ५ का भाग देने से लब्धि १०।२ आक्षवलन हुई। पूर्वनत होने से आक्षवलन की भी उत्तर दिशा हुई। एक ही दिशा होने से दोनों वलनों का योग किया। आयनवलन+आक्षवलन=५।१६+१०।२=१५।१८ =स्फुटवलन। स्फुटवलन १५।२८ को ६ से भाग देने पर लब्धि ३।३३ उत्तरवलनाङ्घ्रि हुई॥ १०

ग्रासदिगङ्घ्रिसाधनपूर्वकमध्यमग्रहणादिस्थानसाधनम्—

मानैक्यार्धहृतात् खषड्घ्नपिहितान्मूलं तदाशांघ्रयः
खच्छन्नं सदलैकयुक् च गदिताः खच्छन्नजाशांघ्रयः ।
सव्यासव्यमपागुदग्वलनजाशांघ्रीन् प्रदद्याच्छरा-
शायाः स्याद्ग्रहमध्यमन्यदिशि खग्रासोऽथवा शेषकम् ॥ ११

मल्लारि :—छन्नं दिक्चरणसाधनमाह । खषड्भिः षष्ट्या हन्यते तत् तथा एवम्भूतं पिहितं छन्नं मान्यैक्यार्धेन मानैक्यखण्डेन हृतं भक्तं सत् यल्लब्धं तस्मात् यन्मूलं तत् तस्य छन्नस्य आशांघ्रयो दिक्चरणाः स्युः । खच्छन्नं सदलैकेन सार्धैकेन युक् खच्छन्ना जायन्ते ते तथा । एवम्भूता आशांघ्रयो दिक्चरणा गदिता उक्ताः स्युः । ग्राह्यविम्बार्धेन वृत्तं दिगङ्कं समदग्त ३२-कोष्ठाङ्कितं च कृत्वा तत्र शराशायाः शरस्य दिशमारभ्य अपाक् उदक् वलनजाशांघ्रीन् सव्यापसव्यं दद्यात् । चेद्दक्षिणा वलनांघ्रयस्तदा शरदिशः सव्यक्रमेण देयाः चेदुत्तरास्तदाऽपसव्यं व्युत्क्रमेण तत्र मध्यं मध्यग्रहणं स्यात् । खग्रसनं खग्रासोऽन्यदिशि मध्यग्रहणस्पर्षिन्यामेव दिशि भवेत् । खग्रासाभावे विम्बस्य शेषकं मध्यस्पर्षिन्यामेव दिशि भवेत् ।

अत्रोपपत्ति :—यदि मानैक्यखण्डतुल्यग्रासेन दिगंघ्रि-८ वर्गः स्वल्पान्तरः षष्टितुल्यो लभ्यते तदेष्टेन किमिति तन्मूलं ग्रासाद्दिक्चरणा इत्युपपन्नम् । एवं खच्छन्नांघ्रयोऽपि साध्यास्तत्राचार्येण सार्धैकयुगित्युपलब्ध्या स्वल्पान्तराः साधिताः शेषोपपत्तिः स्पष्टा ॥ ११

चन्द्रिका—ग्रासमान को ६० से गुणा कर मानैक्यदल (भूभावि. + च. वि $\times \frac{1}{2}$) से भाग देकर लब्धि का वर्गमूल लेने से ग्रासाङ्घ्रि होता है। तथा खग्रास को ६० से गुणाकर बिम्बान्तरार्ध (भूभा—वि. च. वि $\times \frac{1}{2}$) से भाग देने से जो लब्धि हो उसका वर्गमूल खग्रासाङ्घ्रि होता है।

ग्राह्य विम्बार्ध द्वारा वृत्त बनाकर उसमें यदि दक्षिण वलन हो तो शर की दक्षिण दिशा से सव्य क्रम से (दाहिनी तरफ से) वलनाङ्घ्रितुल्य अंकन करने से तथा यदि वलन की उत्तर दिशा हो तो शर के उत्तर बिन्दु से अपसव्य अर्थात् बाँये तरफ से वलनांघ्रि तुल्य अंकन करने से ग्रहण का मध्यविन्दु ज्ञात होता है। ग्रहण मध्य बिन्दु से विपरीत दिशा में खग्रास होता है या विम्ब का शेषांश होता है॥ ११

उदाहरण—ग्रासमान १३।३१ खग्रास २।४२ मानैक्यार्ध ५९।६ ग्रासमान १३।३१ को ६० से गुणा कर गुणनफल ८११ को मानैक्यार्ध १९।६ से एक जातीय करके भाग देने से लब्ध ४२।२७ का वर्गमूल ६।३१ ग्रासाङ्घ्रि हुआ इसी प्रकार भूभा विम्ब और चन्द्रविम्ब का अन्तर २७।२४ – १०।४९ = १६।३५ इसका आधा ८।१७ बिम्बान्तरार्घ हुआ। खग्रास २।४२ को ६० से गुणा कर गुणनफल १६२ में विम्बान्तरार्घ ८।१७ का एकजातीय करके भाग देने से लब्धि १९।३३ का वर्गमूल ४।२५ खग्रासाङ्घ्रि हुआ।११

स्पर्शमोक्षादिदिग्ज्ञानम्—

मध्याच्छन्नाशांघ्रिभिः प्राक् च पश्चा-
दिन्दोर्व्यस्तं तूष्णगोः स्पर्शमोक्षौ।
खग्रस्तात् खच्छन्नपादैः परे प्राग्-
दत्तैरिन्दोर्मीलनोन्मीलने स्तः॥ १२

मल्लारि :—अथ स्पर्शमोक्षदिग्ज्ञानमाह। मध्यग्रहणात् खच्छन्नस्य खग्रासस्य आशांघ्रिभिर्दिक्चरणैः प्राक्पश्चाद्दत्तैरिन्दोश्चन्द्रस्य स्पर्शमोक्षौ स्तः। एतदुक्तं भवति। मध्यग्रहणचिन्हात् छन्नांघ्रयः पूर्वदिशि यथागता गणयित्वा देयाः। तत्र स्पर्शश्चन्द्रस्य भवेत्। तथैव मध्यात् छन्नांघ्रयः पश्चिमदिशि देयाः। तत्र चन्द्रस्य मोक्षः। उष्णगोः सूर्यस्य व्यस्तं विपरीतम् तद्यथा। मध्यात् छन्नांघ्रयो हि पश्चिमतो देयास्तत्र स्पर्शः पूर्वदिशि देयास्तत्र मोक्ष इत्यर्थः खग्रस्तात् खग्रासचिन्हात् खच्छन्नांघ्रिभिः पश्चिमायां दत्तैरुन्मीलनं स्यादिति सूर्यस्य विपरीत पूर्वदिशि संमीलनम्। पश्चिमदिश्युन्मीलनं स्यात्।

अत्रोपपत्तिः चन्द्रग्रहणे तु ग्रासस्य चन्द्रस्य पूर्वगेतर्बाहुल्यात्। अग्रे सरण्याः पूर्वदिशि ग्राहकत्वेन वर्त्तमानायां भूछायायाःविम्बान्तश्चन्द्रमाःप्रविशति। अतश्चन्द्रविम्बस्य पूर्वदिशि प्रथमंग्राहकविम्बे लग्नत्वात् तत्र स्पर्शः। एवं ग्रहणं कृत्वा पूर्वगतिबाहुल्यात् चन्द्रमा भूछायां पश्चिमतस्त्यक्त्वा गतः। अतो निःसरणे ग्राह्यविम्बस्य पश्चिमदिशि संयोगोऽतस्तत्र मोक्षः। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ।

पूर्वाभिमुखो गच्छन् भूछायान्तर्यतः शशी विशति।
तेन प्राक्प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षाऽस्य निस्सरतः॥

सूर्यग्रहणे हि सूर्यस्य ग्राह्यस्य पूर्वगतेपेरक्षया चन्द्रस्य ग्राहकस्य पूर्वगतिबाहुल्यात् ग्राहकेण पश्चिमस्थेन पूर्वदिग्वर्त्तमानस्य ग्राह्यस्य स्पर्शः कृतोऽतो

ग्राह्यविम्बस्य पश्चिमदिशि स्पर्शः। निःसरणवेलायां ग्राह्यविम्बस्य पूर्वदिशि ग्राहकविम्बं लग्नमतोऽत्र मोक्षः अनयैव युक्त्या सम्मीलनोन्मीलनदिशोरुपपत्तिर्ज्ञातव्या ॥ १२

देवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य समाप्त इन्दुग्रहणाधिकारः ॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञविरचितग्रहलाघवस्य चन्द्रग्रहणाधिकारः पञ्चमः ॥ ५

चन्द्रिका—चन्द्रग्रहण में मध्यविन्दु से पूर्वदिशा में ग्रासाङ्घ्रि तुल्य संस्कार करने से स्पर्श तथा पश्चिम दिशा में ग्रासाङ्घ्रि तुल्य संस्कार करने से मोक्ष होता है। परन्तु सूर्यग्रहण में विपरीत संस्कार अर्थात् पूर्वदिशा में ग्रासाङ्घ्रि तुल्य अन्तर पर मोक्ष तथा ग्रासाङ्घ्रि तुल्य अन्तर पर पश्चिम दिशा में स्पर्श होता है।

खग्रास बिन्दु से खग्रासाँघ्रि तुल्यान्तर पर पश्चिम दिशा में चन्द्रग्रहण में मीलन (सम्मीलन) तथा पूर्वदिशा में खग्रासाङ्घ्रितुल्यान्तर पर उन्मीलन होता है ॥ १२

श्री गणेशदैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के चन्द्रग्रहणाधिकार की
चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण ॥ ५



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ग्रहलाघवं करणम्

सूर्यग्रहणाधिकारः—६

लग्नं दर्शान्ते त्रिभोनं पृथक्स्थं
तत् क्रान्त्यंशैः संस्कृतोऽक्षो नतांशाः ।
तद्द्विघ्नांशो वर्गितश्चेद् द्विकोर्ध्वो
ऽधोऽसौ द्व्यूनः खण्डितस्तद्युतः सः ॥ १
सार्को हारः स्यात् त्रिभोनोदयार्क-
विश्लेषांशाशांशहीनघ्नशक्राः ।
हाराप्ताः स्याल्लम्बनं नाडिकाद्यं
तिथ्यां स्वर्णं वित्रिभेऽर्काधिकोने ॥ २

लम्बनसाधनम्—

मल्लारिः—अथ सूर्यग्रहणाधिकारो व्याख्यायते । तत्रादौ लम्बनं वृत्तद्वयेन साधयति । अमान्ते लग्नं कृत्वा तत् त्रिभेण राशित्रयेण ऊनं सत् पृथक् अन्यत्र स्थाप्यम् । तत् क्रान्त्यंशैः संस्कृतोऽक्षोऽक्षांशाः नतांशाः स्युः । संस्कारस्तु एक दिशोर्योगो भिन्नदिशोरन्तरमिति प्रसिद्धः तेषां नतांशानां योद्विघ्नांशो द्वाविंशति-भागः संवर्गितः कृतवर्गः सन्चेत् द्विकात् द्वयात् ऊर्ध्वोधिको भवति तदाऽसौ अधोऽन्य स्थाने स्थाप्यः । ततोऽत्र द्व्यूनो द्विहीनः सन् खण्डितोऽर्धित यत् फलं तेन स पूर्वस्थापितो युतः । ततः सार्को द्वादशयुतः सन् हारः स्यात् । ततस्त्रिभोनोदयो राशित्रयोनलग्नम् । अर्कः सूर्यः । अनयोर्यो विश्लेषोऽन्तरं यथा राशित्रयाल्प तथा-कार्यं तस्य येंऽशाऽ तेषां य आशांशो दशमांशः तेन हीनाः संगुणिताश्च ये शक्रा-श्चतुर्दश ते हाराप्ताः सन्तो नाडिकाद्यं लम्बनं स्यात् । तत् तिथ्याममाघटीषु स्वर्णं कार्यम् । कदेत्याह—वित्रिभे त्रिभोनलग्नेऽर्काधिके धनं ऊने ऋणमिति ॥

अत्रोपपत्तिः—ननु किं नाम लम्बनं उच्यते । लम्बनमित्यन्वर्थं नाम । यतो दृक्सूत्राच्चन्द्रो यावतान्तरेण लम्बितस्तल्लम्बनम् । अहो लम्बनं चन्द्रग्रहणे कथं

नास्ति सूर्यग्रहणे कथमित्युच्यते । चन्द्रग्रहणे तु चन्द्रो ग्राह्यः स्वकक्षायां भ्रमति । भूच्छायापि ग्राहकरूपा चन्द्रकक्षायामेव साधितास्ति । अतो ग्राह्यग्राहकसमकक्षत्वात् लम्बननत्योरभावः । सूर्यग्रहणे तु ग्राह्यग्राहकयोः सूर्यचन्द्रयोर्भिन्नकक्षात्वाल्लम्बन-नती उत्पन्ने । अत्र भङ्गिं विरचय्य सूर्यस्य लम्बननत्युपपत्ति शिष्यान् प्रति दर्शयेत् । तत्र किञ्चिदुच्यते । प्रथमं भूवृत्तं लघु गति तिथ्यंश तुल्यांशं कार्यं तदुपरि चन्द्र-कक्षावृत्तं कार्यम् । तस्मादुपरि सूर्यकक्षावृत्तम् । अत्र द्वयोर्वृत्तयो राशयो द्वादशा-ङ्कचः । तत्र यथा स्थाने चन्द्रकक्षायां चन्द्रो देयः । सूर्यकक्षायां सूर्यलग्ने अपि यथा स्थाने देये एवं भूगर्भान्नीयमानं चन्द्रस्योपरि यत् सूत्रं तत् गर्भसूत्रमित्युच्यत । एवं भूपृष्ठान्नीयमानं सूत्रं दृक्सूत्रमुच्यते । तत् तु सूर्योपरि नीयमानं चन्द्रं सान्तरं त्यक्त्वायाति । अतश्चन्द्रकक्षायां दृक्सूत्राच्चन्द्रो यावतान्तरेण लम्बितस्तल्लम्बनम्—

उक्तञ्च - 'दृकसूत्राल्लम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम्[1] ।।"

अतो हि भूगर्भस्थलोकानां सूर्यग्रहणेऽपि लम्बनाभावः । दृग्गर्भसूत्रयोरेकी-भूतत्वात् । एवमत्र लम्बने केवलं भिन्नकक्षात्वमेव कारणं नो वाच्यम् । भूगर्भे लम्बनाभावदर्शनात् अतो भिम्नकक्षात्वं द्रष्टृणां भूपृष्ठस्थितित्वं चेति द्वे लम्बन-कारणे । लम्बनं तु पूर्वापरं यतो गर्भसूत्रीय चन्द्रे दृक्सूत्रीकरणं पूर्वगत्यैव एवं ग्रहे पूर्वापरान्तरोत्पत्तौ दक्षिणोत्तरान्तरमप्युपपन्नम् तन्नति संज्ञम् । अत्र लम्बनसाधनो-पायो यथा— क्षितिजे दृग्गर्भसूत्रयोः परममन्तरं चन्द्रगतितिथ्यंशतुल्यकलानां सूर्य-गतितिथ्यंश कलानामन्तरतुल्यम् ४८ । ४५ । खमध्ये तु दृग्गर्भसूत्रे एकीभूते अतो लम्बनाभावः । उक्तञ्च —

दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्* ।।

क्षितिजे रवितुल्यं लग्नम् । तस्मिन् त्रिभे हीने कृते तत् सूर्यान्तरं त्रिभमेवातोऽ-स्माल्लम्बनं संसाध्यम् । यतः खमध्ये त्रिभोनलग्नम् इति तुल्यमतस्तदन्तराभावे लम्बनाभावश्च । अत्रानुपातः—यदि त्रिज्यातुल्यया सूर्यत्रिभोनलग्नान्तरदोर्ज्ययेदं परमं लम्बनं तदेष्टदोर्ज्यया किमिति । अत्र लम्बनकलानां घटीकरणार्थमनुपातः— यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टि घटिकास्दा लम्बनकलाभिः किमिति जातम् घटिकाद्यं परमं लम्बनम् । अनेन दोर्ज्या गुण्या त्रिज्ययाभाज्येष्टलम्बनं स्यादित्यत्राचार्येण भागेभ्य एव साधितम् । तद्यथा—"त्रिभोनोदयार्क विश्लेषांशाशांश हीनघ्नशक्रा" इति । परमिदं लम्बनं मध्यमम् । यतः खमध्यक्षितिजयोरन्तरं सर्वत्र त्रिभमेव लक्षितम् । तन्न । यतो याम्योत्तरक्षितिजयारन्तरं सर्वत्र त्रिभं नास्ति । अतः

१. सि. शि. गो. ग्र. वा. १६

*सि. शि. गो. ग्र. वा. १७

खमध्य एवेदं लम्बनमिष्टयाम्योत्तरवृत्तीय करणार्थमनुपातःखमध्ये तु त्रिभोनलग्नस्य छायाकर्णे इदं लम्बनं तदेष्ट छायाकर्णे किमिति। अत्र व्यस्त त्रैराशिकम्। एवमत्रेष्ट त्रिभोनलग्नार्कान्तरकोज्यायाः परमलम्बनमिदं घटिकाद्यमसकृत् प्रकारत्यागाद् घटीचतुष्टयादूनं गृहीतम् ३।४५। अयं गुणः। द्वादश च १२ गुणः। त्रिज्या १२० हरः। अत्र त्रिज्यातुल्येष्टदोर्ज्या १२० गुणघातगुणा त्रिज्याभक्ता। गुणाघातो जाताः ४५। एतावती त्रिज्या कृता। इयं त्रिभोनोदर्कविश्लेषांशाशांश हीनघ्नशक्र-तुल्या भवति। अतः सा दोर्ज्या छायाकर्णभक्ता स्पष्टं लम्बनं स्यात्। तदर्थं त्रिभोन-लग्नस्य नतोन्नतलवाः साध्याः। ततोऽनुपात :—

यदि उन्नतांशज्या कोटौ त्रिज्याकर्णस्तदा द्वादशकोटौ क इति एवमत्र छाया कर्णो द्वादशेभ्यो नतांश द्वाविंशत्यंशवर्गेणाधिको भवति। अतो द्वादशनतांश द्वाविं-शत्यंशवर्गयुक्ताश्छायाकर्णः स्यात्। तस्य हरसंज्ञा कृता। यतः स दोर्ज्यया हरः इदं नतांश द्वाविंशत्यंशवर्गे द्यूने भवति। अधिके सान्तरम्। तथा। द्वयधिकाद्द्वयम-पास्य यच्छेषं। तेन नतांश द्वाविंशत्यंश वर्गेण युक्तं तावद् द्वादश छायाकर्णान्तरम्। अनेन द्वादश युक्तास्त्रिभोनलग्नच्छायाकर्णौ भवति। अनेनेष्टदोर्ज्या भक्ता लम्बनं स्यादित्युपपन्नम्। एतल्लम्बनं चन्द्रगत्या गुणयित्वा षष्ठ्या लब्धं चन्द्रे देयम्। तथा रवावपि देयम्। ताभ्यां तिथिः साध्या। अतो हि तल्लम्बनं तिथ्यामेव देयमित्युक्तम्। धनर्णोपपत्तिर्यथा—

पूर्वकपाले दृक्सूत्राद्गर्भसूत्रं पूर्वस्यामधो लम्बितमतो ग्रहे पूर्वकपाले धनं देयम्। अत्र त्रिभोनलग्नमर्काल्पकमस्ति ग्रहे यद्धनं क्रियते तत्तिथौ ऋणमेव भवति भोग्यत्वात्। तथा पश्चिमकपाले दृक्सूत्रात् गर्भसूत्रं पश्चिमतो वर्ततेऽतो ग्रहे ऋणम्। त्रिभोनलग्नमक्षार्काधिकं यद् ग्रहे ऋणं तत् तिथौ धनम्। अत उक्तं स्वर्ण-वित्रिभेऽर्काधिकोन इति। एवं सूर्यग्रहे लम्बनसंस्कृतो दर्शान्तः एवं मध्यकालो भवतीयं युक्तिर्गोलोपरि सविस्तरा। १–२

चन्द्रिका :—अमान्तकालिक लग्न में ३ राशि घटाकर शेष (वित्रिभ[1] लग्न) को दो स्थानों में रखकर एक स्थान में वित्रिभ द्वारा क्रान्तिसाधन कर अक्षांश के साथ संस्कार (दोनों उत्तर या दक्षिण एक ही दिशा के हो तो योग भिन्न दिशा के अर्थात् एक उत्तर दूसरा दक्षिण दिशा का हो तो अन्तर) करने से नतांश होता है। नतांश के २२ वें भाग का वर्ग यदि २ से अल्प

१. लग्न से ३ राशि अल्प वित्रिभ लग्न होता है।

हो तो उसमें १२ जोड़ने से हार होता है। यदि वर्ग २ से अधिक हो तो उसमें २ घटाकर शेष के आधे को वर्ग में जोड़कर पुनः १२ जोड़ने से हार होता है। वित्रिभलग्न और सूर्य के अन्तर[1] को अंशादि बनाकर १० का भाग देने से प्राप्त लब्धि को १४ में घटा कर शेष को लब्धि (दशमांश) से से गुणा कर गुणनफल में हार का भाग देने से लब्धि घट्यादि लम्बन होता है। स्पष्ट सूर्य से वित्रिभ लग्न अधिक होने पर अमान्त घटी में लम्बन जोड़ने से तथा सूर्य से वित्रिभ लग्न अल्प होने पर अमान्त घटी से लम्बन घटाने पर स्पष्ट तिथ्यन्त होता है। १-२

उदाहरण—संवत् २०३३ शक १८९८ वैशाख कृष्ण अमावस्या गुरुवार। तिथ्यन्त (अमान्त) घट्यादि २५।१० पर्वान्त कालिक सूर्य ०।१५।४१।३५ पर्वान्तकालिक राहु ६।१९।२४।३७, पर्वान्तकालिकचन्द्र ०।१५।४२।१३। पर्वान्तकालिक लग्न ५।७।१५।२६, सूर्यगति ५८।१८, चन्द्रगति ६११।१७। पर्वान्त कालिक लग्न से ३ राशि अल्प करने से—

५।७।१५।२६
३
२।७।१५।२६ वित्रिभ लग्न

वित्रिभ लग्न द्वारा त्रिप्रश्नाधिकार श्लो. ११ के अनुसार क्रान्ति साधन किया—वित्रिभ २।७।१५।२६ में तात्कालिक अयनांश २३।३१।३६ जोड़ने से सायन वित्रिभ ३।०।४७।२ के भुजांश ८९।१२।५८ में १० का भाग देने से लब्धितुल्य आठवां गताङ्क २३६ तथा ऐष्याङ्क २४० दोनों के चयान्तर ४ से शेष भुजांश ९।१२।५८ को गुणाकर गुणनफल ३६।५१।५२ को १० से भाग देकर लब्धि ३।४१।११ को गतांक २३६ में जोड़कर १० का भाग देने से क्रान्ति २३।५८।७ हुई सायन वित्रिभ लग्न मेषादि ६ राशियों में होने से उत्तरा क्रान्ति हुई।

१. सूर्य और वित्रिभ का अन्तर करते समय यह ध्यान देना आवश्यक है कि दोनों का अन्तर ३ राशि से अधिक न हो।

पूर्व साधित काशी का अक्षांश २५।२६।४२ दक्षिण है। इसका क्रांति के साथ संस्कार (क्रान्ति उत्तरा है तथा अक्षांश दक्षिण है दोनों भिन्न दिशा के हैं अतः दोनों का अन्तर) करने से अ. २५।२६।४२–क्रा. २३। ५८।७ = १।२८।३५ नतांश हुआ। नतांश में २२ का भाग देने से प्राप्त लब्धि ०।४।१ का वर्ग करने से ०।१६ हुआ। यह दो से अल्प है अतः इसमें १२ जोड़ने से १२।१६ हार हुआ। १२।१६ का एकजातीय मान = ७३६

वित्रिभलग्न २।७।१५।२६ में सूर्य ०।१५।४१।३५ घटाने से १।२१।३३। ५१ के अंशादि ५१।३३।५१ में १० का भाग देने से प्राप्त लब्धि ५।९।२३ को १४ में घटाने से शेष ८।५०।३७ को दशमांश ५।९।२३ से गुणा कर गुणनफल ४५।३६।४ के एक जातीय मान २७३६ को हार के एक जातीय मान ७३६ से भाग देने पर $२७३६ \div ७३६ = \frac{२७३६}{७३६} = ३।४३$ घट्यादि लम्बन हुआ। सूर्य से वित्रिभ लग्न अधिक है अतः लम्बन धन होगा। लम्बन को पर्वान्त काल २५।१० में जोड़ने से २८।५३ स्पष्ट पर्वान्तकाल हुआ। १-२

विराह्वर्के लम्बनसंस्कारः—

त्रिकुनिघ्नविलम्बनं कलास्तत्
सहितोनस्तिथिवद्व्यगुः शरोऽतः।
अथ षड्गुणलम्बनं लवास्तै-
र्युग्वित्रिभतः पुनर्नतांशाः॥ ३

मल्लारि :—अथ लम्बनकाले व्यगोश्चालनमाह। त्रयोदश गुणितं लम्बनं कलाः स्युः। तिथिवद्व्यगुस्ताभिः कलाभिः सहितोनः। तिथौ चेल्लम्बनं धनं तदा व्यगावपि धनम्। ऋणं चेदत्रापि ऋणमिति। अतोऽमुष्माद् व्यगोः शरः पूर्ववत् साध्यः। अथशब्दोऽनन्तरवाची षड्गुणलम्बनं लवाः स्युः। तैर्लवैर्युग् वियुग् वित्रिभतो नतांशाः साध्याः। ततः क्रान्त्यक्षांशसंस्कारेण नतांशाः साध्याः। एतदुक्तं भवति षड्गुणलम्बनं भागास्ते त्रिभोनलग्ने लम्बने धने सति धनं कार्याः ऋणे लम्बने सति ऋणं कार्यास्ततः क्रान्त्यक्षांशसंस्कारेण नतांशाः साध्याः इत्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः—यदि षष्टिघटिकाभिर्विपातचन्द्रगतिकला: ७८७ एतास्तदा लम्बनकलाभिः किमिति गुणहरयोर्हरेणापवर्तितयोर्जाता गुणस्थाने त्रयोदश १३। अतस्त्रिकुनिघ्न विलम्बनमिति। अथ मध्यकालीनं त्रिभोनं लग्नं कार्यम्। तत्र लाघवार्थं लम्बनेन दर्शान्तिकालीनं त्रिभोनं लग्नमेव चालयति। तत्र घटिका षड्-गुणाभागा भवन्ति यतः षष्टिघटिकानां चक्रभागाः। अतो हि षड्गुणलम्बनं दर्शान्ति-कालीनं त्रिभोनलग्ने धनमृणं कार्यं तन्मध्यकालीनत्रिभोनलग्नं भवति। अतो नतांशाः कार्या नतिसाधनार्थमेव ॥ ३

चन्द्रिका :—लम्बन को १३ से गुणाकर कलादि गुणनफल को विरा-ह्वर्क में तिथि की तरह ही संस्कार (धनात्मक लम्बन को जोड़कर तथा ऋणात्मक लम्बन को घटा) कर उससे शर साधन करना चाहिए।

लम्बन घटी को ६ से गुणा करने से अंश होता है। धनात्मक लम्बन होने पर उस अंशादि मान को वित्रिभ में जोड़ कर तथा ऋणात्मक लम्बन होने पर वित्रिभ में घटाकर शेष वित्रिभ से क्रान्ति साधन कर अक्षांश और क्रान्त्यंश के संस्कार करने से स्पष्ट नतांश होता हैं ॥ ३

उदाहरण : लम्बन ३।४८ धनात्मक है। इसे १३ से गुणाकर (३।४८) × १३ = ४९।२४ कलादि फल हुआ। इसे राहु [illegible] (व्यगु) में धन लम्बन होने से जोड़ दिया—

व्यगु	५।२६।१६।५८
	४९।२४
	५।२७। ६।२२ = संस्कृत व्यगु।

संस्कृत व्यगु का शरसाधनार्थ भुज = [illegible]।२५।३।३८। भुजांश २।५३।३८ को ११ से गुणाकर गुणनफल ३१।५० में ७ [illegible] देने से लब्धि ४।३३ शर हुआ। व्यगु [illegible] गोल [illegible] दिशा होगी।

लम्बन [illegible]

[illegible] होने [illegible]

नुसार क्रान्ति साधन करने से २३।५३।५१ उत्तर क्रान्ति हुई। दक्षिण अक्षांश २५।२६।४ है। क्रान्ति और अक्षांश भिन्न दिशा के होने से दोनों का अन्तर १।२६।५१ दक्षिण दिशा का स्पष्ट नतांश हुआ ॥ ३

नतांशतो नतिसाधनं ततः शरसाधनञ्च—

दशहृतनतभागोनाहताष्टेन्दवस्तद्
रहितसधृतिलिप्तैः षड्भिराप्तास्त एव ।
स्वदिगिति नतिरेतत्संस्कृतः सोऽङ्गुलादिः
स्फुटइषुरमुतोऽत्र स्यात् स्थितिच्छन्नपूर्वम् ॥ ४

मल्लारि : अथ नतिसाधनमाह । दशभक्ता ये नतांशास्तैरूनाः सन्तस्त एव गुणिता ये अष्टेन्दवस्ते कलाद्याः पृथक् स्थाप्याः तै रहिता हीना ये सधृतिलिप्ताः षड्भागाः । अष्टादश कलान्वितोः षड्भागास्ताभिः कलाभिर्हीनाः कार्या इत्यर्थः । ततो यच्छेषं तेन ते पृथक्स्था भाज्याः । यल्लब्धं सा स्वदिक्नतांशदिक् नतिः स्यात् एतया नत्या संस्कृतः सोङ्गुलादिः शरः स्फुटः स्यात् । अमुतो हि स्पष्टशरादेव स्थितिच्छन्नपूर्वं साध्यम् ॥ ४

अत्रोपपत्ति :—नतिकारणं तु लम्बनानयने उक्तमेव । तत्साधनार्थमनुपात :- यदि [illegible]तुल्यया १२० नतांशज्यया परमा नतिकला; ४८।४५। तदेष्ट नतांशज्यया [illegible] । [illegible] नतिकलास्त्रिभक्ता अङ्गुलानि स्युः १६।१५। तथाऽत्र त्रिज्या ८१ [illegible] । इयं [illegible]हृतभागोना हताष्टेन्दुतुल्या भवति । इयं त्रिज्या ८१ केन भक्ता परमा नतिः स्यादतः परमनत्यङ्गुलभक्ता जातो हरः ५।५७। अयं हरस्त्रिज्यातुल्य [illegible] साष्टादशकलाषड्भागतुल्य एव (स्वल्पान्तरात्)। अतस्तद् रहित [illegible] षड्भिस्त एव भक्ता अङ्गुलाद्या नतिः स्यादित्युपपन्नम् । [illegible] रतो वा त्रिभोनलग्नं यावद्भिर्नतांशैः [illegible] [illegible] उत्तरतो वा नति[illegible]न्तरेण [illegible] [illegible] । एवं नतिः स्फुटा [illegible] [illegible] रोऽपि [illegible] । [illegible] [illegible] छ[illegible] [illegible] सा[illegible] [illegible] । सा [illegible]

घटा कर शेष को एक जातीय करके गुणनफल के एक जातीय मान में भाग देने से लब्धि नति होती है। नति की वही दिशा होती है जो नतांश की। नति में पूर्वसाधित शर का संस्कार (दोनों एक दिशा के हों तो योग भिन्न दिशा के हो तो अन्तर) करने से स्पष्ट शर होता है। इसी (स्पष्टशर) से स्थिति एवं ग्रास का साधन करना चाहिए। ४

उदाहरण :—दक्षिण नतांश १।२६।५१ इसमें १० का भाग देने से लब्धि ०।८ प्राप्त हुई। इसे १८ में घटाकर शेष १७।५२ को दशमांश ०।८ से गुणा करने से गुणनफल २।२३ कलादि हुआ। इसे ६ अंश १८ कला में घटाया—

६।१८। ०
− २।२३
६।१५।३७ इसके एकजातीय २२५३७, मान से गुणनफल के एक जातीय मान ८५८० में भाग देने से प्राप्त ०।२२ लब्धि अङ्गुलादि दक्षिण नति हुई। भिन्न दिशा होने से उत्तर शर ४।३३ में घटाने से शेष ४।११ स्पष्ट उत्तरशर हुआ।

स्पष्ट शर द्वारा पूर्वोक्त रीति (व्यसुशरेत्यादि*) से स्थिति एवं ग्रास साधन–सूर्यगति ५८।१८ चन्द्रगति ६११।१७। विहित नियमानुसार सूर्यगति से ५५ घटाने से ५८।१८–५५।०=३।८ शेष को ५ से भाग देकर लब्धि ०।३९ में १० जोड़ने से १०।३९ अङ्गुलादि सूर्यविम्ब हुआ। तथा चन्द्रकला ६११।१७ में ७४ के भाग देने से लब्धि ८।१५ अङ्गुलादि चन्द्रविम्ब हुआ। चन्द्रविम्ब ८।१५ को ३ से गुणाकर गुणनफल २४।४५ में इसी का एकादशांश २।१५ जोड़ने से २७।० हुआ इससे ८ घटाने से अङ्गुलादि १९।० भूभाविम्ब हुआ। छाद्य (सूर्य) विम्ब १०।३९ में छादक (चन्द्र) विम्ब ८।१५ जोड़ने से मानयोग १८।५४ हुआ। इसके आधे ९।२७ मानैक्य खण्ड में स्पष्ट शर ४।११ घटाने से शेष ५।१६ अङ्गुलादि ग्रास सिद्ध हुआ। ४

*प्र. ला. ५ ३

स्थितिसाधन[1]—सूर्य चन्द्र के विम्बयोगार्ध ९।२७ में शर ८।११ जोड़कर फल १३।३८ में १० से गुणाकर गुणनफल १३६।२० में पुनः ग्रासमान ५।१६ से गुणा करने पर ७१८।१ गुणनफल प्राप्त हुआ। इसका वर्गमूल २६।४७ में इसी का षष्ठांश ४।२८ घटाकर शेष २२।१९ में चन्द्रविम्ब ८।१५ का (एकजातीय करके) भाग देने से लब्धि २।४२ घटिकादि स्थिति हुई। ४

स्पर्शमोक्षयोः कालसाधनम्—

स्थितिरसहतिरंशा वित्रिभं तैः पृथक्स्थं
रहितसहितमाभ्यां लम्बने ये तु ताभ्याम्।
स्थितिविरहितयुक्तः संस्कृतो मध्यदर्शः
क्रमश इति भवेतां स्पर्शमुक्त्योस्तु कालौ ॥ ५

मल्लारि:—अथ स्पर्शकालमोक्षकालौ साधयति। षड्गुणा स्थितिरंशाः स्युः। तैरंशैर्मध्यदर्शान्तकालीनं पृथक् स्थापितं त्रिभोनलग्नं स्पर्शार्थं रहितं मोक्षार्थं सहितं कार्यम्। आभ्यां त्रिभोनलग्नाभ्यां पृथक् गणितागतो दर्शः संस्कृतः कार्यः। तद्यथा। स्पर्शार्थं तिथौ स्थितिर्हीना कार्या। तस्यां तल्लम्बनं धनमृणं लक्षणगतं कुर्यात्। स स्पर्शकालो भवति। तथैव मोक्षार्थं दर्शान्ते स्थितिर्योज्या। तस्यां स्वीयं लम्बनं संस्कार्यं स मोक्षकालो भवतीत्यर्थः ॥ ५

अत्रोपपत्ति:—स्थितिहीनयुक्तिथ्यैः पृथक् त्रिभोनलग्ने साध्ये। ताभ्यां लम्बने अपि साध्ये। ते स्थितिहीनयुक्ततिथौ देयं तौ स्पर्शमोक्षौ भवत इत्यत्र लघवार्थे त्रिभोनलग्ने स्थितिघटीभिश्चालिते। तत्र स्थितिघटिका यावत् षड्गुणा क्रियन्ते तावद्भागा भवन्ति। ते भागा दर्शान्तकालीने त्रिभोनलग्ने स्पर्शकालोनकरणार्थमृणं देयाः प्राक् कपालत्वात्। मोक्षार्थं धनं देया अग्रेसरत्वादित्युपपन्नम् अत्रार्कोऽपि स्थितिचालितो गृह्यते चेत् सूक्ष्मता स्यादिति द्रष्टव्यम्। ५

चन्द्रिका:—(पूर्वोक्त) स्थिति घटी को ६ से गुणा करने पर अंश होता है। दर्शान्त कालिक वित्रिभ में इस अंश को घटाने से स्पर्श कालिक वित्रिभ लग्न तथा एक स्थान में उक्त अंश को दर्शान्त कालिक वित्रिभ में जोड़ने से मोक्षकालिक वित्रिभ लग्न होता है। इन दोनों से

१. स्थिति घटी का साधन ग्रहलाघव ५ ५ के अनुसार सिद्ध किया गया !

पृथक्-पृथक् लम्बन साधन करना चाहिये। स्पर्शकालिक लम्बन का स्थिति रहित मध्यदर्श (पर्वान्तकाल) में संस्कार (लम्बन धन हो तो योग, ऋण हो तो अन्तर) करने से स्पष्ट स्पर्शकाल तथा मोक्ष कालिक लम्बन का स्थिति युक्त मध्यदर्श (पर्वान्तकाल) में संस्कार करने से स्पष्ट मोक्षकाल होता है। ५

उदाहरण :— पूर्वसाधित स्थिति काल २।४२, दर्शान्तकालिक वित्रिभ लग्न २।७।१५।२६।

स्थितिकाल २।४२ को ६ से गुणा कर गुणनफल १६।१२ अंशादि को दर्शान्त कालिक वित्रिभ २।७।१५।६ में घटाने से शेष १।२१।३।२६ स्पर्शकालिक वित्रिभ तथा एक स्थान में जोड़ने से २।२३।२७।२६ मोक्ष-कालिक वित्रिभ हुआ।

स्पर्शकालिक लम्बन साधन :—स्पर्शकालिक वित्रिभ १।२१।३।२६ के भुजांश ५१।३।२६ द्वारा पूर्वोक्त (ग्र. ला. ४. ११) नियमानुसार क्रान्ति-साधन करने से उत्तर क्रान्ति १८।२१।५१ प्राप्त हुई। भिन्न दिशा होने से इसे दक्षिण अक्षांश २५।२६।४२ में घटाने से शेष ७।४।५१ दक्षिण नतांश हुआ। नतांश के २२ वें भाग ०।१९।१८ के वर्ग ०।६।१२ में १२ जोड़ने से १२।६।१२ हार सिद्ध हुआ।

वित्रिभ और सूर्य* का अन्तर करने से वि. १।२१।३।२६–सू० ०।१५ ३८।५७=१।५।२४।२९। शेष रहा। इसके अंशादि ३५।२४।२९ में १० का का भाग देकर लब्धि ३।३२ को १४ में घटाने से १४।०—३।३२ = १०।२८ शेष १०।२८ में दशमांश ३।३२ का गुणा करने से गुणनफल ३६।५९ हुआ। इसे एकजातीय बनाकर २२१९ में हार के एक जातीय मान ७२६ से भाग देने पर लब्धि ३।३ स्पर्शकालिक घट्यादि लम्बन हुआ। यहां वित्रिभलग्न से सूर्य अल्प है अतः लम्बन धनात्मक होगा।

मोक्षकालिक लम्बन - मोक्षकालिक वित्रिभ २।२३।२७।२६ इससे साधित २३।४४।१७ उत्तरा क्रान्ति को दक्षिण अक्षांश २५।२५।४२ में घटाने

---

*स्पर्शकालिक लम्बनानयन में पर्वान्तकालिक सूर्य में स्थिति घटी को ऋण चालन मानकर तत्सम्बन्धी कलादि मान को घटाकर सूर्य स्पष्ट समझें तथा मोक्षकालिक लम्बन साधन में स्थिति घटी को धन चालन मानकर तत्सम्बन्धी कलादि मान का पर्वान्तकालिक सूर्य में जोड़ने से स्पष्ट सूर्य समझें।

से शेष १।४२।२५ दक्षिण नतांश हुआ। इसमे २२ का भाग देकर लब्धि ०।४।३९ के वर्ग ०।०।२१ में १२ जोड़ने से १२।०।२१ हार हुआ।

स्थिति घटी से संस्कृत सूर्य ०।१५।४४।१३ मोक्षकालिक वित्रिभ २।२३।२७।४६ दोनों का अन्तर करने से (२।२३।२७।४६-०।१५।४४।१३) = २।७।४३।३३ शेष रहा। इसके अंशादि ६७।४३।३३ के दशमांश ६।४६ को १४ में घटाकर शेष ७।१४ को दशमांश ६।४६ से गुणाकर गुणनफल ४८।५६ में हार १२।० के सजातीय मान से भाग देने पर प्राप्त लब्धि ४।५ मोक्षकालिक लम्बन हुआ। वित्रिभ से सूर्य अल्प है अतः धनात्मक लम्बन हुआ।

लम्बन संस्कार—पर्वान्तकाल २५।१० में स्थिति घटी २।४२ घटाने से शेष २२।२८ स्थिति रहित मध्यदर्श काल हुआ। स्पर्शकालिक लम्बन ३।३ धनात्मक होने से स्थिति रहित मध्यदर्श २२।२८ में जोडने से २५।३१ स्पष्ट स्पर्शकाल हुआ। इसी प्रकार स्थिति काल २।४२ + २५।१० पर्वान्तकाल २७।५२ स्थिति युक्त मध्यदर्श। मोक्षकालिक लम्बन ४।५ धनात्मक होने से २७।५२ में जोड़ने से ३१।५७ स्पष्ट मोक्ष काल हुआ। ५

सम्मीलनोन्मीलनकालयोः साधनम्, ग्रहणस्य वर्णज्ञानञ्च—

मर्दादेवं मीलनोन्मीलने स्तो
ग्रासो नादेश्योऽङ्गुलाल्पो रवीन्द्वोः।
धूम्रः कृष्णः पिङ्गलोऽल्पार्धसर्व—
ग्रस्तश्चन्द्रोऽर्कस्तु कृष्णः सदैव ॥ ६

मल्लारिः—अथ सम्मीलनोन्मीलनकालौ साधयति। एवमनयैव रीत्या मर्दात् मीलनोन्मीलने स्तः। एतदुक्तं भवति। मर्दं षड्गुणं भागाः स्युः। ते दर्शान्तकालीनत्रिभोनलग्ने सम्मीलनार्थं हीना उन्मीलनार्थं युक्ताः। ताभ्यां पृथक् लम्बने साध्ये। ततश्च सम्मीलनार्थं तिथौ मर्दं न्यूनं कार्यम्। तत्र तल्लम्बनं संस्कार्यं सम्मीलनकालो भवति। तथैव मर्दं तिथौ योज्यं तत्र लम्बनं द्वितीयं देयमुन्मीलनकालो भवति।

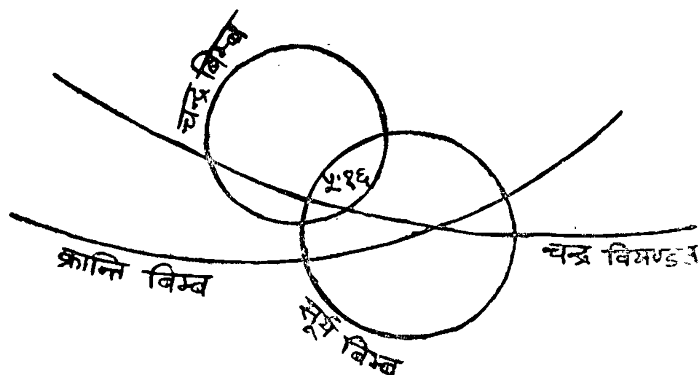
अत्रोपपत्तिः—स्पर्शमोक्षवत् सुगमा। रवीन्द्वोः सूर्यचन्द्रयोरंगुलादल्पो ग्रासो नादेश्यः। यतो हि किरणबलवशादल्पग्रासो न दृश्यत इति प्रत्यक्षहेतुः। चन्द्रो हि अल्पार्धसर्वग्रस्तो धूम्रादिः स्यात्। तद्यथा। अल्पग्रहे धूम्रवर्णोऽर्धग्रहः कृष्णः सर्वग्रहः पिंगलः स्यात्। अर्कः सदा अल्पादिग्रासेषु कृष्ण एकवर्णः। अत्र दृग्गोचरतयैवोपपत्तिः ॥ ६

चन्द्रिका--इसी प्रकार मर्द घटी से सम्मीलन और उन्मीलन काल (सिद्ध) होते हैं। १ अङ्गुल से अल्प ग्रासमान हो तो सूर्य या चन्द्रमा के ग्रहण का आदेश नहीं करना चाहिये। चन्द्रमा अल्प ग्रस्त होने पर धूम्रवर्ण, अर्धग्रस्त होने पर कृष्णवर्ण तथा सर्वग्रस्त होने पर पिङ्गलवर्ण हो जाता है, सूर्यग्रास सदैव कृष्ण बर्ण का होता है। ६

उदाहरण--पूर्वोक्तरीति (ग्र. ला. ५ ५) से सर्वप्रथम मर्दघटी साधन कर उसे ६ से गुणा करने से अंशादि होगा। इसे वित्रिभ में एक स्थान पर जोड़कर तथा एक स्थान में घटा कर दोनों से पृथक् पृथक् लम्बन साधन कर मर्दयुक्त पर्वान्तिकाल में घटाने से सम्मीलन तथा मर्दयुक्त मध्यदर्श (पर्वान्तकाल) में जोड़ने से उन्मीलन काल होगा।

यथा- मर्दघटी साधन— छाद्य (सूर्य) विम्ब = १०।३९
छादक (चन्द्र) विम्ब = ८।१५
ग्रास मान = ५।१६

विम्बान्तर और खग्रास द्वारा मर्द घटी का आनयन होता है*। परन्तु यहां ग्रासमान ५।१६ छाद्य विम्ब १०।३९ से अल्प है अतः ऐसी स्थिति में खग्रास नहीं होगा। जहाँ खग्रास का अभाव होता है वहां सम्मीलन तथा उन्मीलन मर्द नहीं होता क्योंकि ये सर्वग्रास ग्रहण में ही उत्पन्न होते हैं। जब पूर्ण छाद्य विम्ब ढक जाता है तब सम्मीलनकाल तथा विम्ब जब दृश्य होने लगता है तब उन्मीलनकाल प्रारम्भ होता है। यहां ऐसी स्थिति नहीं है। स्पष्टार्थ क्षेत्र देखें।



*मर्द तथा तनुदलान्तर खग्रहाभ्याम्। ग्र ला. ५.५

सूर्य विम्ब की त्रिज्या   ५।१९.५
तथा चन्द्र विम्ब की त्रिज्या ४।७.५
ग्रासमान   ५।१६

अर्थात् सूर्य केन्द्र के आसन्न ही चन्द्र विम्ब का भीतरी भाग होगा। अतः खण्डग्रास ही हुआ। सूर्य पूर्ण रूप से आच्छादित नहीं होगा। छाद्य विम्ब जब पूर्ण रूप से छाया में प्रविष्ट हो जाता है अर्थात् सम्मीलनकाल के प्रारम्भ से ग्रहणमध्य तक मर्दार्धघटी होती है। उसे द्विगुणित करने से मर्दघटी होती है। प्रस्तुत उदाहरण में खण्डग्रास होने से मर्द एवं सम्मीलनोन्मीलन का अभाव रहेगा।

इष्टग्राससाधनम्—

इष्टं द्विघ्नं छन्नक्षुण्णं स्पर्शान्त्यान्तर्नाडी भक्तम्।
रूपार्धेनोपेतं विद्यादिष्टे कालेऽर्कस्य ग्रासम्॥ ७

मल्लारिः—अथेष्टग्रासानयनमाह। इष्टं घटीपूर्वं द्विगुणं ततो हि छन्नेन ग्रासेन क्षुण्णं गुणितं सत् स्पर्शान्त्ययोः स्पर्शमोक्षयोर्या अन्तर्मध्यनाडिकाः पर्वकालाख्यास्ताभिर्भक्तं ततो लब्धं रूपार्धेन उपेतं युक्तं सत् अर्कस्येष्टकाले ग्रासं विद्यात् जानीयात्।

अत्रोपपत्तिः—यदि स्थितिघटिकाभिरयं ग्रासस्तदेष्टघटीभिः किमिति ग्रासोऽभीष्टघटीगुणः स्थित्या भाज्यः। अत्र स्पर्शमोक्षस्थितीष्टं पृथक् न कृतम्। अतो हि पर्वकाल एव हरो गृहीतः। एवं हरस्य द्विगुणितादिष्ट द्विगुणं कार्यमित्युपपन्नम्॥ ७

चन्द्रिका—इष्ट घटी (ग्रहणारम्भकाल से इष्ट समय) को २ से गुणा कर गुणनफल को पुनः ग्रासमान से गुणाकर गुणनफल में स्पर्श तथा मोक्षकाल के अन्तर नाडी से भाग देकर लब्धि में आधा अंगुल (३० व्यंगुल) जोड़ने से इष्टकाल में सूर्य का ग्रासमान होता है। ७

उदाहरण—स्पर्शकाल के उपरान्त १ घटी ३० पल पर सूर्य का ग्रासमान अभीष्ट है। अतः इष्ट घटी १।३० को २ से गुणा करने (१।३०)२=३।०० हुआ इसे ग्रासमान ५।१६ से गुणा करने से गुणनफल १५।४८ आया। मोक्षकाल ३१।५७ में स्पर्शकाल २५।३१ घटाकर शेष ६।२६ से एक जातीय बनाकर गुणनफल १५।४८ के एक जातीयमान में भाग देने से लब्धि २।२७ प्राप्त हुई इसमें ३० व्यङ्गुल जोड़ने से २।५७ इष्टग्रास हुआ॥

श्रीगणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के सूर्यग्रहणाधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण।६

मासगणाधिकारः—७

उपयोगिता—

> अथ मासगणात् सुलघुक्रियया
> ग्रहणद्वयसिद्धकृतेऽभिदधे ।
> स्फुटसूर्यविपाततिथीश्च वपु-
> र्ग्रसनादि विशेषचमत्कृतये ॥ १

मल्लारिः—अथ मासगणादेव ग्रहणद्वयसाधनाधिकारो व्याख्यायते । मासगणात् सुतरां लघुक्रियया ग्रहणद्वयसिद्ध्यर्थं स्फुटान् सूर्यविपाततिथीन् तथा वपूंषि विम्बानि ग्रसनं ग्रास इत्यादि विशेषचमत्कारदर्शनार्थमभिदधेऽभिधास्ये । १

चन्द्रिका—अथ (पूर्वोक्त ग्रहणादि साधन के अनन्तर) मासगणों द्वारा स्पष्ट सूर्य, विपात, तिथि, विम्ब तथा ग्रासमान आदि का साधन अत्यन्त सरल एवं चमत्कारिक विधि से कहता हूँ । १

क्षेपकाः—

> क्षेपो भाद्यः खं कृता भूदृशोऽर्के
> रुद्राः शैला नागचन्द्रा विपाते ।
> वृत्ते शून्यं वज्रिणश्चन्द्रबाणा
> वाराद्ये द्वौ व्यङ्घ्रिनन्दाब्धयःस्यात्* ॥ २

मल्लारिः—तत्रादौ क्षेपकानाह । अर्के भाद्यो राश्याद्योऽयं क्षेपः स्यात् खम्० । कृताः ४ । भूदृशः २१ इति । विपाते व्यगौ रुद्राः ११ । शैलाः ७ । नागचन्द्राः १८ । क्षेपः स्यात् । वृत्ते शून्यम्० । वज्रिणश्चतुर्दश १४ । चन्द्रबाणा एकपञ्चाशत् ५१ । वाराद्ये द्वौ व्यंघ्रिनन्दाब्धयो विचरणैकोनपञ्चाशत् । वारस्थाने द्वौ २ । घटीष्वष्टचत्वारिंशत् ४८ । पलेषु पञ्चचत्वारिंशत् ४५ ॥

अत्रोपपत्तिः—ग्रन्थशकादौ रविचन्द्रराहूणां क्षेपाः प्रथममुक्ताः सन्ति । एवं राहुक्षेपे चन्द्रक्षेपं त्यक्त्वा विपातः कृतः । सूर्यक्षेपस्तु सिद्ध एव । वृत्तं चन्द्रस्य मन्दकेन्द्रम् । चन्द्रोच्चक्षेपयोरन्तरे जातस्तस्यापि क्षेपः । एवं तच्छकादौ यन्मध्यमं तिथेर्वाराद्यं स वारादिकस्य क्षेपः । अत्र मासगणोत्पन्नो ग्रहा मासादिप्रतिपदि स्युः

---

*'च' इति पाठन्तरम्

अतः पौर्णमास्यन्तकरणार्थं पक्षचालनानि ग्रहेषु क्षेप्याणि । ततो लाघवार्थं क्षेपेष्वेव प्रक्षिप्य क्षेपाः पाठपठिताः ॥ २

चन्द्रिका—सूर्य का राश्यादि क्षेपक ०।४।२१, विपात का ११।७।१८ वृत्त (चन्द्रकेन्द्र) का ०।१४।५१ तथा तिथि का २।४८।४५ वारादि क्षेपक है। २

ध्रुवाः—

भानोः खं भूः खाब्धयोऽयं ध्रुवः स्यात्
शैलाः क्ष्वर्का राशिपूर्वो व्यगोः स्यात् ।
वृत्तस्याङ्का भूरसाश्चाऽथ तिथ्यो
वाराद्यस्याक्षाः खगास्तर्करामाः ॥ ३

मल्लारिः—अथ ध्रुवानाह । भानोः सूर्यस्य खम्० । भूः १ । खाब्धयः ४० । अयं राशिपूर्वो ध्रुवः स्यात् । व्यगोः । शैलाः सप्त ७ । कुरेकः १ । अर्का द्वादश १२ ध्रुवः स्यात् । वृत्तस्य । अङ्कानव ९ । भूरेकः १ । रसाः षट् ६ । अथ तिथिवाराद्यस्य । अक्षाः पञ्च ५ । खगा नव ९ । तर्करामा। षट्त्रिंशत ३६ ।

अत्रोपपत्तिः—एकादशवर्षमितं चक्रम् । अतो हि एकादश वर्षाहर्गणात् रव्यादयः पूर्वोक्तवत् साधितास्ते ध्रुवसंज्ञा इति ॥ ३

चन्द्रिका—सूर्य का राश्यादि ध्रुवा ०।१।४०, व्यगु का ७।१।१२ वृत्त (चन्द्रकेन्द्र) का ध्रुवाङ्क ९।१।६ तथा तिथि का वारादि ध्रुवा ५।९।३६ है। ३ ।

मासगणात् सूर्यविपातयोः साधनम्—

मासौघतो द्विगुणितान्नगषड्भिराप्त-
राश्याद्विना रहितमासगणो रविः स्यात् ।
मासा गृहाणि विनिजत्रिलवाश्च तेंऽशा
मासाङ्घ्रितुल्यकलिकाः स्युरयं विपातः ॥ ४

मल्लारिः—अथ मासगणात् सूर्यविपातावेकवृत्तेन साधयति । द्विगुणितात् मासगणात् नगषड्भिः सप्तषष्ट्याऽऽप्तं लब्धं यद्राश्यादि फलं तेन रहितो मासगणो मध्यमरविः स्यात् । अथ यावन्तो मासगणे मासास्तावन्त्येव गृहाणि राशयः स्युः विगतो निजः स्वकीयस्त्रिलवो येभ्यस्ते तथा । एवम्भूता मासा अंशा

भागाः स्युः मासानां योऽङ्घ्रिश्चरणः। तत्तुल्या एवं कलिकाः। अयं विपातः स्यात्।

अत्रोपपत्तिः—यदि कल्पचान्द्रमासैः कल्पग्रहभगणानां राशयो लभ्यन्ते तदेकमासेन किमति लब्धाः पृथक्-पृथक् सूर्यविपातवृत्तवारादिकानां मासागुणाः। ततोऽन्योऽनुपातः। यद्येकमासेनैते तदेष्टमासगणेन के। अत्र रूपहरस्याविकृतत्वान्नाशे कृते मासगणेनैव ते गुणा गुण्यास्ते ग्रहाः स्युरिति। अत्र गुणानां चतुः स्थितत्वात् मासगणाङ्कबाहुल्यात् गुणने जडकर्म दृष्ट्वा आचार्येण खण्डगुणनानि सर्वत्र विहितानि। तत्रादौ रवेरयं राश्यादिर्मासगुणः ०।२९।६।१६ अत्र खण्डगुणनार्थमेको राशिरेव धृतः। अतो मासगणतुल्यो रविः स्यात्। ततस्तदेकस्माच्छुद्धं शेषम् ०।५३।४४। इदं सप्तषष्ट्यासवर्णितं जातावुपरि द्वौ २। अतो द्विगुणमासगणात् सप्तषष्टिलब्धं मासगणे न्यूनीकृतं सत् रविर्भवतीत्युपपन्नम्। तथैवायं विपातमासगुणः १।०।४०।१५ अत्रैकराशिरतो मासा एवं राशयः। शेषस्यापि खण्डद्वयं कृतम्। तत्रैकं खण्डम् ०।४०। इदं त्रिभिः सवर्णितं जातौ भागस्थाने द्वौ। अतो मासा द्विगुणास्त्रिभक्ता इत्यत्रापि यो राशिर्द्वाभ्यां गुण्यते त्रिभिर्भज्यते स तावत् स्वत्रि-भागोन एव भवति अतो विनिजत्रिलवा इति मासा भागाः स्युरिति। अन्यत् खण्डम् ०।१५। इदं चतुर्भिः सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपम्। अतो मासांघ्रितुल्य-कलिका इत्युपपन्नम् ॥४

चन्द्रिका—मासगण को २ से गुणाकर गुणनफल में ६७ का भाग देने से प्राप्त राश्यादि लब्धि को मासगण में घटाने से सूर्य होता है। तथा मासगण को राशि स्थान में, तृतीयांश रहित मासगण को अंश एवं मासगण के चतुर्थांश को कलास्थान में रखने से विपात होता है। ४

उदाहरण—संवत् २०३२ शक १८९८ आश्विन शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवार को पूर्वोक्त* रीति (द्व्यब्धीन्द्रोनित) से मासगण बनाया। यथा—

```
शक        १८९८
          १४४२
     ११)  ४५६(४१ चक्र
          ४४
          १६
          ११
           ५  शेष
```

* ग्र० ला० १५

५ × १२=६० + ६ गतमास=६६
४१ × २=८२+१०=९२
९२ + ६६=१५८
३३)१५८(४ अधिमास
  १३२

  २६
६६ +४=७० मासगण

मासगण से सूर्य साधन—

श्लोकोक्त नियमानुसार मासगण को २ से गुणा किया ७० × २=१४० इसमें ६७ का भाग देने से लब्धि २।५।२२।२३ प्राप्त हुई इसे मासगण ७० में घटाया—

७०। ०। ०।०
 २। ५ ।२२।२३
६७।२४।३७।३७

राश्यादि ७।२४।३७।३७ सूर्य हुआ।

सूर्य के ध्रुवा ०।१।४० को चक्र ४१ से गुणा कर गणनफल २।८।२० को सूर्य ७।२४।३७।३७ में घटाकर सूर्य का क्षेपक ०।४।२१ जोड़ने से स्पष्ट सूर्य हुआ यथा—

७।२४।३७।३७	
−२। ८।२०।	चक्र गुणित ध्रुवा
५।१६।१७।३७	
०। ४।२१	क्षेपक
५।२०।३८।३७	पर्वान्त कालिक स्पष्ट सूर्य

विपात साधन—

मासगण ७०=राशि		मासगण का तृतीयांश

$\frac{७०}{३}$ = २३।२०

७०।०० − २३।२०=४६।४०=अंशादि

मासगण का चतुर्थांश $\frac{७०}{४}$=१७।३०=कलादि

	राशि	अंश	कला	विकला	
	७०	४६	४०	×	
			१७	३०	
	७०	४६	५७	३०	
	७१	१६	५७	३०	
अर्थात् राश्यादि	११	१६	५७	३०	विपात हुआ।

अर्थात् मासगण ७० को राशि मान लिया। मासगण में ३ का भाग देकर लब्धि २३।२० को मासगण ७० में घटा कर शेष ४६।४० को अंश-कला मान लिया तथा ७० में ४ का भाग देकर लब्धि १७।३० को कलादि मान कर सब का योग करने से विपात सिद्ध हुआ। पूर्व साधित विपात में चक्रगुणित ध्रुवा (७।१।१२ × ४१ = ०।१९।१२) एवं क्षेपक युक्त करने से—

	११।१६।५७।३०
	०।१९।१२
	०। ६। ९।३०
क्षेपक जोड़ने से	११। ७।१८
स्पष्ट विपात	११।१३।२७।३०

वृत्तवारादिकयोः साधनम्—

स्वाद्र्यंशकेन रहिता मनुतष्टमासा
वृत्तं गणाभ्रकुलवाढ्यचलवं गृहादि।
स्वार्धान्विता दिनमुखं मनुतष्टमासा
मासौघतो दशगुणाद्गुणाप्तियुक्तम् ॥ ५

मल्लारिः—अथैकवृत्तेन वृत्तवारादिके साधयति। मनुभिश्चतुर्दशभिस्तष्टा भक्ता अवशिष्टा ये मासास्ते स्वस्याद्र्यंशकेन सप्तभागेन रहिताः सन्तो गृहादि राश्यादि वृत्तं स्यात्। परमेतत् गणस्य मासगणस्य अभ्रकुभिर्दशभिर्लवाः। तैराढ्या युक्ता लवा भागा यस्य तत्। एवम्भूतं कार्यम्। तथैव मनुतष्टा मासा स्तस्य अर्धेनान्विता युक्ताः सन्तो दिनमुखं वारादिकं स्यात्। दशगुणात् मासगणाद्गुणैः सप्तविंशत्यधिकशतत्रयेण याऽऽप्तिर्लब्धिस्तया युक्तं कार्यमित्यर्थः।

पूर्वसाधित ० में जोड़ने से २।८।२६ दिनादि हुआ। इसमें वारादि ध्रुवा ५।९।३६ को ४१ चक्र से गुणाकर गुणनफल १।३३।३६ को तथा २।४८।४५ क्षेपक को जोड़ने से (२।८।२६+१।३३।३६+२।४८।४५) = ६।३०।४७ स्पष्ट वारादि हुआ।

ध्रुवक्षेपयोः संस्कारः—

मासगणाज्जनितो रविरूनश्चक्रहतध्रुवकेण निजेन।
संकलिता इतरेऽथ च ते स्युः क्षेपयुता निजमासि सितान्ते॥ ६

मल्लारिः ध्रुवकक्षेपका अत्र योज्या इत्याह। मासगणात् जनित उत्पादितो रविनिजेन स्वेन चक्रहतेन ध्रुवकेण ऊनः कार्यः। इतरे विपातादस्तेन संकलिताः संयोज्याः। ततस्ते सूर्यादयः स्वीयेन क्षेपकेण युताः सन्तो निजेऽभीष्टे मासि सितान्ते पौर्णमास्यन्ते स्युरिति॥

अत्रोपपत्तिः—चक्रहतास्तु ध्रुवका ग्रहेषु प्रक्षेप्या एव वर्षाणामेकादशतष्टत्वात्। तत्र रवेर्ध्रुवको द्वादशशुद्धोऽस्ति। अतस्तदूनो रविः कार्यः। अन्ये योज्याः। एवं क्षेपास्तु योज्या एव यतो ग्रन्थशकादिमारभ्याग्रेसरकालदेव ग्रहाः साधिताः। अतः सृष्ट्यादेः सकाशात् साधिता ते ग्रहास्तद्युक्ता एवेत्युपपन्नम्॥ ६

चन्द्रिका—मासगण से उत्पन्न रवि से चक्रगुणित ध्रुवा घटाने से अन्य (विपात, वृत्त, वारादि) में चक्रगुणित अपने ध्रुवा जोड़ने से प्राप्त योगफल में अपने अपने क्षेपक जोड़ने से अभीष्ट मास के शुक्लपक्ष से अन्त अर्थात् पूर्णान्त में सूर्यादि स्पष्ट होते हैं॥ ६

पाक्षिकं चालनम्—

रवौ पाक्षिकं चालनं खेन्द्रदेवा
विपाते नभो बाणचन्द्रा नखाश्च।
षडर्का युगाक्षा गृहाद्यं च वृत्ते
दिनाद्ये नभोऽक्षाब्धयो बाणबाणाः॥ ७

मल्लारिः—पाक्षिकं चालनं कथयति। सूर्ये पाक्षिकं पञ्चदशदिनभवं तदेतच्चालनम्। खं शून्यं राशिः। इन्द्राश्चतुर्दश भागाः। देवास्त्रयस्त्रिंशत् कलाः। विपाते नभः शून्यं राशिः। बाणचन्द्राः पंचदश भागाः। नखा विंशतिः कला। वृत्ते षट् राशयः अर्का द्वादश भागाः। युगाक्षाः चतुष्पञ्चाशत् कलाः।

अत्रोपपत्ति :—वृत्तगुणो राश्यादिः ०।२५।४८।५२। अत्र चतुर्दशभिर्मासैरेकं चक्रं भवति अतो भगणप्रयोजनाभावात् मनुतष्टमासा इत्युक्तम्। अत्रास्यैको राशिर्धृतः। एकशुद्धध्रुवः ०।४।११।८ अस्यापि खण्डद्वयं कृत्वात्रेदं खण्डमधिकं गृहीतम् ०।४।१७।८ सप्तभिः सवर्णितं जातं राशिस्थाने रूपम्। अतो हि स्वाद्रचंशकेन रहिता इति। अधिकं खण्डम् ०।६ दशभिः सवर्णितं जातं भागस्थाने रूपम् १। अतो गणाभ्रकुलवाढ्यमित्युपपन्नम्। अत्र तिथिवारादिकस्यायं मासगणः १।३१।५० अत्र खण्डद्वयं १।३० इदं द्वाभ्यां सवर्णितं जातं गुणस्थाने त्रयः ३। यो राशिस्त्रिगुणो द्वाभ्यां भज्यते स स्वार्धान्वित एव भवति। अन्यत् खण्डम् ०।१।५०। इदं भगुणैः सवर्णितं जाता गुणस्थाने दश १०। अतो दशगुणात् भगुणासियुक्तमित्युपपन्नम् ॥ ५

चन्द्रिका—मासगण में १४ का भाग देने से जो शेष बचे उसमें उसी का सप्तमांश घटाने से राश्यादि तथा मासगण में १० का भाग देने से अंशादि फल होगा। दोनों का योग करने से वृत्त अर्थात् चन्द्रकेन्द्र होगा।

मासगण में १४ का भाग देने से जो शेष बचे उसमें उसका आधा जोड़ने से दिनादि होगा। उसमें, दशगुणित मासगण में, ३२७ का भाग देकर लब्धि तुल्य दिनादि जोड़ने से वारादि होगा ॥ ५

उदाहरण—वृत्त (चन्द्रकेन्द्र) साधन-मासगण ७० को १४ से भाग देने से शेष ० प्राप्त हुआ। ० में ७ का भाग देने से राश्यादि ०।०।०।० ही प्राप्त हुआ। ० में शून्य घटाने से शून्य ही रहा। मासगण ७० में १० का भाग देकर लब्धि ७।०।० अंशादि को राश्यादि ०।०।०।० में जोड़ने से ०।७।०।० राश्यादि वृत्त हुआ।

वृत्त के ध्रुवा ९।१।६।० को चक्र ४१ से गुणाकर गुणनफल १०।१५।६।० को वृत्त ०।७।०।० में जोड़कर १०।२२।६।० में वृत्त का क्षेप ०।१४।५१।० जोड़ने से ११।६।५७।० वृत्त (चन्द्रमा का केन्द्र) हुआ।

वारादि साधन—मासगण ७० में १४ का भाग देने से शेष ० में इसी का आधा ० जोड़ने से शून्य ही रहा। मासगण ७०×१०=७०० दश गुणित मासगण में ३२७ का भाग देने से लब्धि २।८।२६ दिनादि को

चतुस्त्रिंशदंशेन ऊनास्ता एव तिथयः। दिनेशे सूर्ये लवाद्यं चालनं स्यात्। ततस्ता एव तिथयो विश्वैस्त्रयोदशभिर्हन्यन्ते गुण्यन्ते तास्तथा। ततः स्वस्य गुणनलवेन त्रिनवति भागेन ऊना वृत्ते चालनं स्यात्। ९

अत्रोपपत्तिः—अत्रैकचान्द्रदिनमानम्। ०।५९।३।४५ यद्येकतिथावेतत् तदेष्टतिथिभिः किमिति। इदमिष्टतिथिगुणं रूपहरस्याविकृतत्वान्नाशः। अत्र खण्डगुणनार्थमस्यैक एव गृहीतः। अत इहमेकशुद्धं कृत्वा जातम् ०।०।५६।१५ चतुःषष्ट्या सवर्णितमूर्ध्वस्थाने रूपम्। अतः स्वरसयुग लवोनास्तिथयो वाराद्ये देयाः। पूर्वे ऋणमेव धनमिति चालनेऽप्युक्तमस्ति।

अथ रविचालनोपपत्तिः—तत्र रवेश्चान्द्रदिनान्तर्वर्त्तिनी मध्यगतिरियं भागाद्या ०।५८।१४ अस्या अप्येको गृहीतोऽत इदं रूपशुद्धं जातम्। ०।१।४६ इदं चतुस्त्रिंशत् सवर्णितं जातमूर्ध्वं रूपम् १। अतो युगगुणलवोनास्तिथयो रवि चालनमिति। अथ वृत्तचालनम्। वृत्तस्य चन्द्रमन्दकेन्द्रस्य चान्द्रदिनान्तर्वर्त्तिनी मध्यगतिर्भागाद्या १२।५१।३७। अस्यास्त्रयोदश गृहीताः अत इदं त्रयोदश शुद्धम् ०।८।२३। इदं त्रिनवतिसवर्णितं जाता ऊर्ध्वं त्रयोदशैव। अतो विश्वनिघ्नाः स्वत्रिनवतिभागोनास्तिथयो वृत्तचालनमिति ॥ ९

चन्द्रिका— अभीष्ट तिथि साधन के लिए-पूर्णिमा से पहले तथा पश्चात् जितनी तिथियां हों उनमें उसीका ६४वां भाग घटाने से दिनादि का चालन होता है। इसी प्रकार यात-ऐष्य तिथि संख्या में उसीका ३४वां भाग घटाने से शेष अंशादि सूर्य का यातैष्य संख्या में उसी का ९३वां भाग घटाकर शेष में १३ का गुणा करने से वृत्त का चालन होता है ॥ ९

उदाहरण—शक १८९८ आश्विन शुक्ल १३ को सूर्यादि का साधन अभीष्ट है।

पूर्णिमा से पूर्व १३ तीसरी तिथि है। अतः ३ में ६४ का भाग देने से लब्धि ०।२।४८ को ३ में घटाने से शेष २।५७।१२ दिवसादि चालनऋण हुआ। पूर्वसाधित तिथि सम्बन्धी दिनादि में २।५७।१२ घटाने से अभीष्ट दिनादि होगा।

उक्त गत तिथि संख्या ३ में ३४ का भाग देकर लब्धि ०।५।१८ को ३ घटाने से शेष २।५४।४२ सूर्य का चालन हुआ पूर्णिमा के सूर्य से २।५४।४२ अंशादि फल घटाने से १३ तिथि में सूर्य होगा।

दिनाद्ये वाराद्ये नभः शून्यं वारः। अक्षाब्धयः पंचचत्वारिंशत् घटिकाः बाणबाणाः पञ्चपञ्चाशत् कलाः।

अत्रोपपत्ति :—पूर्वमनुपातात् रव्यादीनां मासगुणाः साधिताः सन्ति तेषामर्धं चालनं कृतम्। अमान्तकालिकग्रहसाधनार्थमिति। एतदेव द्वादशगुणं षण्मास चालनं चतुर्विंशतिगुणं वर्षचालनं भवतीति सुगमा ॥ ७

चन्द्रिका—सूर्य का ०।१४।३३, विपात का ०।१५।२० तथा वृत्त का ६।१२।५४ राश्यादि पाक्षिक चालन है। एवमेव ०।४५।५५ वारादि का दिवसादि पाक्षिक चालन है ॥ ७

अर्द्धवार्षिकं चालनम्—

शरा वेदपक्षा भुजङ्गाग्नयोऽर्के
व्यगौ षट् कृताः कुश्च षाण्मासिकं स्यात्।
शरा वार्धयस्त्रीषवो भादिवृत्ते
दिनाद्ये तिथेर्द्वौ भवा भूर्दिनाद्यम् ॥ ८

मल्लारि :—अथ षाण्मासिकं राश्यादिचालनमाह। शराः पञ्च। वेदपक्षाश्चतुर्विंशतिः भुजङ्गाग्नयोऽष्टत्रिंशत्। इदमर्के षाण्मासिकं चालनं स्यात्। व्यगौ षट्। कृताश्चत्वारः कुरेका। वृत्ते शराः पञ्च। वार्धयश्चत्वारः। त्रीषवः त्रिपञ्चाशत्। तिथेर्दिनाद्ये द्वौ। भवा एकादश। भूरेका। इदं दिनाद्यं चालनं स्यात् ॥ ८

चन्द्रिका—सूर्य का ५।२४।३८, व्यगु का ६।४।१ तथा वृत्त का ५।४।५३ राश्यादि षाण्मासिक (अर्धवार्षिक) चालन है। इसी प्रकार २।११।१ तिथि के वारादि षाण्मासिक चालन है ॥ ८

इष्टतिथिसाधनम् —

अभिमततिथिसिद्धयै प्राक् परे यास्तु तिथ्यः
स्वयुगरसलवोनाश्चालनं स्याद्दिनाद्ये।
स्वयुगगुणलवोनाः स्याल्लवाद्यं दिनेशे
स्वगुणनवलवोना विश्वनिघ्नाश्च वृत्ते ॥ ९

मल्लारि :—अथेष्टतिथिसाधनमाह। अभिमताया इष्टायास्तिथेः सिद्ध्यै प्राक् पौर्णमास्याः पूर्वं परे पश्चात् या यावत्य इष्टतिथ्यः स्युस्ता युगरसलवेन चतुःषष्टिभागेन ऊनाः सत्यो दिनाद्ये चालनं स्यात् स्वस्य युगगुणलवेन

इसी प्रकार ३ में ९३ से भाग देकर लब्धि ०।१।५६ को ३ में घटाने से २।५८।४ शेष रहा इसमें १३ से गुणा करने से गुणनफल ३८।३४।५२ वृत्त (चन्द्र केन्द्र) का चालन हुआ।

स्पष्टतिथिसाधनार्थं रविचन्द्रयोर्मन्दफलम् —

अत्यष्ट्यष्टिवृषार्कगोशरदृशः खण्डानि तैर्वृत्तदो-
र्भागत्रीन्दुलवप्रमैक्यमगतघ्नोच्छिष्टविश्वांशयुक् ।
प्राग्वत् स्यात् स्वमृणं फलं त्विति रवेः केन्द्राद्यदन्यच्च तद्-
द्व्याप्तं स्वाङ्गलवोनितं कुरु तयोः कार्या पुनः संस्कृतिः ॥ १०

मल्लारिः—अथ रवेः स्पष्टार्थं तिथेरपि स्पष्टार्थं सूर्यचन्द्रयोर्मन्दफले साधयति। एतानि खण्डानि स्युः अत्यष्टिः सप्तदश १७। अष्टिः षोडश १६। वृषाश्चतुर्दश १४। अर्का द्वादश १२। गावो नव ९। शराः पंच ५। दृशौ २। तैः खण्डकैः कृत्वा वृत्तस्य दोर्भुजः। तस्य ये भागाः। तेषां यस्त्रीन्दुभिस्त्रयोदश-भिर्लवो भागो यन्मितः स्यात्। तन्मितानां खण्डानामैक्यम्। तत् आगतेन खण्डकेन हन्यते तथा। एवम्भूतस्य उच्छिष्टस्य शेषस्य यस्त्रीन्दुलवस्त्रयोदश भागस्तेन युक्तं सत्। प्राग्वदिति वृत्ते मेषादिषट्के धनं तुलादिषट्के ऋणं चन्द्र फलं स्यात्। इत्यनेनैव प्रकारेण रवेर्मन्दकेन्द्राद्भुजादिविधिना एभिः खण्डैः सूर्यमन्द-फलं साध्यं ततः स्वस्याङ्गलवेन ऊनितं कार्यम्। तयो सूर्यचन्द्रफलयोः संस्कृतिः कार्या। संस्कृतिर्यथा। धनयोर्योगः। ऋणयोरपि योगः। धनर्णयोरन्तरमिति।

अत्रोपपत्तिः—अत्र वृत्तात्त्रयोदशभागान्तरं प्रकल्प्य पूर्वोक्तवन्मन्दफलखण्डानि चन्द्रस्य साधितानि राशित्रयमध्ये सप्त एव। एतानि मन्दफलखण्डानिसावयवानि यतः पंचदश गुणानि निःशेषाणि भवन्ति। अतः पंचदशगुणानि कृत्वा पठितानि। अत्रेष्टफलार्थमनुपातः। यदि त्रयोदश भागैरेकं खण्डं तदेष्टवृत्तदोर्भागैः किमिति लब्धमितखण्डानामैक्यं कार्यं ततः शेषादनुपातः। यदि त्रयोदशभागैर्भोग्यखण्डं तदा शेषांशैः किमिति लब्धं गतखण्डयोगे योज्यं तत् फलं स्यात्। धनर्णोपपत्तिः स्पष्टी-करणाधिकारे उक्तैवास्ति। एव रविकेन्द्रादपि मन्दफलं साध्यम्। तत्र लाघववार्थमे-भिरेव खण्डैः रविकेन्द्रादपि फलं साध्यमित्युपपन्नम्। अत्र चन्द्र फलं केन भक्तं रविफलं स्यादिति ज्ञानार्थं सूर्यफलेन परमेण २।१०। चन्द्रपरमफले ५।२। भक्ते लब्धं द्वौ २। अतश्चन्द्रफलं द्व्याप्तम्। एवं द्विभक्तं चन्द्रफलम् २।३१। यदधिकम् ०।२१। तद्द्विभक्तस्य २।३१। षडंशाः स्वल्पान्तरात्। अत उक्तं स्वषडंशविवर्जि-तमिति। एवमुभयोः फलयोः संस्कृतिः कार्या तिथौ देयत्वात् ॥ १०

चन्द्रिका—मन्दफल साधन के लिए १७।१६।१४।१२।९।५।२ ये खण्ड हैं। वृत्त के भुजांश में १३ का भाग देने से प्राप्त लब्धि की संख्या के बराबर खण्डों का योग करके एक स्थान में रखें। शेष को अग्रिम खण्ड की संख्या से गुणा कर गुणनफल में १३ का भाग देकर लब्धि को खण्डों के योग में जोड़ने से चन्द्रमा का मन्दफल होता हैं। मेषादि ६ राशियों में मन्दफल धन तुलादि ६ राशियों में ऋण होगा।

रविकेन्द्र द्वारा उक्त खण्डो से उक्तरीति से साधित फल के आधे में उसी का षष्ठांश घटाने से शेष सूर्य का मन्दफल होगा। ऋण धन का ज्ञान पूर्ववत करें।

सूर्यमन्दफल का चन्द्रमन्दफल में संस्कार (दोनों धन हों या दोनों ऋण हो तो योग, एक धन और दूसरा ऋण हो तो अन्तर) करने से संस्कृत मन्दफल होगा। १०

उदाहरण—चन्द्रमन्दफल साधन-वृत्त (चन्द्रमन्दकेन्द्र) ११।६।५७।० इसे १२ राशि में घटाकर भुज ०।२३।३।० बनाया। भुजांश २३।३।० में १३ का भाग देने से लब्धि १ तथा शेष १०।३।० रहा। लब्धि तुल्य एक खण्ड १७ हुआ। ऐष्य खण्ड १६ से शेष १०।३।० को गुणाकर गुणनफल १६०।४८।० में १३ का भाग देकर लब्धि १२।२२।९ को गत खण्ड १७ में जोड़ने से २९।२२।९ चन्द्रमा का मन्दफल हुआ। वृत्त तुलादि है, अतः मन्दफल ऋण हुआ।

सूर्यमन्दफल साधन सूर्य ५।२०।३८।३७ को अपने मन्दोच्च २।१८ से घटाने से शेष ८।२७।२१।२३ सूर्य का मन्दकेन्द्र हुआ। इस में ६ राशि घटाकर २।२७।२१।२३ भुज बनाया। भुजांश ८७।२१।२३ में १३ का भाग देने से लब्धि ६ तथा शेष ९।२१।२३ बचा। लब्धि तुल्य ६ खण्डों का योग किया—

१७ + १६ + १४ + १२ + ९ + ५ = ७३

अग्रिमखण्ड २ से शेष ९।२१।२३ से गुणाकर गुणनफल १८।४२।४६ में १३ का भाग देने से लब्धि १।२६।२२ प्राप्त हुई। इसे गत खण्डों के योग

७३ में जोड़ कर ७४।२६।२२ के आधे ३७।२।११ में ६ का भाग दिया। लब्धि ६।१०।२० को फलार्ध ३७।२।११ में घटाने से ३०।५१।५१ सूर्य का मन्दफल हुआ। मन्दकेन्द्र तुलादि होने से मन्दफल ऋण हुआ।

संस्कृतमन्दफल—चन्द्रमन्दफल=२९।२२।९, सूर्य मन्दफल=३०।५१।५१। दोनों ही ऋणात्मक हैं अतः दोनों का योग (२९।२२।९ + ३०।५१।५१) = २।०।१४।० राश्यादि संस्कृत मन्दफल हुआ।

हारसाधनम्—

वृत्तैष्यदलाद्रसाप्तियुक्ता रहिताः कर्किमृगादिके च वृत्ते।
सगुणांशखवह्नयो हरः स्यादथ सूर्याच्चरपूर्वमुक्तवत् स्यात् ॥११

मल्लारिः—अथ हरं साधयति। वृत्तस्य यदैष्यं दलं भोग्यखण्डं तस्माद्या रसाप्तिः षडंशः। तेन सगुणांशाः संत्र्यंशाः खवह्नयस्त्रिंशत् कर्कि मृगादिके वृत्ते युक्ता रहिताः कार्याः। कर्क्यादिषड्भे युक्ता मकरादिषड्भे रहिताः सन्तो हरः स्यात् अथ सूर्याच्चरादिमानं चोक्तवत् पूर्ववत् साध्यम्।

अत्रोपपत्तिः—इयं फलसंस्कृतिस्तिथौ देयाऽतो घटीकरणार्थमनुपातः। यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदाऽऽभिः फलकलाभिः कति घटिकाः एवमत्र फलभागानां पूर्वं कलाकरणार्थं षष्टिर्गुणः। एतत् फलं पंचदशगुणितमस्ति सावयवत्वात् अतः पंचदश हरः। गुणहरयोहरेणापवर्तितयोर्जातो गुणः ४। इदानीं षष्टिर्गुणः। अतो गुणघातो जातो गुण। २४०। हरस्तु गत्यन्तर कलाः। तास्तु मध्यमा एव गृहीताः। गुणहरयोश्चतुर्विंशत्या अपवर्तितयोर्जातो गुणः १०। हरः ३०।२०। फल संस्कृतिर्दशहृत्यये उक्तमस्ति। अयं हरो साध्यः। अतः स्पष्टत्वं यथा। वृत्ताभोग्यखण्डं परमम् १७। इयं केन गुणं परमं गतिफलं भवति। अत्रेदं भोग्यखण्डं वेदैर्गुण्यं ततश्चतुर्विंशत्याऽपवर्तितगुणहरयोर्गुणेनापवर्त्तितयोर्जातो हरः षट्। इदं फलं सगुणांशखवह्निमिते हरे संस्कार्यम्। तत्र कर्क्यादिषट्के केन्द्रे गति फलं धनमतो युक्ता इति। मकरादिषट्के ऋणमतो रहिता इति। एवं जातः स्पष्टो हरः। अतो हि फलसंस्कृतिर्दशहता हारोद्धृता नाड्यः स्युरित्युपपन्नम् ॥११

चन्द्रिका—वृत्त के ऐष्य (अग्रिम) खण्ड के षष्ठांश को कर्कादि होने पर तृतीयांश सहित ३० अर्थात् २०।३० में जोड़ने तथा मकरादि केन्द्र में घटाने से हार होता है।

सूर्य से पूर्वोक्त* रीति से चर साधन करना चाहिए ॥ ११ ॥

उदाहरण—वृत्त का ऐष्यखण्ड = १६ इसमें ६ का भाग देकर लब्धि २।४० को मकरादि वृत्त होने के कारण ३०।२० में घटाने से (३०।२०–२।४०)=२७।४० हार हुआ।

चरसाधन—तात्कालिक अयनांश २३।३१।५७ को स्पष्ट सूर्य ५।२०।३८।३७ में जोड़ने से सायन सूर्य=६।१४।१०।३४। इसका भुज ०।१४।१०।३४ बनाया। भुज के राशिस्थान में ० है अतः भोग्यखण्ड ५७ हुआ। इससे भुज के अंशादि १४।१०।३४ को गुणाकर गुणनफल ८०८।२।२६ में ३० का भाग देकर लब्धि २६।५६ को ० में जोड़ने से २६।५६ चरफल सिद्ध हुआ। सायनसूर्य तुलादि राशियों में होने से चरफल २६।५६ धनात्मक हुआ। स्वल्पान्तरतः २७ पल ग्रहण करेंगे।

तिथिस्पष्टीकरणम्—

नाड्यः स्युः फलसंस्कृतिर्दशहता हारोद्धृताऽथो चरं
सायं लक्षणकं त्वथो विघटिकाः पश्चादृणं प्राग्धनम्।
स्वाङ्घ्र्यूनान्तरयोजनान्यथ तिथिः स्पष्टा त्रिभिः संस्कृता
तत्संस्कारघटीसमाश्च कलिका देया व्यगौ चोष्णगौ॥ १२

मल्लारिः—तदेवाह। फलयोः संस्कृतिर्दशगुणा स्पष्टहरभक्ता सती नाड्यः स्युः। अथो चरं सायं लक्षणकं विपरीतलक्षणम् धनं चेत् तदा ऋणमृणं चेत् तदा धनमिति। स्वांघ्रिणा स्वचरणेन ऊनानि रेखादेशान्तरयोजनानि। विघटिकाः पलानि। रेखातः पश्चात् स्वपुरे ऋणम्। पूर्वस्यां धनम्। एवं त्रिभिः फलैरपि संस्कृता तिथिः स्पष्टा स्यात्। तत्संस्कारस्तेषां फलानां यः संस्कारस्तद्घटीसमाः कलिका व्यगौ उष्णगौ च देयाः। १२

अत्रोपपत्तिः—फलनाडीकरणोपपत्तिः पूर्वमेवोक्ता। चरव्यस्तत्वे हेतुर्यथा। यद् ग्रहे ऋणं तत् तिथौ धनं यद्धनं तदृणं भोग्यत्वात्। अतश्चरं विपरीतम्। रेखास्वदेशान्तरोपपत्तिः पूर्वं प्रतिपादिताऽस्ति। तिथौ रविचन्द्रान्तराद्भवति। अतो गत्यन्तरादनुपातः। यदि भूपरिधियोजनैः ४८०० गत्यन्तरकला लभ्यन्ते तदा रेखास्वदेशान्तरयोजनैः किमिति। पुनर्घटीकरणायानुपातः। यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदाऽऽभिः किमिति गत्यन्तरकलातुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशः पुनरस्य फलस्य पलीकरणार्थं षष्टिर्गुणः। एवं गुणघातो गुणः ३६००। हरः ४८००। गुणहरौ द्वादशशता १२०० पवर्तितौ गुणः ३। हरः ४। अतः स्वाङ्घ्र्यूनानि

योजनानि पलानि स्युरित्युपपन्नम् । एतत् फलत्रयसंस्कृता तिथिः स्पष्टा भवतीत्युपपन्नम् । रविव्यगू मध्यमतिथ्यन्तकालीनो तयोः स्पष्टतिथिकालीनकरणार्थं फलसंस्कारघटीभिश्चालनं देयम् । अतो लाघवार्थं स्वल्पान्तरत्वात् संस्कारघटीसमाः कलाः सूर्ये व्यगौ देयास्तौ तात्कालिकौ मध्यमौ भवत इति । अतस्तयोः स्पष्टत्वार्थं फलमग्रे साधयति ।। १२

चन्द्रिका :—पूर्वसाधित फलसंस्कार को १० से गुणाकर गुणनफल को एकजातीय कर हार से भाग देने पर घट्यादिक फल होता है। (संस्कार धन हो तो फल धन, ऋण हो तो ऋण होता है) । पूर्वसाधित चरफल का धनर्णत्व विपरीत कल्पना करें (अर्थात् चरफल धन हो तो ऋण, ऋण हो तो धन) । अभीष्ट स्थान के देशान्तर योजन में उसी का चतुर्थांश घटाने से शेष तुल्य पल देशान्तर संस्कार होता है। अभीष्ट स्थान रेखा देश से पूर्व हो तो धन पश्चिम हो तो ऋण होता है। (तीनों फलों का परस्पर संस्कार करने से स्पष्ट संस्कार होता है) । स्पष्ट संस्कार का तिथि में संस्कार करने से स्पष्ट तिथि तथा संस्कार तुल्य कलादि संस्कार सूर्य और व्यगु में करने से क्रमशः सूर्य और व्यगु स्पष्ट होते हैं ।। १२

उदाहरण -पूर्वसाधित फलसंस्कार ६०।१४।० को १० से गुणाकर गुणनफल ६०२।२०।० को कलादि (३६१४०।०) बनाकर हार २७।४० के एक जातीय मान १६६० से भाग देने पर लब्धि घट्यादि २१।४६ संस्कार होगा । फलसंस्कार के ऋण होने से यह फल भी ऋण होगा ।

पूर्वसाधित चरफल २७ धन है अतः यहां ऋण २७ कल्पना किया ।

रेखा देश से काशी का देशान्तर ६४ योजन पूर्व है। अतः ६४ का चतुर्थांश १६ चौसठ में घटाने से शेष ४८ पल देशान्तर फल हुआ । काशी पूर्व है । अतः यह धनात्मक होगा ।

उक्त तीनों फलों का संस्कार—प्रथम संस्कार फल २१।४६ ऋण है। द्वितीय चरफल २७ है तथा तृतीय देशान्तर +४८ पल है। अतः दो ऋणात्मक फलों के योग में तीसरा +४८ पल घटाने से स्पष्ट संस्कार होगा—

– २१।४६
– ०।२७
– २२।१३
+ ०।४८
– २१।२५ स्पष्टसंस्कार ऋणात्मक

श्लोकोक्त नियमानुसार स्पष्टसंस्कार को स्पष्ट वारादि के घटी-पल में घटाने से स्पष्ट तिथि होगी—

वारादि ६।३०।४७
– २१।२५
६। ९।२२

अर्थात् शुक्रवार को स्पष्ट तिथिमान ९।२२ सिद्ध हुआ। इसी प्रकार २१।२५ का कलादि संस्कार करने से स्पष्ट सूर्य एवं व्यगु होंगे यथा—

सूर्य ५।२०।३८।३७ व्यगु ११।१३।२७।३०
—२१।२५ —२१।२५
संस्कृत सूर्य ५।२०।१७।१२ संस्कृत व्यगु ११।१३। ६। ५

रवि-व्यगुस्पष्टीकरणम्—

सस्वार्हल्लवमिनजं फलं युगघ्नं
लिप्तास्ताः कुरु च तयोः स्फुटौ च तौ स्तः।
विव्र्यंशद्वियुतहरे कृशानुभक्त-
श्चन्द्रस्य प्रभवति बिम्बमङ्गुलाद्यम् ॥ १३

मल्लारि :—इनात् सूर्याज्जायते तत् तथा। एवम्भूतं फलं स्वस्य अर्हल्लवेन चतुर्विशत्यंशेन युक्तं युगघ्नं चतुर्गुणित सत् ता लिप्ताः कलाः स्युः। तास्तयोः सूर्यविगतयोः कुरु तौ स्फुटौ स्तः। विव्र्यंशौ यौ द्वौ ताभ्यां युतो हरः कृशानुभिस्त्रिभिर्भक्तः सन् फलमङ्गुलाद्यं चन्द्रस्य बिम्बं प्रभवति।

अत्रोपपत्तिः—अत्र रविफलं पञ्चदशभिर्भाज्यं पूर्वं पञ्चदशगुणितत्वात् ततः कलार्थं षष्टिगुणः। गुणहरयोर्हरेणापवर्त्तितयोर्गुणः ४। अतो युगघ्नमिति। अत्र प्रथमं रविफलं परमेतावत् २।५।३१ धृतम्। एतन्मित धार्यम् २।१०।३१ अनयोरन्तरमिदम् ।०।५। इदं चतुर्विशत्या सवर्णितं जातं द्वयं फलं तुल्यमेव। अतः सस्वार्हल्लवमिति। ताः फलकलाः रविव्यग्वोर्देयास्तौ स्फुटौ भवतः। अथ चन्द्रबिम्बस्योपपत्तिः—अत्र गतेर्बिम्बानयनं कार्यमित्यत्र हरोऽपि गतिखण्डमतो हरादनुपातः। यद्यस्मिन् मध्ये हरे ३०।२०। इदं चन्द्रबिम्बं १०।४०। तदेष्टस्य

स्पष्टहरे किमिति। अत्र गुणाद्धरो हि त्रिगुणासन्नोऽतोऽत्रवित्र्यंशौ द्वौ क्षेप्यौ। ततस्त्रिगुणं चन्द्रविम्बं भवति। अत्र उक्तं वित्र्यंशद्वियुतहरः कृशानुभक्तश्चन्द्र-विम्बमिति ॥ १३

चन्द्रिका—अपने चौबीसवें भाग से युक्त पूर्वसाधित सूर्य मन्दफल को चार से गुणा करने पर कलादि होता है। इस कलात्मक फल का संस्कार सूर्य और व्यगु में करना चाहिये।

तृतीयांश से रहित २ अङ्गुल अर्थात् १।४० हार में जोड़कर ३ का भाग देने से लब्धि चन्द्रमा का अङ्गुलादि बिम्ब होता है ॥ १३

उदाहरण—पूर्वसाधित सूर्य का मन्दफल ३०।५१।५१ में २४ का भाग देने से लब्धि १।१७।९ को ३०।५१।५१ में जोड़कर ३२।९।० को ४ से गुणा करने से कलादि फल १२८।३६।० हुआ। अंशादि बनाने से २।८।३६ हुआ। संस्कृत सूर्य ५।२०।१७।१२ में अंशादि फल २।८।३६ घटाने से शेष ५।१८।८।३६ स्पष्ट सूर्य तथा संस्कृत व्यगु ११।१३।६।५ में २।८।३६ घटाने शेष ११।१०।५७।२९ स्पष्ट व्यगु हुआ।

चन्द्रविम्ब साधन—तृतीयांश रहित २ अंगुल अर्थात् १४० में हार २७।४० जोड़कर २९।२० में ३ का भाग देने से लब्धि ९।४६ चन्द्रमा का अङ्गुलादि विम्ब हुआ।

रविभूभाविम्बसाधनम्—

खाब्ध्याप्तार्कागतदलयुतोना: स्वकेन्द्रे कुलीर-
नक्राद्ये स्याद्व्यरिलवभवा अङ्गुलाद्यर्कविम्बम्।
हारो वीषुः स्वतिथिलवयुक् स्यात् कुभाऽस्यां धनर्णं
खाक्षाप्तार्कागतदलमतो नक्रकर्यादिकेन्द्रे ॥ १४

मल्लारिः—अथ सूर्यविम्बभूभाविम्बे साधयति। खाब्धिभिश्चत्वारिंशता ४० आप्तं भक्तं च तदर्कस्य अगतदलं भोग्यखण्डं तेन व्यारेलवभवा विषड्लवा एकादश युक्तोनाः कार्याः। कदेत्याह। स्वकेन्द्रे सूर्यस्य मन्दकेन्द्रे कुलीरनक्राद्ये सति। कर्काद्ये युता मकराद्य ऊनाः सन्तोऽअंगुलादि सूर्यविम्बं स्यात्। विगता इषवः पञ्च यस्मात् स तथा। एवम्भूतो हरः स्वस्य तिथिलवेन पंचदशांशेन युक् कुभा स्यात्। अस्यां कुभायां खाक्षैः पञ्चाशताऽऽप्तं भक्तं यदर्कस्य अगतदल

भोग्यखण्डं तत् नक्रकर्क्यादिकेन्द्रे धनर्णं कार्यम्। मकरादौ धनं कर्क्यादौ ऋणम्। तत् भूछायाविम्बं भवति।

अत्रोपपत्तिः—मध्यगतिप्रमाणेन रवेर्मध्यविम्बमिदम् १०।५०। यदि मध्यगत्या इयं तदा स्पष्टगत्या किम्। अत्र भोग्यखण्डपरमत्वे गतिफलपरमत्वमित्यत्र भोग्यखण्डात् गतिफलं प्रसाध्य विम्बं साध्यम् तदत्र परमं विम्बम् ११।१५। अनयोर्मध्यस्पष्टयोरन्तरम्। ०।२५। इदं परमभोग्यखण्डस्यास्य १७। चत्वारिंशत्तमो भागः। अयं मध्यविम्बे देयः कर्क्यादौ गतिफलं धनमतो युतो युक्तः। मकरादौ गतिफलमृणमतो हीनः। एवं रविविम्बं भवति। अथ भूभाविम्बोपपत्तिः। अत्र चन्द्रमध्यगतिवशात् जातं भूभाखण्डमेकम्। २७। इदं मध्यहरस्य ३०।२०। पञ्चोनितस्य स्वतिथिलवयुक्तस्य समं भवति। अतो हि स्पष्टहरादेवं साध्यम्। तदत्र सूर्यगतिफलोत्थं विम्बं भूछायायामस्यां देयम्। तत्र सूर्य भोग्यखण्डस्य पंचदशांशं देयमिति दृश्यते। यतो हि परमं भोग्यखण्डमिदम् १७। त्र्यंशोनाष्ट-७।४० भक्तं रविगतिफलं भवति। २।१३। तदापि सप्तभक्तं भूभाखण्डं भवति। अतोऽयं हरघातो हरः ५०। भोग्यखण्डं पंचाशद्भक्तं तत्र भूभाखण्डे देयः। मकरादौ ऋणफलं गतेः। अतस्तद् भूभायां युज्यते। कर्क्यादौ धनं फलं तद्भूभायां न्यूनं भवति ॥ १४

चन्द्रिका—रविमन्दफल साधन के समय जो ऐष्य खण्ड हो उसमें ४० से भाग देकर लब्धि को षष्ठांश रहित ११ अङ्गुल अर्थात् १० अंगुल ५० व्यंगुल में कर्कादि केन्द्र होने पर जोड़ने से तथा मकरादि केन्द्र में घटाने से अङ्गुलादि रविबिम्ब होता है।

हार में ५ घटा कर शेष में उसीका पन्द्रहवां अंश जोड़ने से भूभा होती है। किन्तु मकरादि केन्द्र हो तो उस भूभा में ऐष्य खण्ड का पचासवां भाग जोड़ने से तथा कर्कादि केन्द्र हो तो घटाने से वास्तव भूभा होती है ॥ १४

उदाहरण—रविमन्दफल साधन के समय पठित खण्डों में ६ गत खण्ड हुए थे शेष सातवां खण्ड २ ऐष्य खण्ड है। २ में ४० का भाग देने से लब्धि ०।३ को षष्ठांश रहित ११ अङ्गुल अर्थात्, १०।५० में युक्त किया (सूर्य का कर्कादि केन्द्र होने से)—

१०।५०
०। ३
१०।५३ अङ्गुलादि रविविम्ब

वास्तव भूभा साधन—हार २७।४० में ५ घटाकर शेष २२।४० में इसी का पंचदशांश १।३० जोड़ने से २४।१० भूभा हुई। ऐष्य खण्ड २ में ५० का भाग देने से लब्धि ०।२ को कर्कादि केन्द्र होने से भूभा २४।१० में घटाने से शेष २४।८ वास्तव भूभा हुई।

ग्रहणसम्भवज्ञानम् —

ज्ञात्वैवं तिथिपूर्वकं ग्रहणजं शेषं भवेत् पूर्ववत्
षण्मासैरुत पक्षवर्जितयुतैः पक्षेऽथ वाऽऽलोकयेत्।
अर्केन्दुग्रहणं व्यगोर्भुजलवैस्तिथ्यल्पकैरुष्णगो-
र्याम्यैर्वस्वधरैर्द्युरात्रिगतिथौ चाहर्निशामाश्रिते ॥१५

मल्लारिः—एवं बिम्बादि प्रसाध्येदानीं ग्रहणसम्भूतिमाह। एवं तिथिपूर्वकं ज्ञात्वा शेषं ग्रहणजं शरस्थित्यादि पूर्ववत् चन्द्रग्रहणोक्तवद् भवेत्। अर्केन्द्वोः सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणं षण्मासैर्ग्रहणादन्यद्ग्रहणम्। अथवा पक्षवर्जितयुतैः षण्मासैः सार्धपञ्चमासैः सार्धषण्मासैर्वा आलोकयेत् ग्रहणसम्भूतिपश्येत्। तत्सम्भवमाह। व्यगोर्भुजभागैस्तिथ्यल्पकैः सद्भिर्ग्रहणम् तु विशेषे उष्णगोः। सूर्यस्य ग्रहणे व्यगुभुजभागैर्याम्यैर्दक्षिणगोलजैर्वस्वधरैः सद्भिर्ग्रहणम्। तद्यथा। सूर्यग्रहणे यदा व्यगुरुत्तरगोले तदा तद्भुजांशैस्तिथ्यल्पकैरेव ग्रहणम्। यदि याम्या भुजभागास्तदाष्टाधिकत्वे ग्रहणसम्भवो नास्तीत्यर्थः। द्युरात्रिगतिथौ सत्याम्। सूर्यग्रहणं तु दिवा तिथौ सत्यां भवति। चन्द्रग्रहणं तु रात्रौ तिथौ सत्यां भवति। अथ वा अहर्निशं तिथौ आश्रिते किञ्चित् दिनरात्रिस्पर्शे तिथौ सति सूर्यचन्द्रग्रहणे भवत इति व्याख्या ॥ १५

चन्द्रिका—इस प्रकार तिथि बिम्बादि का ज्ञान प्राप्तकर ग्रहणसम्बन्धी शर-स्थिति-मर्दादि का ज्ञान चन्द्रग्रहणोक्त रीति से करना चाहिये। ग्रहण साधन करने के पश्चात् ६ मास में, या साढ़े पांच महीने में, साढ़े छः मास अथवा १ पक्ष में ही पुनः अन्य ग्रहण की सम्भावना करनी चाहिये।

यदि व्यगु भुजांश १५ अंश से कम हो तो ग्रहण की सम्भावना होती है। यदि दक्षिण दिशा के व्यगु का भुजांश ८ अंश से अल्प हो तो सूर्य ग्रहण सम्भव होता है।

सूर्यग्रहण की सम्भावना होने पर तिथिमान दिनमान से यदि अल्प हो तथा चन्द्रग्रहण में तिथिमान रात्रिमान से अल्प हो तो ग्रहण की गणना करनी चाहिये ॥ १५

ग्रासमानसाधनम्—

सत्र्यंशगुणोनितो हरोऽयं वेदघ्नोऽङ्कहृतो व्यगोर्भुजांशैः।
हीनो भवताडितोऽद्रिहृत् स्याच्छन्नं शीतरुचोऽङ्गुलादिकं वा ॥ १६

मल्लारि :— अथ ग्रासं साधयति। अयं हरः सत्र्यंशैर्गुणास्त्रिभिरूनितस्ततो वेदैश्चतुर्भिर्हन्यते स तथा ततोऽङ्कैर्नवभिर्हृता भक्तो व्यगुभुजांशैर्हीनः कार्यः। चेद्धीनो न स्यात् तदा ग्रहणमेव नास्ति। ततः स भवैरेकादशभिस्ताडितो गुणितः। अद्रिहृत् सप्तभक्तः। फलं शीतरुचश्चन्द्रस्याङ्गुलादि छन्नं वा प्रकारान्तरेण स्यात् ॥ १६

अत्रोपपत्तिः—शरोनं मानैक्यखण्डं ग्रास इति मुख्ययुक्तिः। तदत्र मध्यमं मानैक्यखण्डमिदम् १८।५२। अत एव भागाः साधिता विलोमविधिना। शरवद्व्यगुभुजभागा भवघ्नाः सप्तभक्ताः शरो भवति। अतो व्यस्तविधिना मानैक्यखण्डं सप्तगुणमेकादशभक्तं जाता भागाः १२। एते मध्यहराद्यथाऽऽगच्छन्ति तथा कार्यम्। अतो मध्यहरे सत्र्यंशगुणोनिते सति सप्तविंशतिर्यावत् चतुर्गुणा नवभिर्भज्यते तावद् द्वादश भागा एव भवन्ति। अतः सत्र्यंशगुणोनितश्चतुर्गुणो नवभक्तो भागः स्युस्तेभ्यो व्यगुभुजभागा ऊनाः कार्याः। शरस्य न्यूनीकर्त्तव्यत्वात् ततो भागा भवगुणाः सप्तभक्ताश्छन्नमङ्गुलाद्यं चन्द्रस्य भवतीत्युपपन्नम् ॥ १६

चन्द्रिका :— तृतीयांश सहित तीन अर्थात् ३।२० को हार में घटाकर शेष को ४ से गुणाकर गुणनफल में ९ का भाग देकर लब्धि में व्यगु के भुजांश घटाकर शेष को ११ से गुणा कर ७ का भाग देने से लब्धि चन्द्रमा का अङ्गुलादि ग्रास मान होता है। १६

उदाहरण—(१) हार २७।४० में ३।२० को घटाकर शेष २४।२० को ४ से गुणा किया। गुणनफल ९७।२० में ९ का भाग देने से लब्धि १०।४८ प्राप्त हुई।

व्यगु ११।१०।५२।३ को १२ राशि में घटा कर भुज बनाया। भुजांश १९।७।५७ को पूर्व प्राप्त लब्धि १०।४८ घटाने से ग्रास होगा। किन्तु प्रस्तुत उदाहरण में लब्धि १०।४८ अल्प है तथा भुजांश १९।७।५७ अधिक है अतः यहां चन्द्रग्रहण का अभाव होगा।

(२) यदि वृत्त १।१३।११।४९ हो तो गत खण्ड ३ होंगे चौथा ऐष्य खण्ड १२ से षष्ठांश २ को ३०।२० में जोड़ने से ३२।२० हार हुआ। व्यगु ११।२६।२६।३४ का भुज ०।३।३३।२६ हुआ।

पूर्वोक्त रीति से हार ३२।२० में ३।२० को घटाकर शेष २९।० को ४ गुणा कर गुणनफल ११६।० में ९ का भाग देकर लब्धि १२।५३ में व्यगु भुजांश ३।३३।२६ को घटाकर शेष ९।१९।३४ को ११ से गुणा कर गुणनफल १०२।३५।१४ में ७ का भाग दिया लब्धि १४।३०।१९ अङ्गुलादि चन्द्रमा का ग्रास हुआ।

सूर्यग्रहणे स्थूलग्रासमानसाधनम्—

अमान्तनतनाडिकाङ्घ्रिरहिताद्युतात् प्राक् परे
गृहादिकरवेर्नतांशकरसांशसंस्कारिता.।
व्यगोर्भुजलवाः स्फुटा स्युरथ सप्तशुद्धाश्च ते
निजार्धसहिता रवेः स्थगितमङ्गुलाद्यं स्फुटम् ॥ १७

मल्लारि:—अथ रविग्रहणे ग्रासानयनं स्थूलमाह। दर्शान्तकालीनं यन्नतं तस्य नाडिका घटिका यास्तासामंघ्रिश्चतुर्थांशो राश्यादिस्तेन प्राक् पूर्वनते रहिताद् गृहादिकात्। रवेः सूर्यात्। परे पश्चिमनते युताद्ये नतांशकाः स्युः। तस्य क्रान्तिरक्षांशैः संस्कृता नतांशा भवन्ति। तेषां नतभागानां यो रसांशकाः षडंशस्तेन व्यगोर्भुजलवाः संस्कारिताः। एकदिशोर्योगो भिन्नदिशोरन्तरमिति। ते स्फुटाः स्युः। ततस्ते सप्तभ्यः शुद्धाः कार्याः। यदि न शुध्यन्ति तदा ग्रहणमेव नास्ति। ते निजेन अर्धेन सहिताः सन्तो रवेरंगुलादिकं स्फुटं स्थगितं ग्रासः स्यात्। इति व्याख्या।

अत्रोपपत्तिः—अत्र रविग्रहणे लम्बननतिसाधनं विना ग्रहणसम्भवोऽपि न ज्ञायते। अतः स्थूले लम्बननती साध्यते। नतघटीनां चतुर्थांशो लम्बनं तद्दर्शान्ते देयम्। पुनस्तत्कालीननताद्यः पञ्चमांशः स रवौ पूर्वकपाले यावत् न्यूनीक्रियते पश्चिमकपाले युक्तः क्रियते तत् त्रिभोनलग्नं भवति। अत्र चतुर्थांशसंस्कृतस्य तस्य पञ्चमांशः केवलं चतुर्थांशतुल्य एव भवति। अतो नतघटीनां चतुर्थांशः पूर्वापरे नते रवौ हीनाधिकः कार्यः तत् त्रिभोनलग्नं स्यात्। तस्य नतांशाः कार्याः। तेभ्यो नतिः साध्या सा शरेण संस्कार्या। स स्पष्टशरो मानैक्यखण्डान्निष्कासनीयो ग्रासः स्यादित्यत्र लाघवार्थं नतभागोत्थनतिभागैर्व्यगुभुजभागा ये ते विहीनाः कृताः। तद्यथा-नतभागानां चतुर्थांशः स्थूलाः नतिर्भवति। नतिस्तु स्पष्टशरखण्डम्। अतोऽस्याः भागकरणार्थं सप्तगुण एकादश हरः। पूर्वं चत्वारो हरः। एवं जातो हरघातो हरः ४४। गुणहरयोर्गुणेनापवर्त्तितयोर्लब्धा हरस्थाने षट्। अतो नतांशरसांशसंस्कारिता व्यगुभुजभागाः स्युरिति। अत्र रवेर्मानैक्यखण्डमिदम् ।११। मध्यं कियद्भ्यो भुजभागेभ्यः स्यादिति ज्ञानार्थं सप्तगुणमेकादशभक्तं जाता भागाः सप्त ७। अत एतेषु भागेषु सप्तभ्यो न्यूनेस्वेव ग्रहणम्। अतः सप्तशुद्धाः। शरार्थं स्थूलत्वात् निजार्धसहिता इति तत् अंगुलादिकं सूर्यग्रहणे छन्नं भवतीत्युपपन्नम्॥ १७

चन्द्रिका—दर्शान्तकालिक पूर्वनत घटी के चतुर्थांश राश्यादि सूर्य में घटाकर तथा दर्शान्तकालिक परनत घटी के चतुर्थांश को राश्यादि सूर्य में जोड़कर जो फल प्राप्त हो, उससे क्रान्ति साधन कर क्रान्ति एवं अक्षांश संस्कार द्वारा नतांश साधित कर उसके षष्ठांश को व्यगु के भुजांश में संस्कार (एक ही दिशा के व्यगु और नतांश हो तो योग, भिन्न दिशा के हों तो अन्तर) करने से स्पष्ट व्यगु भुजांश होता है। स्पष्ट व्यगु भुजांश को ७ में घटाकर शेष में उसी का आधा जोड़ने से सूर्य का अङ्गुलादि स्थूलग्रास मान होता है। १७

उदाहरण—अमान्तघटी २५।१० दिनमान ३२।५५ दिनार्ध १६।२७।३०। स्पष्ट सूर्य ०।१५।४१।३५। अमान्त घटी में दिनार्ध घटाने से परनत हुआ—

२५।१०	
१६।२६	
८।३३	पर नत

परनत ८।३३ के चतुर्थांश २।८।१५ को स्प. सूर्य ०।१५।४१।३५ में जोड़ने से—

०।१५।४१।३५।
२। ८।१५ परनत होने से धन
२।२३।५६।३५

इससे क्रान्ति साधन करने के लिए इसके भुजांश ८३।५६।३५ में १० का भाग देने से लब्धि ८ तथा शेष ३।५६।३५ रहा। आठवां गताङ्क २३६ ऐष्याङ्क २४० में घटाकर शेष ४ से पूर्व शेष ३।५६।३५ को गुणाकर गुणनफल १५।४६।२० में १० का भाग देने से लब्धि १।३४।३८ को गताङ्क २३६ में जोड़कर योगफल २३७।३४।३८ में पुनः १० का भाग देने से लब्धि २३।४५।२७ क्रान्ति हुई मेषादि सूर्य होने से उत्तरा क्रान्ति हुई।

काशी का दक्षिण अक्षांश २५।२६।४२ क्रान्ति और अक्षांश की भिन्न दिशा होने से दोनों का अन्तर किया—

द. अक्षांश	२५।२६।४२
उ. क्रान्ति	२३।४५।२७
	१।४१।१५ शेष दक्षिण नतांश

दक्षिण नतांश १।४१।१५ के षष्ठांश ०।१६।५२ को व्यगु भुजांश में जोड़ेगे।

उत्तर व्यगु ५।२६।१६।५८ का भुज = ०।३।४३।२।

व्यगु उत्तर दिशा तथा नतांश दक्षिण दिशा का है, अतः भिन्न दिशा होने से व्यगु भुजांश ३।४३।२ में नतांश के षष्ठांश ०।१६।५२ को घटाने से २।२६।१० स्पष्ट भुजांश हुआ। इसे ७ में घटाकर शेष ४।३३।५० में इसी का आधा २।१६।५७ जोड़ने से अंङ्गुलादि ६।५०।४७ सूर्य का ग्रास हुआ।

पर्वेशानयनम्—

व्यगुमध्यपर्ययगणो द्विगुणो वणिगादिगे व्यगुगृहे कुयुतः।
स्मृतचक्रसंज्ञकयुतो विधितो गतपर्वपो मुनिहृतोर्वरितः ॥१८

मल्लारिः—अथ पर्वेशानयनमाह। क्षेपचक्रघ्नध्रुवयुक्तस्य व्यगोर्मध्यो यः पर्ययगणः मध्यग्रहानयने राशयो द्वादशभिर्भज्यन्ते फलं पर्ययाः। स पर्ययगणो द्विगुणः कार्यः। वणिगादिगे तुलादिषड्भस्थे व्यगुगृहे सति कुयुत एक युतस्तोऽसौ स्मृतं यच्चक्रसंज्ञं तेन युतः। ततो मुनिहृतोर्वरितः सप्ततष्टावशिष्टः सन् विधितो ब्रह्मणः सकाशात् शेष तुल्यो गतः पर्वग्रहणं पाति तथा पर्वेशः स्यात्। पर्वेशाः सप्त ७। उक्तं च वराहसंहितायाम्—

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवता क्रमशः।
ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः* ॥

अत्रोपपत्तिः—मासषट्केन एकः पर्वेशः वर्षमध्ये द्वौ। वर्षमध्ये तु व्यगुपर्ययोऽप्येकः। अतः सद्विगुणः पर्वेशः स्यादित्युपपन्नम्। स राशिषट्कस्थ एव यतो राशिषट्कानन्तरमेकवृद्धिः। अतस्तुलादिगे व्यगौ कुयुत इति। अत्रैकादशवर्षात्मकचक्रमध्ये द्वाविंशतिः पर्वेशाः। ते सप्ततष्टाः। एकश्चक्रतुल्य एव भवति। अतश्चक्रयुत इति पर्वेशाः सप्त। अतः सप्ततष्ट इत्युपपन्नम्। नन्वत्र चक्रोत्पन्नपर्वेशस्य योजितत्वात्। पूर्वं चक्रघ्नध्रुवयोगो नोपपद्यत इति चेत्। भ्रान्तोऽसि। नह्येकचक्रे निरवयवैकादश भगणा येन चक्रोत्थवर्षेशयोगे चक्रघ्नध्रुवयोगोऽनर्थकः स्यात्। किन्त्वेतावान् भगणादिव्यगुः ११।७।१।१२। तत्र राश्यादिरयं ध्रुवः ७।१।१२। चक्रघ्नः पूर्वयोजित इदानीं चक्रघ्नैकादश योज्याः। आचार्येण त्वेकादशोत्थपर्वेश एकश्चक्रघ्नः पर्वेश योजितस्तदपि युक्तमेव। नन्वेवं ग्रन्थादिजव्यगुभगणानां तदुत्पन्नपर्वेशस्य वा योजनैः प्रसज्येत। बाढम् तदुत्थपर्वेश इति वराहोक्तेर्मासशब्दस्य चान्द्रे मुख्यत्वात्। चान्द्रवर्षे द्वौ पर्वेशाविति गम्यते न पुनरेकस्मिन् भगण इति। न चैकवर्षे व्यगुभगणोऽप्येक इति वाच्यं गणितेनाधिक्यदर्शनात्। अत एक भगणे पर्वेशद्वयं न युक्तमिति चेत्। अत्र ब्रूमः ब्रह्मेन्दुशुक्रवित्तेशवरुणाग्नियमाः क्रमात्। फणीनभगणैर्व्ययघ्नद्विमितग्रहणाऽधिपाः इति ब्रह्मसिद्धान्तोक्तिश्रवणादेकभगणे द्वौ पर्वेशावित्येव युक्तम्। वराहोक्तिर्यथाकथंचिन्नेयेति विस्तरभयाद्विरराम ॥१८

चन्द्रिका—मासगणोत्पन्न व्यगु के मध्यमभगण की संख्या को २ से गुणाकर गुणनफल में, यदि तुलादि ६ राशियों में व्यगु हो तो १ राशि जोड़कर उसी में चक्र संख्या भी जोड़कर ७ का भाग देने से शेषसंख्या तुल्य ब्रह्मा आदि गत पर्वेश होते हैं। यथा १ शेष हो तो ब्रह्मा, २ हो तो

* वृ. सं. ५. १९।

चन्द्र, ३ इन्द्र, ४ कुबेर, ५ वरुण, ६ अग्नि, तथा ७ शेष हो तो यम गत पर्वेश होते हैं। १८

विशेष—भगण-द्वादश राशियों में जब ग्रह भ्रमण कर लेता है तब उसका १ भगण पूर्ण हो जाता है। अर्थात् ०°–३६०° तक एक भगण होता है। मध्यम ग्रहसाधन करते समय राशिस्थान में जितनी संख्या हो उसे १२ से भाग देने पर लब्धि भगण संख्या होती है।

उदाहरण--मध्यम व्यगु ८३।१३।२७।३० राशिस्थान में ८३ है अतः १२ से विभक्त करने पर लब्धि ६ भगण संख्या तथा शेष ११ राशि संख्या। अतः राश्यादि व्यगु = ११।१३।२७।३०।

पर्वेशसाधन—भगणसंख्या ६ को द्विगुणित किया ६×२=१२। व्यगु तुलादि राशियों में है अतः गुणनफल १२ में १ और जोड़ने से १२+१=१३।

चक्र संख्या ४१ + १३ = फल ५४ में ७ का भाग देने से लब्धि ७ तथा शेष=५। पूर्वोक्त क्रम से शेष तुल्य पाचवाँ देवता वरुण गत पर्वेश तथा अग्नि वर्तमान पर्वेश हुआ।

सूर्याच्चन्द्रादिसाधनम्—

तिथिरविहृतिरंशास्तद्युतोऽर्को विधुः स्या-
दथ जिनगुणहारोद्व्यङ्गयुक् तद्गतिः स्यात्।
खचरशरकलाः स्यात् सूर्यभुक्तिस्ततः स्यु-
र्भयुतिजगतगम्या नाडिकास्तिथ्यपायात्॥ १९

मल्लारि :—अथ सूर्याच्चन्द्रं साधयति। द्वादशगुणा तिथि संख्या भागाः स्युः। तैर्भागैर्युक्तोऽर्को विधुश्चन्द्रः स्यात्। अथ जिनैश्चतुर्विंशत्या गुण्यते स तथा। एवम्भूतो हारो द्व्यंगैर्द्विषष्ट्या युक्तस्य चन्द्रस्य गतिः स्यात्। खचरशरा एकोनषष्टिकलाः सूर्यस्य भुक्तिर्गतिः स्यात्। सूर्यचन्द्राभ्यां भयुतिजा नक्षत्रयोगजा गतगम्या घटिकास्तिथेरपायादन्तात् स्युर्न सूर्योदयात्। यतो रविचन्द्रौ तिथ्यन्तकालीनौ ताः स्थिति घटो संस्कृताः सूर्योदयान्नक्षत्रयोग-घटिकाः स्युरित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—सूर्यचन्द्रान्तरे द्वादशभागतुल्ये एक तिथिर्भवति। अतो द्वादशगुण तिथिः सूर्यचन्द्रान्तरभागास्ते रवौ यावत् क्षिप्यन्ते तावच्चन्द्रो भवति। अत्र गत्यन्तरं चतुर्विंशति भक्तं हारः कुतोऽस्ति। अतो जिनगुणो हारो गत्यन्तरम्। तत्र सूर्यगतिर्योज्या चन्द्रगतिः स्यादित्यत्र द्वयंगमिता सूर्यगतिः प्रकल्पिता। अतो द्वयंगयुगित्युपपन्नम्॥१९

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य मासौघतः पर्वयुगं समाप्तम्॥

चन्द्रिका तिथि को १२ से गुणाकर अंशादि गुणनफल को सूर्य में जोड़ने से चन्द्रमा होता है। पूर्व साधित हार को २४ से गुणा कर गुणनफल में ६२ जोड़ने से चन्द्रमा की स्पष्ट गति होती है। सूर्य की गति ५९ कला है। तिथ्यन्तकालिक सूर्यचन्द्र द्वारा नक्षत्र तथा योग की गत गम्य घटी का ज्ञान करना चाहिये। १३

उदाहरण—तिथि ३०×१२=३६० अंशात्मक हुआ। इसमें ३० का भाग देकर राश्यादि १२।० को स्पष्ट सूर्य ०।१५।४१।३५ में जोड़ने से ०।१५।४१।३५ तिथ्यन्त कालिक चन्द्रमा हुआ।

हार ३२।२० को २४ से गुणाकर गुणनफल ७७६।० में ६२ जोड़ने से ८३८।० चन्द्रमा की गति हुई।

सूर्य की गति ५९।० पठित ही है।

नक्षत्रसाधन रविचन्द्रस्पष्टाधिकार के नवमश्लोक के अनुसार तिथ्यन्तकालिक चन्द्रमा १।१५।४१।३५ को कलात्मक बनाकर ८०० से भाग दिया—

८००)९४१।३५(१
८००
———
१४१।३५

लब्धि १ है अतः अश्विनी गतनक्षत्र हुआ। वर्तमान भरणी। शेष १४१।३५ भरणी नक्षत्र की भुक्त कला। भुक्त कला को ८०० में घटाने से शेष ६५८।२५ भोग्य कला हुई।

*ग्र ल. २. ८. ९

गत कला १४१।३५ को एक जातीय कर ८४९५ को ६० से गुणाकर ५०९७०० में चन्द्रमा की गति विकला ५०२८० से भाग देने पर प्राप्त लब्धि १०।८ भरणी नक्षत्र की गत घटी हुई।

इसी प्रकार भोग्यमान ६५८।२५ की विकला ३९५०५ को सजातीय करने के लिए पुनः ६० से गुणाकर २३७०३०० में गति विकला ५०२८० से भाग देने से प्राप्त लब्धि ४७।८ भरणी नक्षत्र का भोग्य मान हुआ दोनों का योग करने से ४७।८+१०। ८=५७।१६ भरणी नक्षत्र का पूर्णमान हुआ।

योगसाधन—रवि० ०।१५।४१।३५ चन्द्र ०।१५।४१।३५ दोनों का योग १।१।२३।१० चन्द्रगति ८३८।० सूर्य ग. ५९।० गतियोग ८९७।०

रविचन्द्र योग की कला १८८३।१० में ८०० का भाग देने से लब्धि २ गतयोग अर्थात् प्रीति योग गत हो चुका था। शेष २८३।१० वर्तमान आयुष्मान् योग का गत मान हुआ।

शेष को ८०० में घटाने से शेष ५१६।५०=भोग्यमान। गतमान २८३।१० की विकला में ६० का गुणा कर गुणनफल १०२१८०० में गति योग विकला ५३८२० का भाग देने से लब्धि १८।५९ गत घटी तथा भोग्यमान की विकला १८६०६०० में सूर्य चन्द्र की गतियोग विकला ५३८२० का भाग देने से लब्धि ३४।३४ अयुष्मान् योग की भोग्य घटी हुई। दोनों का योग करने से (१८।५९+३४।३४)=५३।३३ आयुष्मान् योग का पूर्ण मान हुआ।

श्रीगणेशदैवज्ञविरचित ग्रहलाघव के मासगणाधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण। ७

८—ग्रहणद्वयसाधनाधिकारः

पञ्चाङ्गाद् ग्रहणद्वयसाधनम् —

अथवाऽयं तिथिपत्रतोऽवगम्यः पर्वान्तश्च रविस्तमस्तिथेर्वा ।
भस्यैतैष्यघटीयुतिर्द्युमानं तेभ्योऽथ ग्रहणद्वयं प्रवच्मि ॥ १

मल्लारि :—अथ केवलं पञ्चाङ्गादेव लघुकर्मणा ग्रहणद्वयं साधयति अथ वाऽयं पर्वान्तो दर्शान्तः पौर्णमास्यन्तश्च । रविः सूर्यः । तमो राहुस्तिथेर्वा । भस्यैतैष्यघटीयुतिः । गतैष्यघटीयोगश्च ज्ञेयः । तिथिपत्रस्थद्युमानमपि ज्ञेयम् । तेभ्यो ज्ञातेभ्यो ग्रहणद्वयं प्रवच्मीत्यर्थः ॥ १

चन्द्रिका :—अथवा (पूर्वोक्त ग्रहणाधिकार मासगणाधिकार में बताये गये नियमों के अनन्तर) पञ्चाङ्ग द्वारा पर्वान्त (अमान्त या पूर्णान्त) काल, रवि, राहु, तिथि, नक्षत्र के गत घटी, ऐष्य घटी, एवं उनके योग तथा दिनमान का ज्ञान कर दोनों ग्रहणों का साधन करना चाहिए ॥ १

उदाहरण—संवत् २०३४ शके १८९९ फाल्गुन शुक्ल १५ शुक्रवार को ग्रहण साधन अभीष्ट है । शुक्रवार का पञ्चाङ्ग निम्नलिखित है—

दिनमान ३०।१६ ति. १५ शुक्रवार ३८।३० उ फा. ३७।५८

गत तिथिमान ३९।१५ को ६० में घटाने से शेष २०।४५ वर्तमान पूर्णिमा की गत घटी हुई । गत २०।४५ तथा भोग्य ३८।३० का योग= ५९।१५ तिथि का पूर्ण भोग ।

इसी प्रकार गतनक्षत्र घटी ३७।५ को ६० में घटाने से शेष २२।५५ वर्तमान नक्षत्र की गतघटी ।

पर्वान्तकाल ३८।३० पञ्चाङ्गस्थ सूर्य ११।९।२८।४२ गति ५९।२५ पर्वान्तकालिक सूर्य ११।१०।६।४९ पर्वान्तकालिक राहु ५।१२।३७।२० ।

चन्द्रस्य ग्रासंसाधनम्—

ताराषड्व्यगतिथियातगम्यनाडी-
योगाप्ता व्यगुरविदोर्लवोनितास्ते ।
संयुक्ता निजदलभूपभागकाभ्यां
छन्नं वाङ्गुलवदनं भवेत् सुधांशोः ॥ २

मल्लारि :—छन्नसाधनमाह-सप्तविंशत्यधिकषट्शतमिता विगता अगोः सप्त यस्मात् स तथा । एवम्भूतो यास्तथेर्यातगम्यनाडी योगस्तेन आप्ता भक्ता लब्धं त्रिष्ठं ग्राह्यम् । ततस्ते लब्धांशा व्यगुरवेः विराहुर्कस्य ये दोर्लवा भुजभागास्तैरूनितास्ते निजेन स्वोयेन दलेन अर्धेन तथा स्वस्य भूपभागेन षोडशांशेन च लब्धद्वयेन युक्ताः सन्तोऽङ्गुलपूर्वकं विधोश्चन्द्रस्य छन्नं ग्रासो भवेदित्यर्थः । २

अत्रोपपत्ति :—चन्द्रस्य मध्यममानैक्यखण्डमिदम् १८।५६ तिथिघटिकाः ५९।४ च मध्यमा मध्यमरविचन्द्रगत्यन्तरोत्पन्नाः । तत्र गतेराधिक्ये मानैक्य-खण्डाधिक्यम् । तत्र तिथिघटीनामल्पत्वम् । तत्रानुपातः- यदि मध्यम-तिथिघटीभिर्मध्यमं मानैक्यखण्डं तदेष्टस्पष्टतिथिघटीभिः किम् । अत्र व्यस्तत्रैराशिके स्पष्टतिथिघटिका हरः मध्यमतिथिघटीमध्यमानैक्यखण्डघातो भाज्यः ११९।८। अत्रास्मिन् भाज्ये भागकरणार्थं सप्तगुणे भवभक्ते जाता भागाः ७१२।११। एते तिथिगतैष्यघटीयोगेन भाज्या इत्यत्र तेषां सावयवत्वार्थं सञ्चारगुणनम् । यद्यासु घटीषु ५९।४। अयं भाज्यः ७१२।११। तदा सप्तोनि-तास्वासु घटीषु ५२।४। को भाज्य इति जाताः ६२७ । अत एते व्यगुतिथि-गतैष्यघटीयोगेन भाज्या व्यगुभुजांशोनाः । ततः शरार्थं स्वदलयुक्ता भागाः स्थूलः शर इत्यतो भूपभागान्विता कृताः । तच्छन्नं भवतीत्युपपन्नम् ॥ २

चन्द्रिका—तिथि के गतगम्य घटी के योग (तिथिभोग) में ७ घटी घटाकर शेष से ६२७ में भाग देकर लब्धि अंशादि में व्यगुभुजांश घटाकर शेष में उसी का आधा तथा षोडशांश जोड़ने से अंगुलादि चन्द्रमा का ग्रास होता है । २

उदाहरण—पर्वान्तकालिक सूर्य ११।१०।६।४९ में पर्वान्तकालिक राहु ५।१२।३७।२० घटाने से व्यगु ५।२७।२९।२९।५ से ६ में घटाने से शेष २।३०।३१ व्यगु भुजांश हुआ ।

नियमानुसार तिथि भोग घटी ५९।१५ में ७ घटाकर शेष ५२।१५ को पलात्मक ३१३५ बनाकर ६२७ के सजातीय मान ३७६२० में भाग देने से प्राप्त लब्धि १२।०।० में व्यगुभुजांश २।३०।३१ को घटा कर शेष ९।२९।२९ में इसी का आधा ४।४४।४४ तथा षोडशांश ०।३५।३५ जोड़ने से १४।४९।४८ अङ्गुलादि चन्द्रमा का ग्रास हुआ। २

चन्द्रबिम्बभूभाबिम्बसाधनम्—

अङ्गयुक्तिथिघटीहृतबाणाङ्कर्तवोऽङ्गुलमुखं विधुबिम्बम्।
दिग्वियुक्तिथिघटीहृतदृग्दृक्त्रीन्दवोऽङ्गुलमुखा क्षितिभा स्यात् ॥३

मल्लारि :—अथ चन्द्रबिम्बभूभाबिम्बे कथयति। षड्युक्ततिथिगतैष्यघटी योगेन भक्ताः पञ्चोनसप्तशतमिताः सन्तोऽगुलमुखं विधोश्चन्द्रस्य बिम्बं स्यात्। दिग्भिर्दियुजो हीना यास्तिथिघटिकास्ताभिर्हृता दृक्दृक्त्रीन्दवो द्वाविंशत्यधिकत्रयोदशशतमिता अंगुलमुखा क्षितिभा भूछाया स्यादिति व्याख्या।

अत्रोपपत्तिः—अत्र मध्यतिथ्याऽनया ५९।४। मध्यमे चन्द्रबिम्बेऽस्मिन् १०।४१ गुणिते भाज्यः ६३१।२। अयं सावयवोऽतः सञ्चारः। यद्यासु घटीषु ५९।४। अयं ६३१।२। तदा षड्युक्त घटीषु क इति जातो भाज्यः ६९५ अयं तिथिघटीभिः षड्युक्ताभिर्भाज्यश्चन्द्रबिम्बं भवतीत्युपपन्नम् अथ मध्यमं भूभाबिम्बमिदम् २६।५५ अस्मिन् मध्यतिथिभिर्गुणिते जातो भाज्यः सावयव १५९२।४९। अत्र सञ्चारः। यद्याभिर्घटीभिः ५९।४ अयं भाज्यः १५९२।४९। तदा दशहीनघटीनां ४९।४ को भाज्य इति जातः १३२२। अतो दशहीनतिथिघटी-भक्तो भाज्यो भूभा स्यादित्युपपन्नम् ॥ ३

चन्द्रिका—तिथिभोग घटी में ६ जोड़कर योगफल से ६९५ में भाग देने से लब्धि अङ्गुलादि चन्द्रबिम्ब होता है। उक्त तिथि भोग घटी में १० घटाकर शेष से १३२२ में भाग देने से अङ्गुलादि भूभा-बिम्ब होता है। ३

[illegible]—तिथि भोग घटी ५९।१५ में ६ जोड़कर योगफल ६५।१५ के [illegible] से ६९५ के पल ४[illegible]०० में भाग देने से लब्धि १०।३८ अङ्गु[illegible]दि च[illegible]मा का बिम्ब हुआ।

तिथि भोग ५९।१५ में १० घटाकर शेष ४९।१५ के पलात्मक मान २९५५ से १३२२ के पलात्मक मान ७९३२० में भाग देने से लब्धि २७।१० अङ्गुलादि भूभा विम्ब हुआ।

नक्षत्रघटिकाभ्यश्चन्द्रग्रासमानानयनम्—

विदशोडुघटीहृताः खभूषड् व्यगुभास्वद्भुजभागवर्जितास्ते।
शितिकण्ठहृतास्तुरङ्गभक्ताः स्थगितं चाङ्गुलपूर्वकं विधोः स्यात् ॥४

मल्लारिः—अथ नक्षत्रघटीभ्यो ग्रासानयनमाह। विगता दश यास्य एवं विधा उडुघट्यो नक्षत्रगतैष्यघटीयोगः। ताभिर्हृता खभूषड् दशाधिकशत-शतमितास्ते व्यगोर्विराहोर्भास्वतः सूर्यस्य ये भुजभागास्तैरूनिताः कार्याः। ततः शितिकण्ठैरेकादशभिर्हता गुणितास्तुरंगैः सप्तभिर्भक्ताः। अंगुलपूर्वकं विधोः स्थगितं छन्नं प्रकारान्तरेण स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्ति :—मध्यमनक्षत्रघटीभिराभिः ६०।५२ भाज्यादि कृत्वा तिथि-वदङ्का उत्पादनीयाः। सुगममिदम् ॥ ४

चन्द्रिका—नक्षत्र भोग घटी में १० घटाकर शेष से ६१० में भाग देकर लब्धि अंशादि में व्यगु के भुजांश घटाकर शेष को ११ से गुणाकर ७ का भाग देने से लब्धि अङ्गुलादि चन्द्रमा का ग्रासमान होगा। ४

उदाहरण—नक्षत्रभोग ६०।५३* में १० घटाकर शेष ५०।५३ के पल ३०५३ से ६१० के पल ३६६०० में भाग दिया। लब्धि ११।५९।१७ अंशादि में व्यगु भुजांश २।३०।३१ घटाने से शेष ९।२८।४६ को ११ से गुणाकर गुणनफल १०४।१६।२६ में ७ का भाग देने से लब्धि १४।५३ अङ्गुलादि चन्द्रमा का ग्रास हुआ।

नक्षत्रघटीभ्यश्चन्द्रभूभाबिम्बयोः साधनम्—

भगतागतनाडिकैक्यभक्ता नववेदर्त्तव इन्दुबिम्बमुक्तम्।
विमनूडुघटीहृताः शराक्षद्विभुवः स्यात् क्षितिभाङ्गुलादिका वा ५॥

*इस उदाहरण में पर्वान्तकाल में उ. फा. नक्षत्र नहीं है। उस समय हस्त नक्षत्र [illegible]।२२ बीत चुका है (प्रभात), परन्तु ग्रहणारम्भ उ. फा. में ही होगा इसलिए उ. फा. का ही भभोग लिया है। पर्वान्त काल में ग्रहण मध्य होता है।

मल्लारिः—अथ नक्षत्रघटीभ्यश्चन्द्रबिम्बभूभाबिम्बे कथयति । भस्य नक्षत्रस्य यो गतागतनाडीयोगो गतैष्यघटीयोगः । तेन भक्ता नववेदर्त्तव एकोनपञ्चाशदधिकषट्शतमिताः । यल्लब्धं तदंगुलाद्यं चन्द्रबिम्बमुक्तम् । तथैत्र विगता मनवश्चतुर्दश याभ्यस्तास्तथा एवं विधा या उडुनाड्यो नक्षत्रघटिकास्ता भिर्हृताः शराक्षद्विभुवः पञ्चपञ्चाशदधिकद्वादशशतमिताः । अंगुलमुखाक्षितिभा भूछाया स्यादिति ।५

अत्रोपपत्तिस्तिथिवत् सुगमा ।।५

चन्द्रिका—नक्षात्र भोग घटी से ६४९ में भाग देने से लब्धि चन्द्रमा का अङ्गुलादि बिम्ब होता है भभोग में १४ घटी घटाकर शेष से १२५५ में भाग देने से अङ्गुलादि भूभा बिम्ब होता है । ५

उदाहरण—नक्षत्रभोग घटी ६०।५३ को पलात्मक ३६५३ बनाकर ६४९ के पल ३८९४० में भाग देने से लब्धि १०।३९ अङ्गुलादि चन्द्रबिम्ब हुआ ।

नक्षत्र भोग ६०।५३ में १४ घटी घटा कर शेष ४६।५३ के पलात्मक २८१३ से १२५५ के पल ७५३०० में भाग देने से लब्धि २६।४६ अङ्गुलादि भूभा बिम्ब हुआ ।

सूर्यग्रहणे ग्राससाधनम्—

खात्यष्टयस्तिथिघटीविहृताः सवेदा
वाऽथोडुनाडिहृतदेवयमाः सरामाः ।
हीना व्यगुस्फुटलवैर्भवसङ्गुणास्ते
शैलोद्धृताः खररुचः स्थगिताङ्गुलानि ।।६

मल्लारिः—अथ सूर्यग्रहणे ग्रासं साधयति । सप्तत्यधिकशतमितास्थिति-घटीहृतास्ततस्ते सवेदाश्चतुर्भियुताः । ते व्यगुस्फुटलवैरमान्तनतनाडिकाङ्भिरहिताद्युतादित्यादिना कृतैर्हीनास्ततो भवगुणा एकादशगुणाः शैलैः सप्तभिर्हृता खररुचः सूर्यस्य स्थगिताङ्गुलानि ग्रासाङ्गुलानि स्युः । अथ वा उडुनाडीभिर्नक्षत्रघटीभिर्हृता देवयमास्त्रयस्त्रिंशदधिकतद्वयमितास्ते सरामास्त्रियुक्तास्ततो व्यगुस्फुटभुजभागहीनास्ते एकादशगुणाः सप्तभक्ता ग्रासः स्यादित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः—अत्र सूर्यस्येदं मध्यमं मानैक्यखण्डं १०।४७। सप्तगुणमेकादशभक्तं जाता भागाः ६।५२। एभ्यः सुखार्थं चत्वारस्त्यक्ताः शेषम् २।५२। इदं मध्यतिथिघटीगुणितं जातो भाज्यः १७०। अतः ख्रात्यष्टयस्तिथिघटीविहृताः सवेदा इत्युपपन्नम्। तथैवैभ्यो भागेभ्यस्त्रीन् त्यक्त्वा शेषं मध्यनक्षत्रघटीभिः ६०।४२ गुणितं जातो भाज्यः २३३। अतो नक्षत्रघटीभक्तादेवयमाः सरामा इति। एवं जातो मानैक्यखण्डोत्थभागो व्यगभुजांशहीनः। शेषेऽगुलकरणार्थं भवगुणे शैलभक्ते ग्रासः स्यादिति सुगमम्॥६

चन्द्रिका—तिथिभोग घटी से १७० में भाग देने से जो लब्धि प्राप्त हो उसमें ४ जोड़कर, अथवा नक्षत्र की भोग घटी से २३३ में भाग देकर जो लब्धि हो उसमें ३ जोड़कर, योगफल में व्यगु भुजांश घटाकर शेष को ११ से गुणा कर ७ का भाग देने से लब्धि अङ्गुलादि सूर्य का ग्रासमान होता है। ६

उदाहरण—सं० २०३४ शक १८ वैशाख कृष्ण अमावस्या चन्द्रवार १८ अप्रैल १९७७ को तिथि का भोग ६४।५२ नक्षत्र रेवती का भोग ६६।५ स्पष्ट सूर्य ०।४।४३।५९ अमान्तकालिक स्पष्ट राहु ६।०।३९।४ व्यगु ६।४।४।५५ व्यगु भुजांश ४।४।५५।

ग्राससाधन—अमावस्या का भोग ६४।५२ इसके पल ३८९२ से १७० के पल १०२०० में भाग देने से लब्धि २।३७।१५ प्राप्त हुई। इसमें ४ जोड़कर योगफल ६।३७।१५ में व्यगु भुजांश ४।४।५५ घटाकर शेष २।३२।२० में ११ का गुणाकर गुणनफल २७।५५।४० में ७ का भाग देने से लब्धि ३।५९।२३ अङ्गुलादि सूर्य का ग्रासमान हुआ।

द्वितीय विधि नक्षत्रद्वारा—नक्षत्रभोग ६६।५ को पलात्मक ३९६५ बनाकर २३३ के पल १३९८० में भाग देने से प्राप्त लब्धि ३।३१।३३ में ३ जोड़कर ६।३१।३३ में व्यगु भुजांश ४।४।५५ घटाकर शेष २।२६।३८ में ११ का गुणाकर गुणनफल २६।५२।५८ में ७ का भाग देने से लब्धि ३।५०।२५ अङ्गुलादि सूर्य का ग्रासमान हुआ।

सूर्यबिम्बसाधनम्—

रविलवयुतभानोर्दोर्लवत्र्यंशतुल्यै-
विरसलवमहेशाव्यङ्गुलैर्हीनयुक्ताः ।
अजघटरसभेऽर्के बिम्बमध्याङ्गुलाद्यं-
स्थितिमुखमवशिष्टं पूर्ववत्शेषमत्र* ॥७

मल्लारिः—अथ सूर्यबिम्बसाधनमेकवृत्तेनाह । रविलवयुतभानोरिति । रविलवैर्द्वादशभागैर्युतो यो भानुस्तस्य ये दोर्लवा भुजभागास्तेषां यस्त्र्यंशस्तत्तुल्यानि यानि व्यंगुलानि तैर्विरसलवा विगतषडंशा महेशाः १०।५०। हीनयुक्ताः कार्याः । कदेत्याह । अर्के सूर्ये अजघटरसभे सति । मेषादिषड्भे हीनास्तुलादिषड्भे युक्तास्तदाऽस्य सूर्यस्यांगुलाद्यं बिम्बं भवति । अत्र स्थितिमर्दस्पर्शकालादिकं यदवशिष्टमुक्तादुर्वरितं तदत्र पूर्ववत् ग्रहणोक्तवज्ज्ञेयमित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः—रविविम्बं मध्यममिदम् ।१०।५०। इदं मध्यमगतिवशात् स्पष्ट गतेः साध्यम् । मध्यमस्पष्टगत्योरन्तरं गतिफलम् । तत् सूर्यमन्दकेन्द्रकोटिवशात् । अतो मन्दकेन्द्रं कार्यम् । तद्यथा । रवेर्मृदूच्चं राशिद्वयमष्टादशभागाधिकम् २।१८।०।० ततो रविः शोध्यः केन्द्रं स्यात् । अस्माद्रविः शोध्यस्तस्य भुजस्त्रिभाच्छोध्यः कोटिः स्यादित्यत्र द्वादशभागयुक्तसूर्यस्य भुजो हि मन्द्रकेन्द्रकोटिर्भवतीति । सिद्धम् । तस्य सत्रिभस्य भुज एव कोटिः । अतस्त्रिभस्य ३ । सूर्योच्चस्यान्तरं द्वादशभागास्ते रवौ योज्यास्ततो भुजः कार्य इति सिद्धम् । अत्र मध्यमस्पष्टसूर्यबिम्बान्तरमिदं परमं ०।३०। अंगुलाद्यम् । इदं परमाणां नवत्यंशानां त्र्यंशतुल्यम् । अतो द्वादशभागयुक्तसूर्यभुजभागत्र्यंशतुल्यव्यंगुलहीनयुक्त मध्यबिम्बं स्पष्टं भवतीति मेषादौ रवौ सति केन्द्रं मकरादौ भवति तत्र गतिफलं ऋणमतो मेषादौ हीनः । तुलादौ रवौ केन्द्रं कर्क्यादौ तत्र गतिफलं धनमतस्तुलादौ युक्ताः कार्या इत्युपपन्नम् ॥७

देवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य पञ्चाङ्गतः पर्वयुगं समाप्तम् ॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञकृतग्रलाघवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञविरचितायां
तिथिपत्रादेव ग्रहणद्वयसाधनाधिकारोऽष्टमः ॥८

चन्द्रिका— स्पष्टसूर्य में १२ अंश जोड़कर उसके भुजांश में ३ का भाग देकर लब्धि तुल्य व्यंगुल को षष्ठांश रहित ११ अर्थात् १०।५० में

*ज्ञेयमत्र इतिपाठान्तरम् ।

मेषादि ६ राशियों मे सूर्य हो तो घटाने से तुलादि ६ राशियों मे सूर्य हो तो जोड़ने से अङ्गुलादि रविविम्ब होता है। स्थिति-मर्द-स्पर्श घटी आदि का ज्ञान पूर्ववत् जानना चाहिये। ७

उदाहरण—पर्वान्त कालिक सूर्य ०।४।४३।५९ में १२ अंश जोड़नेसे ०।१६।४३।५९ हुआ इसके भुजांश १६।४३।५९ में ३ का भाग देने से लब्धि ५।३४ को मेषादि राशियों में सूर्य होने से १०।५० में घटाया—

१०।५०
— ५।३४
१०।४४।२६

सूर्य का अंगुलादि विम्ब १०।४४।२६ हुआ।

श्रीगणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के ग्रहणद्वयसाधनाधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण। ८

९—उदयास्ताधिकारः

शुक्लप्रतिपदि चन्द्रदर्शनसम्भवासम्भवं प्रदर्श्यते—

सार्कांशाविह कुरु पक्षतिक्षयेऽर्कव्यग्वकौ चरमथ केवलाद् व्यगोर्यत् ।
षड्बाणैर्विहृतमिदं क्रमाल्लवाद्यं स्वर्णं स्याद् व्यगुरविगोलयोः पृथक् तत् ॥१

मल्लारि :—अथोदयास्ताधिकारो व्याख्यायते तत्रादौ शुक्लप्रतिपदि चन्द्रदर्शनं भविष्यति न वेत्युच्यते वृत्तत्रयेण। इह पक्षतेः प्रतिपदः क्षयेऽन्ते अर्कव्यग्वकौ सूर्यविराह्वर्कौ सार्कांशौ द्वादशभागयुगयुक्तौ कुरु। अथ केवलात्। अदत्तायनांशाद् व्यगोश्चर साध्यम्। तत् षड्बाणैः षट्पञ्चाशता विहृतं भक्तं सल्लवाद्यं फलं ग्राह्यं तत् स्वर्णं धनर्णं स्यात्। कदेत्याह। व्यगुरवेर्विराह्वर्कस्य यौ गोलौ तद्वशात्। उत्तरगोले धनम्। दक्षिणगोले ऋणमिति तत्फलं पृथक्। एकान्ते स्थापयेत् ॥ १

चन्द्रिका - [उदयास्ताधिकार में सर्व प्रथम शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को चन्द्रदर्शन होगा या नहीं इसका विवेचन करते हैं।]

प्रतिपदा के अन्त में सूर्य और व्यगु का साधन कर दोनों में १२ बारह अंश जोड़कर केवल व्यगु से अर्थात् अयनांश जोड़े बिना ही (व्यगु से) चर साधन कर उसमें ५६ का भाग देने से जो लब्धि प्राप्त हो वह व्यगु के उत्तर गोल में होने से धन तथा दक्षिण गोल में होने से ऋण होता है ॥ १

त्रिभायनलवान्वितारुणचराहतं द्व्यक्षभा-
हतेः कृतिहृतं धनर्णमसमैकगोले व्यगोः ।
खखानलविशेषितः सरसभायनार्कोदयः
शरद्विकहृतो धनाधनमनल्पकाल्पोदये ॥ २

द्युमितिप्रतिपद्गमान्तरं यच्छरभक्तं स्वमृणं दिनेऽधिकोने ।
धनमत्र चतुष्कसंस्कृतिश्चेत् तपनास्ते विधुरीक्ष्यतेऽन्यथा न ॥ ३

मल्लारि :—त्रिभेण राशित्रयेण। अयनलवैरयनांशैः। अन्वितो युक्तो योऽरुणः सूर्यस्तस्य यच्चरं तेन पृथक्स्थं फलमाहतं गुणितम्। ततो द्व्यक्षभाहतेर्द्वि-

गुणितपलभायाः कृत्या वर्गेण हृतं तत् द्वितीयं फलमेकान्ते स्थाप्यम्। तद्व्यगोरसमैकगोले धनर्णं स्यात्। रविव्यगू यदि भिन्नगोले तदा धनम्। एकगोले तदा ऋणमिति। अथ सरसभायनर्कोदयः षट्राश्ययनांशयुक्तार्कोदयः खखानलविशेषितः शतत्रयान्तरितः सन् शरद्विकैः पञ्चविंशत्या हृतः फलमनल्पकाल्पेऽर्कोदये सति धनाधनं स्यात्। शतत्रयात् उदये अधिके धनमूने ऋणम्। इदं तृतीयमप्येकान्ते स्थाप्यम्।

अथ चतुर्थफलं साधयति। द्युमितिर्दिनमानम्। प्रतिपद्समः प्रतिपदन्तः। अनयोर्यदन्तरं तत् शरभक्तं फलं दिनेऽधिकोने स्वमृणं स्यात्। दिनमाने तिथेरधिके धनमूनं ऋणमिति चतुर्थं फलं भवति। अत्र चतुष्कसंस्कृतिः फलचतुष्टयसंस्कारश्चेद्धनं तदा तपनस्य सूर्यस्यास्ते विधुश्चन्द्र ईक्ष्यते दृश्यते। अन्यथा फलसंस्कारे ऋणे सति न दृश्यत इति भावः संस्कारस्तु धनयोर्योगः। ऋणयोरपि योगः। धनर्णयोरन्तरमिति प्रसिद्धः।

अत्रोपपत्तिः—चन्द्रस्य कालांशा द्वादश यदा स्युस्तदा चन्द्रोदयः। चेदल्पस्तदा नेति। अतश्चन्द्रे दृक्कर्मादि दत्वा कालांशाः साध्याः। तत्राचार्येण लाघवार्थं शिष्यक्लेशभयार्थं फलानि साधितानि तेषां योगो यदा धनं तदा कालांशा द्वादशाधिकाः। अत उदयो भविष्यत्येव। यदा ऋणं तदा कालांशा द्वादशकाल्पा अतो न दर्शनम्। सूर्यचन्द्रान्तरं प्रतिपदन्ते द्वादशभागास्ते तु क्षेत्रांशा नित्यांशा नित्या एव। कालांशा देशविशेषेण कालवशेन शराद्यन्तरवशेन चान्तरिता भवन्ति। तत्र प्रतिपदन्ते चन्द्रःकार्यः। अतो रविः सार्काशश्चन्द्रो तथा शरार्थं व्यगुचन्द्रः कार्यः। अतो व्यगुरविरेव सार्कांशो व्यगुचन्द्रः स्यात्। अतः सार्कांशावित्युपपन्नम्। अथाक्षं दृक्कर्म साध्यम्। तत्रादौ व्यगोः शरः साध्यः। ततो द्वादशकोटौ पलभा भुजस्तदा शरकोटौ क इति। जातं दृक्कर्म। तत्र लाघवार्थं प्रतिराशित्रयमध्ये शराः साधिताः। ते यथा।१३५। २३४।२७० ऐते द्वादशभक्ता जाताः ११।१९ (२२।३०)। एषां पलभा गुणोऽस्ति। एते एकांगुलपलभोत्थचरखण्डैरेभिरासन्नाः सन्ति।१०।१८ (२१।२०) एतानि चरखण्डानि यावत् पलभया गुण्यन्ते तावत् स्वदेशीयान्येव भवन्ति। तैश्चरखण्डकैर्व्यगोः साधितं यच्चरं तत्पलभागुणितं शरासन्नं स्यादेव द्वादशभिस्तु पूर्वमेव भक्तमस्ति। अतो व्यगोश्चरदृक्कर्मकलाः। तासां भागकरणार्थं षष्टिर्हरः ६०। परमिदं सान्तरं तदन्तरं साध्यते यत्नेन परमचरखण्डकेन।२१।२०। एताः परमदृकर्मखण्डकलाः २२।३०। तदेष्टेन चरेण का इति एवं हरघातो हरः १२८०। गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो हरः ५६। अतो व्यगोश्चरं षड्बाणैर्हृत भागाद्यं मोक्षं दृक्कर्म भवतीत्युपपन्नम्। धनर्णोपपत्तिः। उत्तरगोले ग्रहः क्षितिजादुन्नाम्यते। अतस्तदुदयः

पूर्वमेव । अतस्तत्र धनम् । दक्षिणे नाम्यतेऽतस्तदुदयः पश्चात् । अतस्तत्र ऋणमेक फलम् । अथायनदृक्कर्म साधयति । त्रिज्याकर्णे अयनवलनज्या भुजस्तदा शरकर्णे क इति । द्युज्यावृत्ते इदं तदा त्रिज्यावृत्ते किं त्रिज्ययोस्तुल्यत्वान्नाशे कृते द्युज्याहरः शरो गुणः । तत्र सायनसत्रिभग्रहक्रान्तिरेवायनवलनम् । तत्प्रतिराशिसाधितम् । ११।२०।२४। एतदप्येकांगुलपलभोत्थचरार्धासन्नम् । भगार्थं षष्टचा भाज्यम् ६० । यदाऽस्य १० इदं वलनम् ११।४३ तदुपयकस्पष्टमिति । हरघातो हरः ६०० । मध्यस्थद्युज्या ११२।३० इयमपि हरः । अतो हरघातो जातो हरः ६७५०० । जीवार्थं द्वौ २ गुणः पूर्वगुणश्च ।११।४३। एवं सत्रिभायन-कस्यैकांगुलपलभोत्थचरं ग्राह्यम् । तदिष्टपलभावशेन गृहीतम् । अतस्तस्याक्षभाऽपि हरः शरो गुणोऽस्ति तदर्थं शरः साध्यः । तदाऽऽक्षदृक्कर्मतो विलोमेन शरः । तत् षष्टिद्वादशघात ७२० गुणं पलभाभक्तं शरः स्यात् । उभयोर्घात पलभावर्गो हरः । अयं च हरः ६७५०० । सत्रिभायनार्कचराक्षदृक्कर्मघातस्य गुणघातो गुणः १६८७२ । गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो हरः ४। चतुर्भिः पलभावर्गोऽपि हरः एवं हरघातो द्व्यक्षभाहतेः कृतिर्हरः । रूपगुणस्याविकृतान्नाशः । धनर्णोपपत्तिः प्रत्यक्षं गोले दृश्यते । इदं द्वितीयफलम् । अथ क्षेत्रांशकालांशान्तरं साध्यम् । तत्र राशिकलोदयास्वन्तरं कार्यम् । अत्रोदयपलान्यतो राशिकलाः षड्भक्ताः ३०० । एतदन्तरं तत्र सूर्यास्ते चन्द्रोदयोऽतः सूर्यः सषड्भायनः कार्यः । तदुदयः खखानलविशेषितः कलास्वन्तरस्य त्रिंशदंशैरिदमन्तरं तदा द्वादशभिः क्षेत्रांशैः किमिति हरः ३०। गुणः १२ । षष्टिभक्तं घटिकाः । ताः षड्घ्नो भागाः । एवं हरघातो हरः १८६। गुणघातो गणः ७२ । गुणहरौ गुणेनापवर्त्य हरः २५ । अतः शरद्विकहृत इति । धनर्णोपपत्तिः । शतत्रयादधिके उदयकलाभ्यः असवोऽधिकाः ततस्तत्र धनमूने ऋणमिति । इदं तृतीयं फलम् । प्रतिपदन्ते सूर्यास्ते चन्द्रोदयः । अतो द्युमानतुल्ये प्रतिपदन्ते चन्द्रोदयः । ऊनाधिकात् फलं साध्यते । षष्टिघटिकाभिर्द्वादशभागास्तदेष्टदिनमानप्रतिपदन्तरघटीभिः किमिति गुणहरौ गुणेनापवर्त्य हरः ५ । अतः शरभक्तमिति । धनर्णोपपत्ति. प्रतिपदधिके दिने चन्द्रोदयः स्यादेव अतस्तत्र धनम् । ऊने ऋणमित्यर्थत एव सिद्धम् । एवं चतुर्णां फलानां संस्कारे घनभूते कालांशा द्वादशाधिकाः स्युः । तदा तत्र चन्द्रोदयः स्यादित्युपपन्नम् । अन्यथा नैवेति । अथ झटिति सभाया गुरुशुक्रोदयास्तज्ञानं यथा भवति तथोच्यते ॥ २-३

चन्द्रिका :—सायन सूर्य में ३ राशि जोड़कर चरपल साधन करना चाहिये। चरपल से पूर्वसाधित फल को गुणाकर गुणनफल में द्विगुणित पलभा के वर्ग से भाग देने से द्वितीय फल प्राप्त होगा। व्यगु और सूर्य

भिन्न गोल के हों तो द्वितीयफल धन होगा तथा एक गोल के हों तो ऋण होगा।

सायन सूर्य में ६ राशि जोड़ने से जिस राशि का हो उसके स्वदेशी-योदय मान का ३०० के साथ अन्तर कर २५ का भाग देने से तृतीय फल होगा। यह उदयमान ३०० से अधिक हो तो धन न्यून हो तो ऋण होता है।

दिनमान और प्रतिपदा के मान का अन्तर कर उसमें ५ का देने से लब्धि चतुर्थफल होता है। यहां दिनमान प्रतिपदा के म से अधिक हो तो धन, न्यून हो तो फल ऋण होता है।

उक्त चारों फलों के संस्कार से शेष यदि धनात्मक बचे तो प्रतिपदा तिथि में सूर्यास्त के आसन्न चन्द्रमा दृश्य होता है। अन्यथा अदृश्य होता है। २-३

उदाहरण - सं० २०३३ शके १८९८ माघ शुक्ल प्रतिपदा १ गुरुवार घटी २६।८ श्रवण ४५।५०। वज्र ३।३५ दिनमान २५।४८।

तिथ्यन्तकालिक सूर्य ९।६।४८।१९, राहु ६।५।१८।३७। व्यगु ३।१।२९।४२ नियमानुसार व्यगु और सूर्य में १२।१२ अंश जोड़ने से व्यगु ३।१३।२९।४२ सूर्य ९।१८।४८।१९ व्यगु ३।१३।२९।४२ द्वारा चरफल* साधनार्थ भुज २।१६।३०।१८ बनाकर चरफल ११३ सिद्ध किया। चरफल ११३ में ५६ का भाग देने से लब्धि २।१।४ प्रथम फल हुआ। व्यगु के उत्तर गोल में होने से फल धनात्मक होगा।

द्वितीयफल—स्पष्ट सूर्य ९।६।४८।१९ में अयनांश २३।३२।७ जोड़ने से १०।०।२०।२६ सायनसूर्य तथा ३ राशि जोड़ने से १०।०।२०।२६ सत्रिभ सायनसूर्य हुआ। इस सत्रिभ सायनसूर्य द्वारा साधित चरफल ५७ से प्रथमफल २।१।४ को गुणा कर गुणनफल ११६।१। में पलभा ५।४५ के द्विगुणित मान ११।३० के वर्ग १३२ से भाग देने से लब्धि ०।५२।४३

द्वितीय फल हुआ। सायन सूर्य और भृगु एक ही दिशा के हैं, अतः फल ऋणात्मक होगा।

तृतीयफल—स्पष्ट सूर्य ९।६।४८।१९ में अयनांश २३।३२।७ अंशादि तथा ६ राशि जोड़ने से सायन षड्भ सूर्य ४।०।२०।२६ हुआ। सिंह राशि में सूर्य होने से वाराणसी में सिंह के उदयमान ३४५ से ३०० घटाकर शेष ४५ में २५ का भाग देने से लब्धि १।४८ तृतीयफल हुआ। उदयमान अधिक है इसलिए फल धनात्मक हुआ।

चतुर्थफल—तिथ्यन्त घटी २६।८ दिनमान २५।४८ दोनों के अन्तर ०।२० में ५ का भाग देने से लब्धि ०।४ चतुर्थफल हुआ। दिनमान तिथिमान से अल्प है अतः फल ऋणात्मक हुआ।

फल संस्कार—	प्रथमफल	२। १। ४
	द्वितीयफल	−०।५२।४३
	तृतीयफल	१।४८। ०
	चतुर्थफल	−०।२०। ०

प्रथम तथा तृतीयफल धनात्मक हैं अतः इनके योग (२।१।४ + १।४८।०) = ३।४९।४ में द्वितीय तथा चतुर्थ ऋणात्मक फलों का योग (−०।५२।४३ + ०।२०।०) = −१।१२।४३ घटाने से (३।४९।४ − १।१२।४३) = २।३६।२१ शेष धनात्मक बचा।

अतः चन्द्रदर्शन प्रतिपदा में होगा।

गुरोरुदयास्तसाधनम्—

चक्राढ्यो मधुवक्त्रमासनिचयो विश्वाप्तचक्रोनितो
द्विघ्नो युक् दशमासधूर्जटिदिनैर्भैः शेषितो भच्युतः।
द्व्याप्तः स्याद्गुमुखः पृथक् तिथिलवैरूनोऽस्य बाह्वंशका-
र्कांशोनयुतो घटाजरसभे मासादिकः स्यान्मधोः॥ ४
तिथिदिनरहिताढ्योऽसौ द्विधा तैश्च मासैः
क्रमश इह भवेतां मन्त्रिणोऽस्तोदयौ च॥

मल्लारिः—तत्रादौ गुरोरुदयास्तौ सार्धश्लोकेन कथयति ।

मधुवक्त्रे चैत्रादौ यो मासगणो भवति स तद्वर्षीयचक्रेण आढ्यो युक्तः कार्यः स एव विश्वाप्तेन त्रयोदशभक्तेन चक्रेण ऊनितः । ततोऽसौ द्वाभ्यां हन्यते गुण्यते स तथा । ततो दशभिर्मासैर्धूर्जटिभिरेकादशदिनैर्युक्युक्तः सन् ऊर्ध्वस्थाने भैः सप्तविंशत्या शेषितो भक्तो विरहितः । ततो भच्युतः सप्तविंशतिः शोध्यः सन् नक्षत्रात्मको द्वयाप्तः सन् भमुखो राश्यादिः स्यात् । राश्यादिः पृथक् अन्यस्थले स्थाप्यः । तत्र तिथिलवैः पञ्चदशभागैरूनोऽस्य पञ्चदशभागोनितस्य यो बाहुर्भुजस्तस्य येंऽशका भागास्तेभ्योऽर्कैर्द्वादशभिराप्तांशा लब्धा भागास्तैर्भागैः पृथक्स्थो राश्यादिक ऊनयुतः कार्यः । कदेत्यत आह । घटाजरसभे सति तुलादिषड्भस्थे राश्यादिके सति फलं तत्रैव ऋणं कार्यम् । मेषादिषड्भस्थे धनं कार्यं सराश्यादिरेव मधोश्चैत्रमारभ्य मासादिकः स्यात् । यावन्तो राशयस्तावन्तो मासाः । भागा दिनानि । कला घटिकाः विकलाः पलानीति । तिथिदिन रहिताढ्य इति । अयं मासादिको द्विधा स्थानद्वये स्थाप्यः । तत एकस्थाने प्रथमं तिथिदिनैः पञ्चदशदिवसैः रहितः कार्यः । तत्र तैः सावयवैर्मासैश्चैत्राद् गुरोरस्तः स्यात् । तथा द्वितीयस्थाने पञ्चदशयुक्तैस्तैर्मासैश्चैत्रादेव गुरोरुदयः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः—वर्षादौ गुरुः साध्यः । स स्पष्टः कार्यः । तथा रविस्तत्र वर्षादौ शून्यमतो गुरुरेव शीघ्रकेन्द्रम् । यो हि गुरुराश्यादिः स मासादिकः कृतः । स यथा । चैत्रादौ मासगणस्ततो गुरुः । सार्धविश्वमासैर्गुरोरुदयास्तकालः शुद्धो भवति । अतो मासगणः सार्धविश्वैर्भाज्यः । अत एव द्विघ्नो मासगणो भैः शेषित इति । अत्र चक्रोत्थमासगणे सार्धविश्वभक्ते यच्छेषं तदप्यत्र योज्यम् । एवमेकचक्रे मासगणः १३६ अयं सार्धविश्व भक्तः शेषं रूपम् । एकचक्रे इदं तदेष्टचक्रैः किमिति चक्रस्य गुणः १ । गुणगुणितचक्रं सार्धविश्वभक्तमासगणे योज्यमित्यत्र मासगणे प्रथममेव योजितं तत्तु चक्रतुल्यमेव । अतश्चक्राढ्य इति इदं सान्तरम् । यतः सार्धविश्वे संपूर्णो न भवति । अतो विश्वाप्त चक्रोनित इति ग्रन्थारम्भे गुरोर्मासादिक्षेपः १०।११। अत उक्तं दशमासधूर्जटिदिनैर्युगिति । अग्रे कदोदयास्तः स्यात् । अतो भोग्यार्थं भच्युतो द्विगुणत्वादद्वयाप्त इति । अस्य कालांशान्तरे सूर्यान्तः पञ्चदशभागोनः कृतस्तस्मात् फलं साध्यम् । अतस्तद्भुजभागार्कलवोनयुक्तः कार्यः इति । यतः परमभुजांशानां ९० द्वादशांशः ७।३०। सूर्यमन्दफलगुरुमन्दफलयोः परमयोर्योगासन्नो भवति । स मासादिको यावत् पञ्चदशदिनैरूनाधिकः क्रियते तावद्गुरुदयास्तयोरन्तरं त्रिंशद्दिनात्मकमेव भवति । अतस्तैर्मासैश्चैत्राद् गुरोरस्तोदयौ भवत इति शोभनमुक्तम् । ४

चन्द्रिका:—चैत्रादिमासगण में चक्र जोड़कर योगफल में चक्र का तेरहवां भाग सावयव मासादि घटाने से जो शेष बचे उसे २ से गुणाकर गुणनफल में १० मास ११ दिन जोड़कर २७ का भाग देने से जो शेष रहे उसे ७ में घटाकर शेष में २ का भाग देने पर राश्यादि लब्धि प्राप्त होगी। इसे पृथक रखकर इसमें १५ अंश घटाकर शेष के भुजांश में १२ का भाग देकर लब्धि को पूर्व प्राप्त राश्यादि लब्धि में, यदि मेषादि हो तो (उसी फल में) में जोड़ने तथा तुलादि में घटाने से चैत्रादि मासादि फल होता है। इस फल को दो स्थानों में रख कर एक स्थान में १५ दिन घटाकर शेष तुल्य मासादि में गुरु का अस्त, तथा द्वितीय स्थान में १५ दिन जोड़ने से जो मासादि प्राप्त हो उतने में गुरु का उदय जानना चाहिये। ४॥

उदाहरण—सं० २०३३ शके १८९८ वैशाख कृष्ण में गुरु के अस्त काल ज्ञान करने के लिए सर्वप्रथम मासगण का साधन किया—

१८९८–१४४२ = ४५६

११)४५६(४१ चक्र
४४
——
१६
११
——
५ शेष

५ × १२ = ६० + ० ग. मा = ६०

चक्र ४१ × २ = ८२ + १० = ९२

९२ + ६० = १५२

३३)१५२(४ अधिमास
१३२
——
२०

६० + ४ = ६४ मासगण हुआ।

मासगण ६४ में चक्र ४१ जोड़ने से १०५ हुआ। पुनः चक्र ४१ में १३ का भाग देने से लब्धि मासादि ३।४।३६।५५ को योग १०५ में घटाने से शेष १०१।२५।२३।५ को २ से गुणा कर गुणनफल २०२।५०।४६।१० में

१०।११ मासादि जोड़ने से २१४।११४६।१० हुआ। इसमें २७ का भाग देने से लब्धि ७ तथा शेष २५।११४६।१० को २७ में घटा कर शेष १।२८।१३।५० में २ का भाग देने से लब्धि राश्यादि ०।२९।६।५५ प्राप्त हुई। राश्यादि लब्धि में १५ अंश घटा कर शेष ०।१४।६।५५ के भुजांश १४।६।५५ में १२ का भाग देकर लब्धि १।१०।३५ अंशादि को मेषादि में राश्यादि पूर्वोक्त फल के होने से जोड़ा (०।२९°।६'।५५"+१°।१०'।३५") =१।०।१७।३० चैत्रादिफल हुआ। इसमें १५ अंश घटाने से शेष ०।१५।१७।३० मासादि में गुरु अस्त तथा चैत्रादि फल १।०।१७।३० में १५ अंश जोड़ने से १।१५।१७।३० मासादि में गुरु के उदय का काल समझना चाहिये।

प्रस्तुत उदाहरण में गुरु का अस्तकाल मासादि ०।१५।१७।३० है प्रथम चैत्र मास में ही १५ दिन बाद गुरु अस्त होगा*। मासगणना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होती है।

शुक्रोदयास्तसाधनम्—

अथ मधुमुखमासाः सप्तभूनिघ्नचक्रैः
स्वशरयुग लवाढ्यैः संयुता मार्गणघ्नाः ॥५
उदधिरससमेताश्छिद्रखेगामितष्टा
नवनवपरिशुद्धाः पञ्चभक्ताः पृथक्स्थाः।
रसगुणदिनहीनाढ्या द्विधा चैत्रतस्तै-
र्भृगुजहरिदिगस्ताम्बूदयौ स्तः क्रमेण ॥ ६

नवमासभघस्रतोऽल्पपुष्टाः पृथगस्थाः क्रमशस्तु तैर्युतोनाः।
द्विधा युगदासरोनयुक्तास्तोयास्तैन्द्रयुदयौ क्रमाद्भृगोः स्तः ॥७

*प्रस्तुत उदाहरण में पूर्णिमा के अनन्तर वैशाख कृष्ण प्रतिपदा को गुरु का अस्त काल आता है। दृग्गणित के अनुसार वैशाख कृष्ण तृतीया को गुरु [illegible] दिखाया गया है। अतः ग्रहलाघवीय और दृग्गणित में लगभग २ दिन का अन्तर आ रहा है।

मल्लारिः—अथ शुक्रोदयास्तौ कथयति सार्धवृत्तद्वयेन। अथ गुरूदयास्त-कथनानन्तरं शुक्रास्तोदयौ कथयति। मधुमुखमासाश्चैत्रादौ यो मासगणः ! ते मासाः। सप्तभूमिर्निघ्नानि गुणितानि यानि चक्राणि ततस्तानि स्वशरयुग- लवेन पञ्चचत्वारिंशदंशेन आढ्यानि युक्तानि। तैः संयुतास्तो मार्गणघ्नाः पञ्च गुणाः। तत उदधिरसः चतुष्टया ममेताः ततश्छिद्राणि नव। खेगामिनो ग्रहा नव। एवं नवनवतितष्टाः शेषा नवनवम्यः परिशुद्धा। तच्छेषाः पञ्चभक्ताः पृथक्स्था. कार्याः। ये पृथक्स्थास्तेऽपि स्थानद्वये स्थाप्याः। एकत्र रसगुणदिनैः षट्त्रिंशद्-दिनैर्हीना अन्यत्र युक्ताः। चैत्रतस्तैर्मासैर्यथाक्रम भृगुजस्य शुक्रस्य हरिदिशि पूर्वस्यामस्तोऽम्बुनि पश्चिमायामुदयो भवेत्। ततो ये पृथगास्थास्ते नवमासभघस्रतः सप्तविंशतिदिनादिक नवमासेभ्यश्चेदल्पाः पुष्टा वा स्युस्तदा क्रमशः तैर्नवमासभघस्रैर्युतोनाः कार्याः। ततस्ते द्वेधायुगवासरैश्चतुर्भिर्दिनैरूनयुक्ताः क्रमाद् भृगोः शुक्रस्य तोयास्तः पश्चिमास्त ऐन्द्रयुदयः पूर्वोदयः। एतौ चैत्रात्तैर्मासैः स्त इत्यर्थः ५-७

चन्द्रिका—चैत्रादि मासागण में सत्रह से गुणित चक्र का ४५ वां भाग जोडकर योग को ५ से गणाकर गुणनफल में ६४ जोड़कर ९९ स भाग देकर शेष को पुनः ९९ में घटाकर शेष में ५ का भाग देकर मासादि लब्धि को पृथक् पृथक् दो स्थानों में रखें। प्रथम स्थान में ३६ दिन घटाने से शुक्र के पूर्वदिशा में अस्त होने के तथा दूसरे स्थान में ३६ दिन जोड़ने से पश्चिम में शुक्र के उदय होने के मासादि होते हैं।

यदि उक्त पृथक् स्थापित लब्धि ९ मास २७ दिन से अल्प हो तो उक्त संख्या में ९ मास २७ दिन जोड़कर, यदि अधिक हो तो ९ मास २७ दिन घटा कर दो स्थानों में रखकर एक स्थान में ४ दिन घटाने से शुक्र का पश्चिम में अस्त होने का तथा दूसरे स्थान में ४ दिन जोड़ने से शुक्र का पूर्व में उदय होने का काल होता है। ५-७

उदाहरण शुक्रोदयास्त साधन--मासगण ६४। चक्र ४१

चक्र ४१ को १७ से गुणाकर गुणनफल ६९७ में ४५ का भाग देकर लब्धि १५।१४।४० को उक्त गुणनफल ६९७ में जोड़कर योगफल ७१२। १४।४० को मासगण ६४ में जोड़कर ७७६।१४।४० को ५ से गुणाकर गुणनफल ३८८१।१३।२० में नियमानुसार ६४ जोड़ कर ३९४५।१३।२० में

९९ का भाग देने से लब्धि ३९ तथा शेष ८४।१३।२० प्राप्त हुआ। ९९ में शेष ८४।१३।२० को घटाकर शेष १४।१६।४० में ५ का भाग देने से २।२७।२० लब्धि प्राप्त हुई। इसे दो स्थानों में रख कर एक स्थान में ३६ दिन अर्थात १ मास ६ दिन घटाकर शेष १।२१।२० (चैत्रादि) मासादि काल में शुक्र पूर्व में अस्त होगा। द्वितीय स्थान में स्थित लब्धि २।२७।२० में १ मास ६ दिन जोड़ने से ४।३।२० मासादि में शुक्र पश्चिम में उदय होगा।

यहाँ उक्त मासादि लब्धि २।२७।२० श्लोकोक्त ९ मास २७ दिन से अल्प है अतः २।२७।२० में ९।२७ जोड़कर योग १२।२८।२० में ४ दिन घटाने से शेष १२।२०।२० मासादि में शुक्र पश्चिम में अस्त होगा तथा १२।२४।२० में ४ दिन जोड़ने से १२।२८।२० मासादि शुक्र के पुनः पूर्व में उदय होने का समय होगा।

पूर्वोक्त गुरुशुक्रयोरुदयास्तकालयोः परिवर्त्तनम्—

मासैर्नखैर्व्यरिदिनैरुदयास्तकालः
शुक्रस्य शुध्यति गुरोर्यदि सार्धविश्वैः।
सोऽन्यो भवेन्मधुमुखादथ तैर्युतश्चेत्
स्यात् तत्परोऽथ पुरतोऽपि विलोमशुद्धया ॥८

मल्लारि :—अथ गुरुशुक्रयोरुदयास्तकालपरिवर्तनमाह। शुक्रस्योदयास्तकालः पूर्वास्तपूर्वोदयपश्चिमास्तपश्चिमोदयपरिवर्त्तो व्यरिदिनैः षड्दिनरहितैर्नखैर्विंशतिमासैः शुध्यति सम्पूर्णो भवति। गुरोः सार्धविश्वैर्मासैः शुध्यति। मधुमुखाच्चैत्रादेस्तैर्युतश्चेत् तदाऽन्यः स्यात्। विलोमशुद्धया पुरतोऽपि पूर्वमेव तैः स्वमासैरुदयास्तः स्यात्। एतदुक्तं भवति। यस्योदयास्तयोर्मासादिकश्चैत्रादितः कालः स एभिः परिवर्त्तमासैर्युक्तस्तैरेव मासैश्चैत्रादेः स एवोदयास्तः स्यात्। चेन्न्यूनीकृतस्तदा तैर्मासैश्चैत्रादेः पूर्वमुदयास्तः स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—प्रत्यक्षसिद्धा सुगमा च ॥८

चन्द्रिका—६ दिन रहित २० मास अर्थात् १९ मास २४ दिन में शुक्र का उदयास्त (पूर्वदिशा में उदय से अस्त पर्यन्त तथा पश्चिम में उदय से

अस्त पर्यन्त) काल शुद्ध होता है। बृहस्पति का साढ़े तेरह मास अर्थात् १३ मास १५ दिन में उदयास्त शुद्ध होता है। पुनः चैत्रादि मासों में उक्त संख्या जोड़ने से तत्तद् ग्रहों के अग्रिम उदयास्त काल का ज्ञान होता है। विलोम क्रम से उक्त संख्या घटाने से पहले के उदयास्त काल ज्ञात होते हैं ॥ ८

स्थूलशरसाधनम्—

प्रथमे व्यगुचन्द्रदोर्गृहेंऽशाः स्वदलाढ्यास्त्वपरे नगाब्धियुक्ताः।
चरमे दलिता नागाद्रियुक्ता व्यगुविधुदिग् विक्षिप्तोऽङ्गुलादिकः स्यात् ॥९

मल्लारिः—अथ चन्द्रशरं साधयति। व्यगुचन्द्रस्य विराहुचन्द्रस्य दोर्गृहे भुजराशौ प्रथमे सति अंशा भागाः स्वदलेन स्वार्धेन आढ्या युक्ताः कार्याः सोऽङ्गुलादिकः शरः स्यात्। अपरे द्वितीयराशौ ये भागास्ते नगाब्धिभिः सप्तचत्वारिंशद् युक्ताः कार्याः स शरः स्यात्। चरमे तृतीयराशौ ये भागास्ते दलितास्ततो नगाद्रिभिः सप्तसप्तति युक्ता व्यगुविधुदिक् विराहुचन्द्रो यस्मिन् गोले तद्दिक् शरो भवतीत्यर्थः। अत्र शरानयने राशीनामंशा न कार्याः। अधस्तना यथावस्थिता एव भागा ग्राह्याः ॥९

अत्रोपपत्तिः—प्रथमराशौ भागाः स्वार्धयुक्ता शरो भवतीति पूर्वमेव ग्रहण-युक्तिः प्रतिपादितास्ति। द्वितीयराश्यन्ते शरः ७७। अत्र प्रथमराश्यन्ते शरः ४७। अतो द्वितीयराश्यादितो ये भागास्तैर्युक्ताः ४७ एते शरो भवत्येव। तथैव तृतीयराश्यादेर्भागा दलिता द्वितीयराश्यन्तशरेणानेन ७७ युक्ताः शरः स्यादेवेति युक्तमुक्तम्। पूर्वग्रहणे चन्द्रशर उक्तः स त्रिंशद्दल्प भुज भागमध्यस्थ एव। अन्यश्च बहुषु भुजभागेषु बह्वन्तरितः स्यात्। अत उदयास्तशृङ्गोन्नतिग्रहयोगादि-विधानेन प्रकारेण शरः कार्यो न पूर्वेणेति ॥९

चन्द्रिका—व्यगु (राहु रहित चन्द्रमा) चन्द्र का भुज यदि प्रथम राशि (०।—) में हो तो भुज के अंशादि का आधा भुजांशादि मे ही जोड़ने से, यदि द्वितीय राशि (१।—) में हो तो अंश में ४७ जोड़ने से तथा यदि भुज तृतीय राशि (२।—) में हो तो भुजांश के आधे में ७७ जोड़ने से अंगुलात्मक शर होता है। राहु रहित चन्द्रमा जिस गोल में होता है वही शर की भी दिशा होती है ॥ ९

उदाहरण—(१) चन्द्रमा ११।१३।११।४९ स्पष्टराहु ७।१६।४५।१९ चन्द्रमा से राहु घटाने से शेष व्यगु ५।२६।२६।३० हुआ। इसे ६ में घटाकर ०।३।३३।३० भुज बनाया। भुज के राशि स्थान में शून्य है। भुज पहली राशि में है अतः अंशादि ३।३३।३० का आधा १।४६।४५ अंशादि ३।३३।३० में ही जोड़ने से ५।२०।१५ शर हुआ। व्यगु चन्द्र उत्तरगोल में है अतः शर भी उत्तर दिशा का होगा।

(२) यदि चन्द्र ८।१६।४०।३० तथा राहु १।१३।३८।२५ हो तो चन्द्र में राहु घटाने से शेष ७।३।२।५ व्यगु हुआ, इसके भुज १।३।२।५ के राशि स्थान में १ है अतः यह दूसरी राशि में हुआ। नियमानुसार भुज के अंशादि ३।२।५ में ४७ जोड़ देने से ५०।२।५ शर हुआ। व्यगु दक्षिण गोल में हैं, अतः शर भी दक्षिण दिशा का हुआ।

(३) यदि चन्द्रमा १०।२०।३५।४८ तथा राहु २।१८।४०।५५ हो तो व्यगु ८।१।५४।५३ का भुज २।१।५४।५३ होगा। यहाँ राशि स्थान में २ है अतः यह तीसरी राशि में है। उक्त नियम के अनुसार भुजांशादि १।५४।५३ के आधे ०।५७।५६ में ७७ जोड़ने से योगफल ७७।५७।२६ दक्षिण शर हुआ। क्यों कि यहाँ भी व्यगुचन्द्र दक्षिण गोल का है।

पठितखण्डद्वारासूक्ष्मशरसाधनम्—

नृपतिथिमनुविश्वरुद्रगोऽद्रिश्रुतिवसुधाः शरखण्डकानि तैर्यत्।
व्यगुविधुभुजतोऽपमोक्तिवद्वा व्यगुविधुदिग् विशिखोऽङ्गुलादिकः स्यात् ॥१०

मल्लारि :—इदानीं खण्डकैः सूक्ष्ममप्याह। व्यगुचन्द्रभुजांश दशांशमित खण्डैक्यं शेषं भोग्यखण्डाहतिदशांशयुक्तं सदंगुलादिकः शरः स्यादित्यर्थः। उपपत्तिरत्रातिस्फुटा ॥१०

चन्द्रिका :—नृप (१६), तिथि (१५) मनु (१४), विश्व (१३), रुद्र (११), गो (९), अद्रि (७), श्रुति (४), वसुधा (१), अर्थात् १६।१५।१४-१३।११।९।७।४।१ ये शरखण्ड हैं। इनके द्वारा व्यगु विधु (राहुरहित चन्द्र) के भुजांश द्वारा क्रान्तिसाधन की तरह जो फल सिद्ध हो, वह व्यगुचन्द्र की दिशा का अङ्गुलादिशर होता है। १०

उदाहरण—व्यगु चन्द्र ५।२६।२६।३० इसका भुज (६।०।०।०–५।२६।२६।३०)=०।३।३३।३० बनाकर भुजांश ३।३३।३० में १० का भाग दिया लब्धि ० गत खण्ड। पठित ऐष्य खण्ड। १६ से शेष ३।३३।३० को गुणनफल ५६।५६।० में १० का भाग देकर लब्धि ५।४१।३६ को गत खण्ड ० में जोड़ने से ५।४१।३६ अङ्गुलादि शर उत्तर गोल का हुआ क्योंकि व्यगुचन्द्र उत्तर गोल का है।

ग्रहाणामुदयास्तदिग्ज्ञानम्—

लघुगोऽल्प इनादुदेति पूर्वे भूयान् भूरिगतिर्ग्रहः प्रतीच्याम्।
भूयाँल्लघुगः परत्र चास्तं प्राच्यां भूरिजवो लघुः प्रयाति ॥११

मल्लारि :—अथ ग्रहणां पूर्वपश्चिमदिशोरुदयास्तकारणमाह लघुगोऽल्प इति। यो ग्रह इनात् सूर्यात् लघुगोऽल्पगतिः। अल्पश्च भागैरपि न्यूनः स पूर्वस्यामुदयं प्राप्नोति। यो ग्रहो भूयान् सूर्यापेक्षया भागैरधिकः। भूरिगतिः सूर्याधिकगतिश्च स प्रतीच्यां पश्चिमायामुदेति उदयं प्राप्नोति। यो भूयान् सूर्याधिकभागो लघुगः सूर्यादल्पगतिः स परत्र पश्चिमदिशि अस्तं गच्छति। यो भूरिजवः सूर्याधिकगतिः। लघुः सूर्याद् भागैरल्पः स प्राच्यां पूर्वदिशि अस्तं याति। इदं सूर्यकृतोदयास्तलक्षणं दैनन्दिनोदयास्तौ ग्रहाणां प्रवहानिलवशेन पूर्वपश्चिमयोर्वर्त्तते एवेति ॥११

अत्रोपपत्ति :—सूर्यादल्पोऽल्पगतिश्च ग्रहः सूर्यात्पूर्वराश्यंशे स्थितोऽतः सूर्योदयात् पूर्वमेव तस्योदयः। अतः कालांशतुल्यान्तरेण तस्य पूर्वोदयः स्यात्। यः सूर्यादधिकः। अधिकगतिश्च ग्रहः। स पश्चिमायामुदेति विलोमत्वात्। यः सूर्यादधिकः। अल्पगतिस्तं ग्रहं त्यक्त्वा सूर्योऽग्रतो याति। अतः पश्चिमायामस्तः। यो भागैरल्पो गत्याधिकः स सूर्यं प्रति गच्छति अतोऽल्पत्वात् पूर्वस्यामस्तो भवतीत्युपपन्नम् ॥११

चन्द्रिका :—सूर्य से अल्प गति वाले ग्रह यदि राश्यादि मान में भी सूर्य से अल्प हों तो वे पूर्व दिशा में उदित होते है तथा जो ग्रह सूर्य से अधिक गति वाले हैं एवं राश्यादि मान में अधिक हैं वे पश्चिम दिशा में उदित होते हैं। इसी प्रकार सूर्य से अल्प गति तथा राश्यादि में अधिक मान वाले ग्रह पश्चिम मे अस्त होते हैं तथा अधिक गति वाले एवं राश्यादि मान में अल्प ग्रह पूर्व दिशा में अस्त होते हैं॥ ११

उदयास्तकालांशाः—

भास्करा नगभुवो गुणचन्द्राः भूभुवो दिविसदस्तिथयोऽब्जात् ।
प्राक्तनैर्निगदिता समयांशा वक्रिणोर्भृगुविदोः क्षितिहीनाः ॥१२

मल्लारिः—अथोदयास्तनिमित्तं कालांशानाह। अब्जात् चन्द्रमारभ्य ग्रहाणामेते कालांशाः स्युः। भास्करा द्वादशभागाश्चन्द्रस्य। नगभुवः सप्तदश भौमस्य। गुणचन्द्रास्त्रयोदश बुधस्य। भूर्भुव एकादश गुरोः। दिविसदो नव शुक्रस्य। तिथयः पञ्चदश मन्दस्य। प्राक्तनैः पूर्वाचार्यैरेते कालांशा निगदिताः। भृगुविदोः शुक्रबुधयोः वक्रिणोः सतोस्ते कालांशाः क्षित्या एकेन हीनाः ॥१२

अत्रोपपत्तिः—अत्रोदयोऽस्तो वा तुल्यैरेव कालांशैः लक्षणोपायैर्भवति। कालांशा यथा। यद्दिने ग्रहस्योदयोऽस्तो वा आकाशे ज्ञातस्तद्दिने सूर्यग्रहयोरन्तरे लग्नसूर्यान्तरवत् लङ्कोदयैः कालः साध्यः। ता घटिकाः षड्गुणा भागाः स्युः। ते कालस्यांशाः अतः कालांशा इत्यन्वर्थं नाम। अत्र बुधशुक्रयोर्वक्रिणोः सतो निरेकैस्तैः कालांशैस्तयोरुदयास्तौ भवत इत्युपपन्नम् ।१२

चन्द्रिका—भास्कर (१२), नगभुवः (१७), गुणचन्द्र (१३), भू भुवः (११), दिविसदः (९), तिथयः (१५), ये चन्द्रादिग्रहों के कालांश पूर्वाचार्यों ने कहा है। अर्थात् चन्द्र का कालांश १२, मङ्गल का १७, बुध का १३, गुरु का ११। शुक्र का ९ तथा शनि का १५ है। यदि शुक्र और बुध वक्री हो तो उक्त कालांश में १ घटाने से उनके कालांश होते हैं। अर्थात् वक्री बुध का १२ तथा वक्री शुक्र का ८ कालांश होगा। १२

भौमादीनां पातांशाः—

खाम्बुधयः खयमाः खभुजङ्गाः खाङ्गमिताः खदश क्रमशः स्युः ।
पातलवाः कुसुताद्बुधभृग्वोर्मध्यमचञ्चलकेन्द्रविहीनाः ॥१३

मल्लारिः—अथ भौमादीनां पातानाह। कुसुताद्भौममारभ्य ग्रहाणामेते पातस्य लवा भागाः स्युः। खाम्बुधयश्चत्वारिंशद्भागा भौमस्य। खयमा विंशतिर्भागा बुधस्य। खभुजंगा अशीति भागा गुरोः। खांगमिताः षष्टिभागाः शुक्रस्य। खदश शतमिता भागाः शनेः। बुधभृग्वोः पातांशा मध्यमेनाहर्गणोत्पन्नेन चञ्चलकेन्द्रेण शीघ्रकेन्द्रेण विहीनाः कार्याः।

अत्रोपपत्तिः—मन्दस्फुटो ग्रहः शीघ्रप्रतिमण्डले भ्रमति विमण्डलाश्रितः सन्निति। तस्मान्मन्दस्फुटादेव शरः साध्यते इत्युपपत्तौ ग्रहः सपातः कार्यः। अत्र विमण्डल-

क्रान्तिमण्डलयोः सम्पातस्तत्र ग्रहस्य शराभावः। एवमत्र सम्पाते विक्षेपपाते क्रान्तिमण्डले यो राश्याद्यवयवः स एव पातः। एवं ग्रहाणां पातलवाः सिद्धाः पाठपठिता एवं पातात् षड्भान्तरेऽपि शराभावः। एवं बुधशुक्रयोः पातलवाः शीघ्रप्रतिमण्डलस्था एवं पठिताः सन्ति स्वशीघ्रकेन्द्र भागैरधिकाः कृत्वा पठिताः। अतः शीघ्रकेन्द्रविहीना एते पाताः। मन्दस्फुटग्रहयुक्तपातात् शरः साध्य इत्यग्रेऽपि वक्ष्यतीत्युपपन्नम् ॥१३

चन्द्रिका—खाम्बुधि (४०), खयमा (२०), खभुजङ्ग (८०), खाङ्ग (६०), खदश (१००) ये भौमादि ग्रहों के क्रम से पातांश हैं। अर्थात् भौम का ४०, बुध का २०, गुरु का ८०, शुक्र का ६० तथा शनि का १०० पातांश है। बुध और शुक्र के पातांश में इनके मध्यम केन्द्र घटाने से वास्तविक पातांश होते हैं। १३

शीघ्रकर्णसाधनम्—

कुद्वित्र्यब्धियुगाश्विनो दलचयश्चेत् षड्भपुष्टं चलं
केन्द्रं चक्रविशुद्धमस्य भमितार्धैक्यं लवघ्नागतात्।
त्रिंशल्लब्धयुतं कुजात्कुयमलाब्धीन्द्वद्रि भक्तं क्रमात्
तद्धीनाधृतिरिष्विला गुणभुवो गोऽब्जा इनाद्राक्श्रुतिः ॥१४

मल्लारिः—अथ ग्रहाणां शीघ्रकर्णानयनमेकवृत्तेनाह। अयं दलानां खण्डानां चयः स्यात्। कुरेकः। द्वौ। त्रयः। अब्धयश्चत्वारः। युगानि चत्वारि। अश्विनौ द्वौ। एतानि षट् खण्डानि स्युः। चलकेन्द्रं चेत् षड् भपुष्टं षड्राश्यधिकं तदा चक्रात् द्वादशराशिभ्यः शुद्धम्। अस्य चलकेन्द्रस्य यानि भानि राशयः। तन्मितार्धानामैक्यं कार्यम्। लवघ्नागतात् भागगुणितभोग्यखण्डात् त्रिंशता यल्लब्धं तेन तदैक्यं युतं कार्यम्। ततः कुजात् मंगलमारभ्य कुयमलाब्धीन्द्वद्रिभक्तम्। भौमस्यैकभक्तम्। बुधस्य द्विभक्तम्। गुरोश्चतुर्भक्तम्। शुक्रस्यैकभक्तम्। शनेः सप्तभक्तम्। क्रमात् तत्फलेन एतेऽङ्का ऊनाः कार्या धृतिः अष्टादश भौमस्य फलेन हीना भौमस्य शीघ्रकर्णः। इष्विलाः पञ्चदश बुधस्य। गुणभुवस्त्रयोदश गुरोः। गोऽब्जा एकोनविंशतिः शुक्रस्य। इना द्वादश शनेरेतेऽङ्काः फलेन हीनाः सन्तो यच्छेषं तद्ग्रहाणां द्राक्श्रुतिः शीघ्रकर्णः स्यात् ॥१४

अत्रोपपत्तिः—अत्र कोटिज्यान्त्यफलज्ययोर्मृगकर्यादिशीघ्रकेन्द्रे योगान्तरं कोटिः शीघ्रकेन्द्रदोर्ज्या भुजः अनयोर्वर्गैक्यपदं कर्णः। शीघ्रप्रतिमण्डले व्यासार्धमत्र

तु दोर्ज्याकोटिज्यादिविधिनास्ति । अतः प्रतिराशिशीघ्रकर्णः साधितः । शीघ्रफलयुतराशित्रयं प्रथमं पदम् । शीघ्रफलोनं राशित्रयं द्वितीयम् । अतः षड्राशिमध्ये पदद्वयमस्त्येव । अतः षट् खण्डान्येव कर्णार्थं शीघ्रकेन्द्रात् साधितानि । तानि भवमितां त्रिज्यां परिकल्प्य भौमशीघ्रफलान्त्यज्यातः साधितानि । ग्रहाणां परमशीघ्रफलज्या भिन्ना भिन्ना । अतो हि भौमशीघ्रपरमफलज्या-८१ यामस्यां यद्येतानि खण्डानि तदेष्टग्रहपरमशीघ्रफलज्यासु कान्यतो बुधादीनां यमलाब्धोन्द्वद्विभक्तमुक्तं भौमस्य यथास्थितत्वात् कुभक्तमिति । अनेन फलेन परमशीघ्रकर्णा यावदूनीक्रियन्ते तावदिष्टशीघ्रकर्णा भवन्ति । परमशीघ्रकर्णास्तु त्रिज्यान्त्यफलज्यायोगतुल्याः । यथा भौमस्यान्त्यफलज्या ८१ । इयं त्रिज्यायुता २०१ । यदि त्रिज्यायामस्यां १२० परमभौम शीघ्रकर्णोऽयं २०१ तदेष्टायां भवतुल्यायां किमिति जाताः १८ । अत्र भवमितित्रिज्यां सप्तमितान्त्यफलज्या ।७। अतस्त्रिज्यान्त्यफलज्यायोगे परमशीघ्रकर्णोऽयं १८ युक्तः । एवं त्रिज्यान्त्यफलज्यान्तरेण परमाल्पशीघ्रकर्णः । अत्र भौमस्य कुभक्तमिति यदुक्तं तेन सर्वखण्डयोगे १६ । धृतिशुद्धे द्वयं परमाल्पः शीघ्रकर्णः स चायुक्तः । तत्साधितोऽग्रे यः शरः स च त्रिज्याल्प ११ शीघ्रकर्णे पुनर्द्विभक्तः कार्य इति युक्तः । अन्यत्र महदन्तरं स्यात् । त्रिज्याधिकशीघ्रकर्णे नान्तरं तत्र स्वांङ्घ्र्यून इत्येव । अथवा तत्रापि चेत् द्विभक्तस्तदा किञ्चिदन्तरः शरः स स्वल्पान्तरत्वादंगीकर्त्तव्यः । अतो न दोषायेति । एवमन्येषामपीति । अत एव तद्धीना धृतिरित्युपपन्नम् ।।१४

चन्द्रिका—शीघ्रकर्ण साधन के लिये १, २, ३, ४, ५, २ ये छः खण्ड पठित हैं। ग्रहों के शीघ्र केन्द्र यदि ६ राशि से अधिक हो तो उसे १२ राशि में घटाकर शेष के राशि स्थान में जो संख्या हो उतने पठित खण्डों का योग कर शेषांश में अग्रिम ग्रण्ड से गुणाकर गुणनफल में ३० का भाग देकर लब्धि को उक्त खण्डों के योग में जोड़कर योगफल को, भौमादि ग्रहों में क्रम से १, २, ४, १, ७ से भाग देकर लब्धि को क्रम से १८, १५, १३, १९, १२ में घटाने से भौमादि ग्रहों के अभीष्ट शीघ्रकर्ण होते हैं। १४

उदाहरण—भौम का शीघ्र केन्द्र ०।१५।९।४०, बुध का १०।५।२६। ४६, गुरु का ८।१२।४४।३०, शुक्र का ०।१३।३२।१३ तथा शनि का शीघ्रकेन्द्र ४।२५।१।२१ है। शीघ्रकर्ण साधन—भौम का शीघ्रकेन्द्र ०।१५।९।४० ६ राशि से अल्प है तथा राशि स्थान मे शून्य है। खण्डों का योग ० ही

हुआ। शेषांश १५।९।४० को अग्रिम खण्ड १ से गुणा किया। गुणनफल १५।९।४० को ३० से भाग देकर लब्धि ०।३०।१९ को ० मे जोड़ दिया। योगफल ०।३०।१९ मे १ (भौम का शीघ्रकर्ण साधन करना है, अतः प्रथम संख्या १) से भाग देकर लब्धि ०।३०।१० को प्रथम संख्या १८ में घटाने से शेष १७।२९।४१ भौम का शीघ्रकर्ण हुआ।

बुध का शीघ्रकेन्द्र १०।५।२६।४६ यह ६ राशि से अधिक है, अतः इसे १२ राशि में घटाने से शेष १।२४।३३।१४ रहा। राशि स्थान में १ संख्या है, अतः पठित खण्ड राशि संख्या तुल्य १ हुआ। शेषांश २४।३३।१४ को अग्रिम खण्ड २ से गुणा किया। गुणनफल ४९।६।२८ में ३० का भाग दिया लब्धि १।३८।१२ को खण्डों के योग १ में जोड़कर २।३८।१२ म (बुध की संख्या) २ से भाग देकर लब्धि १।१९।६ को बुध के अङ्क १५ में घटाने से शेष १३।४०।४५ बुध का शीघ्रकर्ण हुआ।

गुरु का शीघ्रकेन्द्र ८।१२।४४।३० है। यह ६ राशि से अधिक है, अतः इसे १२ राशि में घटाकर शेष ३।१७।१५।३० कीं राशि संख्या ३ के समान पठित तीन खण्डो १+२+३ का योग ६ किया। शेषांश १७।१५।३० को अग्रिम खण्ड से गुणा किया। गुणनफल ६९।२।१० में ३० का भाग देकर लब्धि २।१८।४ को खण्डों के योग ६ में जोड़कर ८।१८।४ में गुरु के अंक ४ से भाग देकर लब्धि २।४।३१ को गुरु के अंक १३ में घटाने से शेष १०।५५।२९ गुरु का शीघ्रकर्ण आया।

शुक्र का शीघ्र केन्द्र ०।१३।२३।१३ छः राशि से अल्प है तथा राशिस्थान में शून्य है। अतः खण्डों का योग ० ही हुआ। शेषांश १३।३२।१३ को अग्रिम खण्ड १ से गुणा कर गुणनफल १३।३२।१३ में ३० का भाग देकर लब्धि ०।२७।४ को ० में जोड़कर ०।२७।४ में शुक्र के अङ्क १ से भाग देकर लब्धि ०।२७।४ को शुक्र के अङ्क १९ में घटाने से शेष १८।३२।५६ शुक्र का शीघ्रकर्ण हुआ।

शनि का शीघ्रकेन्द्र ४।२५।१।२१ है। यह ६ राशि से अल्प है तथा राशिस्थान में ४ संख्या है। अतः पठित चार खण्डों का योग १+२+३

+४=१० किया। शेषांश २५।१।२१ को अग्रिम संख्या ४ से गुणाकर गुणनफल १००।५।२४ में ३० से भाग देकर लब्धि ३।२०।१० को संख्याओं के योग १० में जोड़कर योगफल १३।२०।१० में शनि के अङ्क ७ से भाग देकर लब्धि १।५४।१८ को शनि के अङ्क १२ में घटाने से १०।५।४२ शनि का शीघ्रकर्ण हुआ।

भौमादिग्रहाणां शरसाधनम्—

मन्दस्पष्टखगात् स्वपातरहितात् क्रान्त्यंशकाः केवलात्
कर्णाप्तास्त्रियमाहता अथ गुरोश्चेल्लोचनाप्ताः पुनः।
स्वाङ्घ्र्यूना असृजोऽङ्गुलादिकशरः पातोनदिक् स्यादसौ
त्रिघ्नः स्यात् कलिकादिकः स्फुटतरस्तत्संस्कृतश्चापमः ॥१५

मल्लारि :—एवं शीघ्रकर्णं प्रसाध्येदानीं ग्रहाणां शरं साधयति। स्वपातरहितात् मन्दस्पष्टग्रहात्। केवलादित्ययदत्तायनांशात् क्रान्तिभागाः साध्याः। ते त्रियमैस्त्रयोविंशत्या आहताः। ततः कर्णेन आप्ता भक्ताः अथ गुरोर्बृहस्पतेस्तर्हि लोचनाभ्यां द्वाभ्यां भक्ताः कार्याः। असृजो भौमस्य चेत् तर्हि द्वयाप्ताः पुनः स्वांघ्रिणा ऊनाः सन्तः पातोनग्रहो यस्मिन् गोले तद्दिगंगुलादिकशरः स्यात्। त्रिगुणः कलादिकः स्यात्। तेन कलादिना बाणेन अपमो ग्रहक्रान्तिः संस्कृता एकान्यदिशोर्युक्तोना स्फुटतरा भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—अत्र ग्रहाणां पठिताः शरकला। शीघ्रकर्णाग्रस्थानीयाः। शीघ्रप्रतिमण्डले हि शीघ्रकर्णो व्यासार्धम्। एवं शीघ्रप्रतिमण्डले मन्दस्पष्ट एव ग्रहो भ्रमति तत्रैवास्य पातः। अतो मन्दस्पष्टात् पातयुतात् शरः साध्य इति युक्तमुक्तम्।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ

मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले हि ग्रहो भ्रमत्यत्र च तस्य पातः।
पातेन युक्ताद् गणितागतेन मन्दस्फुटात् खेचरतः शरोऽस्मात्* ॥

अत्राचार्येण पाताश्चक्रशुद्धाः कृताः। अतः पातरहितादित्युक्तम्। अत्रानुपातः—यदि चतुर्विशतिमितायां क्रान्तौ एताः पठितशरकलास्तदेष्टायां ग्रहक्रान्तौ का इति। अत्र लाघवार्थं स्वल्पान्तरत्वात् अंगुलादिकशरस्योपयोगित्वात् सर्वेषां शरः पञ्चाशदंगुलो गृहीतः। एवमिष्टग्रहक्रान्त्यंशानां

---

*सि शि. गो. अ. गो. ब. २१

पञ्चाशद्गुणः चतुर्विंशतिर्हरः। यदि कर्णाग्रे अयं तदा चतुर्विंशतित्रिज्याग्रे कः। एवं चतुर्विंशति तुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशे कृते क्रान्तेः पञ्चाशद्गुणः कर्णो हरः। अत्र कर्णो हि भवमितत्रिज्यां प्रकल्प्य कृतोऽस्ति। अतोऽन्योऽनुपातः। यदि चतुर्विंशतिव्यासार्धेऽयं तदा भवमिते क इति। एवं भवपञ्चाशद्घातो गुणः ५५० । चतुर्विंशतिर्हरः। कर्णोऽपि हरः। अत्र सिद्धौ गुणहरौ हरेणापवर्तितौ जातो गुणस्त्रयोविंशतिः। अतः क्रान्त्यंशकास्त्रियमाहताः कर्णाप्ता इति। अत्र बुधशुक्रशनीनां स्वल्पान्तरत्वात् सम एव गृहीतः। गुरोः पठितशरः पञ्चविंशतिः। पञ्चाशन्मितः कृतोऽस्त्यतो लोचनाप्ता इति। एवं भौमस्य सप्तत्रिंशत्। अतस्ते स्वाङ्घ्रयूना इति। परमाल्पशीघ्रकर्णोऽर्धमतो द्वयाप्तोऽपि। कलात्रयेणैकाङ्गुलमत-स्त्रिघ्नः कलाद्यः स्यात्। एवमत्र नाडीमण्डलात् क्रान्तिमण्डलपर्यन्तं दक्षिणोत्तरमन्तरं क्रान्तिः। क्रान्तिमण्डलाद्ग्रहपर्यन्तं शरः। एवमुभयोः संस्कारे स्पष्टा क्रान्तिर्नाडि-कामण्डलग्रहयोरन्तरे भवतीत्युपपन्नम् ॥१५

चन्द्रिका :— मन्दस्पष्ट (भौमादि) ग्रहों में अपने अपने पात घटाकर शेष से अयनांश संस्कार विना ही क्रान्ति साधन (पूर्वोक्त* रीति से) करके उसमें २३ का गुणाकर गुणनफल में अपने-अपने शीघ्रकर्ण का भाग देने से लब्धि अङ्गुलादि शर होता है। उक्तरीति से साधित बृहस्पति के शर में २ का भाग देने से तथा मङ्गल के शर में उसी का चतुर्थांश घटाने से वास्तविक शर होता है। पातोन मन्दस्पष्ट ग्रह जिस गोल का होगा उसी दिशा का शर होगा।

शर को ३ से गुणा करने से कलादि होता है। इस शर का मध्यमा क्रान्ति के साथ संस्कार (एक दिशा में योग भिन्न दिशा में अन्तर) करने से स्पष्ट क्रान्ति होती है। १५

उदाहरण—मङ्गल का पात १।१० बुध का ०।२० मन्दस्पष्ट मङ्गल ६।१५।४१।२८ मन्दस्पष्ट बुध ७।१३।१४।२९ म. स्प. मं. ६।१५।४१।२८ में मङ्गल का पात १।१० घटाने से शेष ५।५।४१।२८ उत्तर गोल का हुआ। शेष ५।५।४१।२८ द्वारा क्रान्ति साधन के लिए भुज बनाया—

६। ०। ०। ०	
५। ५।४१।२८	
०।२४।१८।३२	भुज

भुजांश २४।१८।३२ में १० का भाग देने से लब्धि २ प्राप्त हुई अतः दूसरे गताङ्क ८० को ऐष्याङ्क ११७ में घटाकर चयान्तर ३७ से भाग देने से प्राप्त शेष ४।१८।३२ को गुणाकर गुणनफल १५९।२५।४४ को १० से भाग देकर लब्धि १५।५६।३४ को गताङ्क ८० में जोड़कर ९५।५६।३४ को दश से भाग देने से लब्धि ९।३५।३९ उत्तरा क्रान्ति हुई। इसे २३ से गुणा कर (९।३५।३९) × २३ = २२०।३९।५७ गुणनफल को एक जातीय (७९४३९७) बनाकर भौम के शीघ्रकर्ण १७।२९।४१ के एक जातीय मान ६२९८१ से भाग देने पर १२।३६।४७ लब्धि प्राप्त हुई इसमें ४ का भाग देकर लब्धि ३।९।८ को १२।३६।४७ से घटाने पर शेष ९।२७।३९ अङ्गुलादि उत्तर दिशा में भौम का शर हुआ।

शर ९।२७।३९ को ३ से गुणा किया। २८।२२ कलादि गुणनफल को उत्तर क्रान्ति ९।३५।३९ में (एक ही दिशा के दोनों हैं, अतः) जोड़ने से १०।३।५१ स्पष्ट क्रान्ति हुई।

इसी प्रकार बुध के पठित पात ०।२० में बुधकेन्द्र १०।५।२६।४६ घटाने से शेष २।१४।३३।१४ बुध का वास्तविक पात हुआ। पात २।१४।३३।१४ को मन्दस्पष्ट बुध ७।१३।१४।२९ से घटाकर पातोन बुध ४।२८।४१।१५ से उक्त नियमानुसार क्रान्ति साधन करने से बुध की १२।८।४६ उत्तरा क्रान्ति हुई। क्रन्ति १२।८।४६ को २३ से गुणा कर गुणनफल २७९।२१।३८ के एक जातीय मान १०४१६६० में बुध के शीघ्रकर्ण १३।४०।५४ के एक जातीय मान ४९२५४ से भाग देने पर लब्धि २१।८।५५ बुध का अङ्गुलादि शर हुआ। पातोन बुध उत्तरगोल का है, अतः शर भी उत्तर दिशा का हुआ।

शर २१।८।५५ को ३ से गुणा करने पर गुणनफल कलादि ६३।२६।४५ हुआ। ६० से तष्टित करने से अंशादि बुध शर १।३।२६।४५। हुआ। क्रान्ति और शर एक ही दिशा के हैं, अतः दोनों का योग करने (उ. क्रां. १२।८।४६ + उ. श. १।३।२६) = १३।१२।१२ स्पष्टक्रान्ति।

स्फुटग्रहज्ञाने मन्दस्पष्टग्रहसाधनम्—

वक्रास्ताद्यं तिथिपटगतं तद्दिनेऽस्योक्तकेन्द्रं
स्यात् तच्चाल्यं त्वभिमतदिने स्वाशुकेन्द्रोक्तगत्या।
तस्मात् प्राग्वच्चलफलमिदं चालितस्पष्टखेटे
व्यस्तं देयं मृदुजफलभाक् स्यात् ततो वा शराद्यम् ॥१६

मल्लारिः—अथ पञ्चांगीयं स्फुटग्रहज्ञाने वक्रादिदिनज्ञाने चेष्टदिनस्थमन्दस्पष्टग्रहसाधनं करोति। तिथिपटे पञ्चांगे गतं वर्तमानं यद्वक्रास्ताद्यं तद्दिने तस्य ग्रहस्य उक्तकेन्द्रं त्रिनृपैरित्यादिकं स्यात्। तदभिमते इष्टे दिने। स्वशीघ्रकेन्द्रोक्तगत्या गतगम्यदिनाहतद्युभुक्तेरित्यादिविधिना चालनीयं तस्मात् शीघ्रकेन्द्रात् पूर्वोक्तरीत्या शीघ्रफलं साध्यम्। इदं चालितस्पष्टग्रहे व्यस्तम्। धनं चेत् तदा ऋणं ऋणं चेत् तदा धन देयं स ग्रहो मन्दस्पष्टो भवति। तस्माद्वासराद्यं साध्यमिति।

अत्रोपपत्तिः—प्रत्यक्षविलोमविधिनैव सुगमा ॥१६

चन्द्रिका—पञ्चाङ्ग में ग्रहो के वक्रास्तादि का जिस दिन निर्देश हो उसदिन उस ग्रह का शीघ्रकेन्द्र पठितशीघ्रकेन्द्र* के तुल्य ही होगा। उसमें अपनी अपनी केन्द्रगति से चालन देकर अभीष्ट कालिक शीघ्रकेन्द्र का साधन कर, तथा पञ्चाङ्गस्थ ग्रह में ग्रहगति का चालन देकर अभीष्ट कालिक ग्रह साधन कर पूर्वोक्त विधि से शीघ्रफल का साधन करना चाहिये। स्पष्ट ग्रह मे शीघ्रफल का विलोम संस्कार करने से मन्दस्पष्ट ग्रह होगा। पूर्वोक्त विधि से साधित मन्दस्पष्ट ग्रह द्वारा शर आदि का साधन करना चाहिये। १६

दृक्कर्मार्थं नतांशसाधनम् –

प्राक् त्रिभेण वर्जितात् संयुतात् तु पश्चिमे।
खेटतोऽपमाक्षयोः संस्कृतिर्नता लवाः ॥१७

मल्लारिः—अथ नतांशान् साधयति प्राक् पूर्वोदयास्तसाधने राशित्रयेण हीनात्। पश्चिमोदयास्तसाधने राशित्रयेण युक्तात् स्पष्टात् ग्रहात् क्रान्तिः साध्या साक्षांशैः संस्कृता नतांशाः स्युरित्यर्थः ॥१७

*त्रिनृपैः ग्र. ला. ३. १५

चन्द्रिका—ग्रहों के पूर्वोदयास्त साधन मे ग्रह से ३ राशि घटाकर तथा पश्चिमोदयास्त साधन में ३ राशि जोड़कर सत्रिभ एवं वित्रिभ ग्रहों के द्वारा क्रान्ति साधन कर अक्षांश के साथ संस्कार (एक दिशा में योग भिन्न दिशा में अन्तर) करने से नतांश होता हैं। १७

उदाहरण—स्पष्ट बुध ६।२९।३३।३९
− ३
३।२९।३३।३९ वित्रिभ बुध

वित्रिभ बुध में अयनांश २३।३२।३० जोड़ने से सायन वित्रिभ बुध ४।२३।६।९ हुआ। इससे क्रान्तिसाधन के लिए भुज १।६।५३।५१ बनाया। नियमानुसार क्रान्ति १४।२।४२ उत्तर दिशा की हुई। पूर्वसाधित अक्षांश २५।२६।४२ दोनों भिन्न दिशा के हैं। अतः दोनो का अन्तर करने से (२५।२६।४२ − १४।२।४२) = ११।२४।० नतांश दक्षिण दिशा का हुआ।

इसी प्रकार स्पष्ट बुध ६।२९।३३।३९ में ३ राशि जोड़कर सत्रिभ बुध द्वारा नतांश साधन करेंगे। सत्रिभ बुध में अयनांश जोड़कर उक्त-विधि से क्रान्ति साधन कर अक्षांश में संस्कार करने से नतांश होगा।

स्पष्ट शुक्र ७।१८।४४।१२ में ३ राशि घटाकर शेष ४।१८।४४।१२ द्वारा उक्त रीति से शुक्र का नतांश साधन किया—

सायनशुक्र ५।१२।१६।४२ भुज ०।१७।४३।१८ उत्तर क्रान्ति ७।५।१९, दक्षिण अक्षांश २५।२६।४२ भिन्न दिशा होने से दोनों का अन्तर करने से शेष १८।२१।२३ दक्षिण नतांश हुआ।

दृक्कर्मसाधनम्—

षट्शैलाष्टनवार्कधृत्यदितिजाः खण्डानि कार्यं नतां-
शाशांशप्रमखण्डकैक्यमगतोच्छिष्टांशघाताद्युतम्।
आशाप्त्या रविहृच्छराङ्गुलहतं लिप्ता ग्रहे ता नतां-
शेष्वोः स्वर्णमभिन्नभिन्नदिशि स व्यस्तं परे दृग्ग्रहः॥ १८

मल्लारिः अथ दृक्कर्म साधयति। षट्शैलाष्टनवार्कधृत्यदितिजाः। एतानि खण्डानि। नतांशानां यो दशमांशस्तत्तुल्यखण्डानामैक्यं कार्यम्। ततस्तत् अगत-

खण्डशेषभागघ्नाद्दशमांशेन युतम् । शरांगुलगुणितं द्वादशभक्तं लिप्ता दृक्कर्मकला भवन्ति । ताः कलाः स्पष्टे ग्रहे धनं वा ऋणं देयाः । शरनतांशयोरेकदिक्त्वे धनं भिन्नदिक्त्वे ऋणम् । पश्चिमोदयास्तसाधने व्यस्तमिदम् । दृग्ग्रहो दृक्कर्मदत्तो ग्रह आकाशे दृग्गोचरो भवतीत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः - ग्रहो यस्मिन् राश्याद्यवयवे वर्तते स क्रान्तिमण्डलस्थो राश्याद्यवयवो यदा क्षितिजे उदेति तदैव ग्रहस्य नोदयः । ग्रहस्य विमण्डलेऽवस्थितत्वात् । शरतुल्येनान्तरेण ग्रहः क्षितिजादुन्नमितो नमितो वा भवति । तदन्तरस्य दृक्कर्मसंज्ञा । यतोऽन्वर्थं नाम दृशःकर्म दृक्कर्म । तावताऽन्तरेण ग्रहो दृग्गोचरो भवति । तदपि दृक्कर्म द्विविधम् । आयनमाक्षजं चेति । शिरोमणौ*

क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानचिन्हं यदा स्यात् कुजे नो तदा खेचरोऽयं यतः ।
स्वेषुणोक्षिप्यते नाम्यते वा कुजात् तेन दृक्कर्मखेटोदयास्ते कृतम् ॥
नैव बाणः कुजेऽसौ कदम्बोन्मुखस्तत्समुत्क्षेपणं नामनं च द्विधा ।
आयनं चाक्षजं तेन कर्मद्वयं तत्प्रपञ्चः पुनः संविविच्योच्यते ॥

एवमत्र च ग्रहादग्रतास्त्रिभेऽन्तरे दृक्कर्मणः परमत्वात् पूर्वस्या त्रिभहीनः पश्चिमायां त्रिभयुक्तः इति तद्ग्रहस्य नतांशज्यातोऽनुपातः । यदि उन्नतज्याकोटौ नतज्या भुजस्तदा शरकोटौ क इति दशभागोत्तरान् नतांशान् प्रकल्प्य तज्जीवाः स्वस्वोन्नतांशज्या भक्ताः सावयवा अतो द्वादशभिः सवर्णिताः । अनुपातो शरः कलात्मकः । अत्रांगुलाद्यो गृहीतोऽतः पुनस्त्रिसवर्णिताः कृत्वा खण्डानि पठितानि । तत्र प्रथमं खण्डं प्रतीत्यर्थं साध्यते । दशतुल्यनतांशानां ज्या २१ । इयमेव षट्त्रिंशता सवर्णिता ७५६ उन्नतांशज्ययाऽनया ११८ भक्ता जातमाद्यखण्डम् ६ । एवमन्यान्यपि । मध्येऽनुपातः । यदि दशभागैरेकं खण्डं तदेष्टभागैः किमिति । फलयुक्तं गतखण्डैक्यं कार्यं तस्य शरो गुणो वर्त्तते । खण्डानि द्वादशगुणान्यतो द्वादश हरः । अतो रविहृत् शरांगुलहतमिति । धनर्णोपपत्तिर्यथा । उन्नमिते ऋणं नमिते धनम् । यतः खस्वस्तिकात् क्रान्तिवृत्तस्य यत्रोन्नमनं तद्दिग्ग्रहस्यापि क्षितिजान्नमनं भवति । तस्माद्धनम् । अन्यदिक्त्वे ऋणमित्युपपन्नम् ॥ १८

चन्द्रिका -(दृक्कर्म साधनार्थ) ६,७ ८,९,१२,१८ ३३ ये खण्ड (पठित) हैं। नतांश में १० का भाग देकर लब्धि संख्या तुल्य उक्त पठित खण्डों का योग कर पृथक् रखें। ऐष्य संख्या से शेषांश को गुणा कर गुणन फल में

*सि. शि. गो. अ. उद. था. १,२

१० का भाग देकर लब्धि को खण्डों के योग में जोड़कर पुनः अङ्गुलादि शर से गुणा कर गुणनफल में १२ का भाग देने से लब्धि कलादि दृक्कर्म होता है। नतांश और शर की एक दिशा हो तो ग्रह में जोड़ने से तथा भिन्न दिशा होने पर ग्रह में घटाने से पूर्व दिशा में उदयास्त साधनोपयोगी दृग्ग्रह होता है। पश्चिम दिशा के उदयास्त ज्ञान के लिए दृक्कर्म के विपरीत संस्कार से दृग्ग्रह होता है। १८

उदाहरण—दक्षिण नतांश ११।२४।० में १० का भाग देने से लब्धि १ तथा शेष १।२४।० प्राप्त हुआ। लब्धि तुल्य प्रथम खण्ड ६ को एक स्थान में रखा। अग्रिम खण्ड ७ से शेष १।२४।० को गुणा कर गुणनफल ९।४८।० में पुनः १० का भाग दिया। लब्धि ०।५८।४८ को प्रथम खण्ड ६ में जोड़ने से ६।५८।४८ हुआ। इसमें बुध के अङ्गुलादि शर २१।८।५५ उ० से गुणा किया। गुणनफल १४७।३७।२ में १२ का भाग देने से प्राप्त लब्धि १२।१८ कलादि दृक्कर्म हुआ। नतांश दक्षिण दिशा का तथा शर उत्तर दिशा का है। अतः दिग्भेद के कारण ग्रह में घटाने से दृग्ग्रह होता है।

स्प० बुध	६।२९।३३।३९
	—१२।१८
	६।२९।२१।२१

इसी प्रकार शुक्र के दक्षिण नतांश १८।२१।३२ में १० का भाग देकर लब्धि तुल्य प्रथम खण्ड ६ में अग्रिम खण्ड ७ से गुणित शेषांश ८।२१।३२ के दशमांश ५।५१।४ जोड़कर योगफल ११।५१।४ में शुक्र के उत्तर शर ६।२० से गुणा कर गुणनफल ७५।३।२५ में १२ का भाग देने से लब्धि ६।१५।२७ दृक्कर्म हुआ। नतांश और शर भिन्न दिशा के हैं, अतः दृक्कर्म ऋण हुआ। स्पष्ट शुक्र ७।१८।४४।१२ में कलादि दृक्कर्म ६।१५ घटाने से ७।१८।३७।५७ दृग्ग्रह शुक्र हुआ।

उदयास्तयोर्गतगम्यकालज्ञानम्—

कल्प्योऽल्पो रविरर्कदृक्खचरयोरन्यश्च लग्नं तयो-
र्मध्ये स्युर्घटिकाश्च पूर्वविदिमाः पश्चात् सचक्रार्धयोः।

षड्घ्न्यः काललवा अमीभिरधिकैर्गम्योऽस्त ऊनैर्गतः
प्रोक्तेभ्योऽभ्यधिकैर्गतः समुदयोऽप्यूनैस्तु गम्यो भवेत् ॥ १९

मल्लारि—अथोदयास्तयोः कालज्ञानमाह। व्याख्या। अर्कः सूर्यः। दृक्खचरो दृक्कर्मदत्तो ग्रहः। अनयोर्द्वयोर्मध्ये योऽल्पः स रवि कल्प्यः। अधिको लग्नम्। तयोर्लग्नार्कयोर्मध्ये भुक्तभोग्यादि विधिना घटिकाः साध्याः। पश्चिमोदयास्तसाधने सचक्रार्धयोः षड् राशियुक्तयोर्लग्नार्कयोर्घटिकास्ताः षड्गुणा इष्टकालभागाः स्युः। तैरिष्टकालांशैः प्रोक्तकालांशेभ्यश्चन्द्रशुक्रयोस्तु वक्ष्यमाणसंस्कृतेभ्योऽभ्यधिकैरस्तो गम्यः। न्यूनैर्गतः उदयस्तु अधिकैर्गतो न्यूनैर्गम्यः।

अत्रोपपत्तिः—प्रत्यक्षसुगमा ॥१९

मञ्जुला—स्पष्ट सूर्य और दृग्ग्रह में जो अल्प हो, उसे सूर्य तथा अग्रिम राशियों में जो ग्रह हो, उसे लग्न कल्पना करके इष्टघटी साधन विधि° से दोनों की अन्तरघटी साधन कर ६ से गुणा करने पर गुणनफल अन्तरांश होता है। अन्तरांश यदि उक्त कालांश से अधिक हो तो अस्त गम्य एव अल्प हो तो अस्तगत होता है। इसी प्रकार कालाश से अन्तराश अधिक हो तो उदय गत, अल्प हो तो उदय गम्य होता है। १९

उदाहरण—स्प. सूर्य ७।१२।३५।३१, दृग्ग्रह बुध ६।२९।२१।२१ दृग्ग्रह बुध राश्यादि में सूर्य से अल्प है, अतः इसे तथा स्पष्ट सूर्य को लग्न मानकर अर्कभोग्यस्तनोर्भुक्तकालान्वितो इत्यादि नियमानुसार कल्पित सूर्य ६।२९।२१।२१ में अयनांश २३।३२।३० जोड़कर ७।२२।५३।५१ को सायन सूर्य मानकर ८१।४०।४३ भोग्यकाल सिद्ध किया। इसी प्रकार कल्पित लग्न ७।१२।३५।३१ में अयनांश जोड़कर सायन लग्न ८।६।८।१ द्वारा ६९।५५।२३ भुक्तकाल साधन कर दोनों (भुक्तकाल एवं भोग्यकाल) के योग १५१।३६।६ में ६० का भाग देने से (१५१÷६०)=२।३१ लब्धि इष्टघटी हुई। इसे ६ से गुणा करने पर गुणनफल १५।६ दृष्ट अन्तरांश हुआ। संस्कार २१ वें श्लोक के अनुसार।

इसी प्रकार स्प. सू. ७।१२।३५।३१, स्प. शुक्र दृग्ग्रह ७।१८।३७।५८ यहाँ दोनों ही एक ही राशि में हैं, अतः राश्यादि में साम्य होते हुए भी अंशादि शुक्र आगे है, अग्रस्थ शुक्र को लग्न मानकर "यदि तनुदिननाथावेकराशौ" इत्यादि रीति से दोनों को सायन बनाकर अन्तर करने से शेष ६।२।२७ को वृश्चिक के उदयमान ३४२ से गुणा कर गुणनफल २०६५। ५७।५४ में ३० का भाग देने से लब्धि ६८ प्राप्त हुई। इसे ६० से तष्टित करने पर १।८ इष्टघटी तथा इसे ६ से गुणा करने पर ६।४८ अन्तरांश हुआ ॥१९

चन्द्रशुक्रयोरुदयास्तान्तरांशसाधनम् —

स्यात् खाभ्राग्न्युदयान्तरं भविहृतं स्वर्णं पृथूनोदये
यत् तत्संस्कृतदृष्टिकर्मलवतः प्राणांशसंस्कारिताः।
पूर्वोक्ता भृगुचन्द्रयोः क्षणलवाः स्पष्टा भृगोश्चोनिता
द्वाभ्यां तैरुदयास्तदृष्टिसमता स्याल्लक्षितैषा मया ॥२०

मल्लारि—अथ चन्द्रशुक्रयोरुदयास्तयोरन्तरमाह। शतत्रयस्योदयस्य च यदन्तरं तद् भैः सप्तविंशत्या विहृतं भक्तं सत् यत् फलं स्यात् तत् फलं शत्रयादधिके उदये धनमूने ऋणम्। अनेन भागादि फलेन संस्कृतदृक्कर्मभागेभ्यो यः प्राणांशः पञ्चमभागस्तेन पूर्वोक्ता नवद्वादशमिताः शुक्रचन्द्रयोः कालांशाः संस्कृता धनर्णत्वेन स्पष्टाः स्युः। भृगोः शुक्रस्य द्वाभ्यां च हीनाः कार्याः। तैः कालांशैः शुक्रचन्द्रयोरुदयास्तदृष्टिसमता स्यात्। एषा मया लक्षिता वर्तमानदशामनुलक्ष्य ज्ञाताऽज्ञातो मूलोपलब्धिरेव वासनेति सिद्धम् ॥२०

चन्द्रिका—सायन शुक्र या सायन चन्द्र जिस राशि पर हो, उस राशि के स्वदेशीयोदय पल तथा ३०० के अन्तर में २७ का भाग देने से प्राप्त लब्धि का दृक्कर्म में संस्कार करें। यदि उदय पल ३०० से अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण समझना चाहिये। (उक्त लब्धि से) संस्कृत दृक्कर्म के पञ्चमांश का शुक्र तथा चन्द्र के पठित कालांश में संस्कार करने से स्पष्ट अन्तरांश होता है। शुक्र के अन्तरांश (कालांश) में

२ घटाने से वास्तविक कालांश होता है। (गणेश दैवज्ञ ने कहा है कि) इन संस्कारों से संस्कृत कालांश से ही दृक्तुल्यता होती है, ऐसा मैंने देखा है। २०

उदाहरण—स्पष्ट शुक्र ७।१८।४४।१२ में अयनांश २३।३२।३' जोड़कर सायन शुक्र ८।१२।१६।४२ के स्वदेशीय उदयपल (धनु) ३४२ में ३०० को घटाकर शेष ४२ में २७ का भाग दिया। लब्धि १।३३।२० प्राप्त हुई। उदयपल ३०० से अधिक है, अतः लब्धि धनात्मक हुई। पूर्वसाधित दृक्कर्म-६।१५ ऋणात्मक है। दोनों का अन्तर करने से शेष १।२७।५ धनात्मक रहा। इसमें ५ का भाग देकर लब्धि ०।१७ को शुक्र के पठित कालांश में जोड़ने से ९।१७ कालांश हुआ। नियमानुसार २ घटाने से शेष ७।१७ वास्तविक कालांश सिद्ध हुआ ॥२०

अन्तरांशेभ्यो दिवसानयनम्—

खाभ्राग्निभिर्विनिहताः कथितेष्टकाल-
भागान्तरस्य कलिका रविभोदयाप्ताः।
तत्सप्तमेन परतोऽथ जवान्तराप्ता
योगेन वक्रिणि दिनान्युदयास्तयोः स्युः ॥२१

मल्लारिः—अथ दिवसानयनम्। कथिताः पूर्वोक्ताः इष्टाः। इदानीमानीता ये कालांशास्तेषां यदन्तरं तस्य कला खाभ्राग्निभिः ३०० विनिहिताः शतत्रयगुणाः। ततो रविभोदयेन सूर्याधिष्ठितराशेः स्वदेशोदयेन भक्ताः। परतः पश्चिमोदयास्तसाधने तत्सप्तमोदयास्तसाधने तत्सप्तमोदयेन भक्ताः कार्याः। ततो जवान्तरेण रविग्रहगत्यन्तरेण भक्ताः। वक्रिणि ग्रहे गतियोगेन भक्ताः सन्त उदयास्तयोर्दिनानि स्युरित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—यदि उदयासुभी राशि कला १८०० लभ्यन्ते तदा कालांशान्तरकलातुल्यासुभिः किम्। एवं कालांशान्तरकलानामष्टादशशतं गुणः। उदयासवो हरः। अत्रोदयपलानि सन्त्यतोऽन्यः षड हरः। एवं गुणे षड्भक्ते जातस्त्रिशतीगुणः अत उक्तं खाभ्राग्निभिर्विनिहता इति। पश्चिमायां सप्तमोदयादनुपातः। यदि गत्यन्तरकलाभिरेकं दिनं तदाभिः किमित्यतो जवान्तराप्ता इति। वक्रिणो गतियोगं विनान्तरं न सिध्यति। अतो गति योगाप्ता इति। एवमुदयास्तदिनानि स्युरित्युपपन्नम् ॥२१

चन्द्रिका—पठितकालांश तथा दृष्टान्तरांश के अन्तर कला को ३००से गुणाकर गुणनफल में सायन सूर्य जिस राशि पर हो, उस राशि के उदय-मान से भाग देकर कलादि लब्धि को सूर्य और दृग्ग्रह को गत्यन्तर कला से पुनः भाग देने से प्राप्त लब्धि पूर्वोदयास्त के दिनादि होते हैं। उक्त गुणनफल को सूर्य से सप्तम राशि के उदयमान से भाग देने पर पश्चिम दिशा के उदयास्त दिनादि सिद्ध होते हैं। एवमेव वक्री ग्रह हो तो सूर्य और ग्रह के गतियोग से भाग देने से उदयास्त के गत-गम्य दिनादि होंगे॥ २१

उदाहरण—शुक्र का संस्कृत पठित अन्तरांश ७।१७ में पूर्व साधित इष्ट कालांश ६।४८ घटाकर शेष ०।२९। इसे ३०० से गुणाकर गुणनफल ८७०० में सूर्य की वर्तमान राशि वृश्चिक के उदयमान ३४५ से भाग देने से लब्धि २५।१३।२ प्राप्त हुई। सूर्य गति ६०।५३ को शुक्र गति ७५। ४१ में घटाने से शेष १४।४८ की विकला ८८८ से लब्धि की विकला १५१३।२ में भाग देने से लब्धि १।४२।१३ दिनादि मान प्राप्त हुआ।

अर्थात् इष्ट दिन से एक दिन ४२ घटी १३ पल पहले ही शुक्र पूर्व दिशा में अस्त हो चुका था ॥२१

अगस्तोदयास्तकालज्ञानम् —

पलभाऽष्टवधोनसंयुता गजशैला वसुखेचरा लवाः।
इह तावति भास्करे क्रमाद्घटजोऽस्तं ह्युदय च गच्छति॥ २२

मल्लारि :—अथागस्त्योदयास्तज्ञानमाह। अक्षभा अष्टगुणा भागाः स्युस्तैर्भागैर्गजशैला अष्टसप्ततिः। ऊना रहिता। वसुखेचरा अष्टनवतिः। युक्ता कार्या। तत्समे सूर्ये सति क्रमाद्घटजोऽगस्त्यः। अस्तमुदयं च गच्छति इत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—अगस्त्यध्रुवः सप्ताशीति भागा आयनदृक्कर्मसंस्कृताः। तथास्य कालांशा द्वादश १२। एतेषां क्षेत्रांशा एकादश सप्ताशीत्यंशेषु युक्ताः ९८। एतन्मिते सूर्ये उदयः। अस्ते व्यस्तायनदृक्कर्मसंस्कृता ध्रुवभागाः ८९ क्षेत्रांशैः ११ ऊना जाताः ७८। एतन्मिते सूर्येऽस्तः। इदं निरक्षे।

साक्षे तु अक्षदृक्कर्मकर्त्तुं युज्यते शरस्य महत्वात् । मध्यकल्पेन स्फुटास्फुट-क्रान्तिजयोश्चरार्धयोरित्यादिविधिना एकांगुलाक्षभाया अष्टौ भागा उत्पद्यन्ते । ततोऽनुपातः । यद्येकांगुलपलभया अष्टौ भागास्तदेष्टपलभया किमिति । अक्षभाया अष्टौ गुणः । रूपं हरः । अतः पलभाष्टवधोनसंयुता इत्याद्युपपन्नम् । अत्रानुपातस्याप्राप्तौ प्राप्तिः कृता तेन षट्पलभापर्यन्तं स्वल्पान्तरमग्रे बह्वन्तरम् ॥२२

चन्द्रिका—आठ से गुणित पलभा को ७८ अंश में घटाने से जो शेष बचे, उतने अंश के सूर्य होने पर तब अगस्त्य तारा अस्त होता है एव आठ से गुणित पलभा को ९८ में जोड़ने से जो हो, उतने अंश पर सूर्य हो तो अगस्त्य उदय होता है ॥ २२

उदाहरण – पलभा ५।४५ × ८=४६।० ७८ – ४६=३२ अंश शेष ।
अर्थात् १।२ राश्यादि सूर्य हो तो अगस्त अस्त होगा । तथा
९८ + ४६=१४४ अंश
राश्यादि ४।२४ सूर्य पर अगस्त्य उदय होगा ।

ग्रहाणां नित्योदयास्तकालज्ञानम् —

खेचरोऽर्कास्तकाले सषड्भार्कतो योऽधिकोऽल्पोऽर्कतो निश्युदेतीह सः ।
अस्तमेत्यन्यथा यो विधेयः क्रमात् पूर्वपश्चात्स्थदृक्कर्मभाक् स ग्रहः ॥२३

मल्लारिः—अथ ग्रहस्य नित्योदयास्तज्ञानमाह । सूर्यास्तकाले यो ग्रहः सषड्भसूर्यादधिकः । अथ वा केवलात् सूर्यादूनः स निश्युदेतीति । अन्यथाऽस्तमेति । अथो स ग्रहः क्रमेण पूर्वपश्चात्स्थदृक्कर्मभाग् विधेय इति ।

अत्रोपपत्तिः—ग्रहोदये ग्रहतुल्यं लग्नं सूर्यास्ते सषड्भार्कतुल्यमुदयलग्नम् । केवलार्कतुल्यमस्तलग्नम् । अतः सषड्भार्काद्ग्रहेऽधिके रात्रौ ग्रहस्योदयः । केवलार्कादूने अस्त इति प्रत्यक्षम् । उदयास्तयोः कालज्ञानार्थं दृक्कर्मसंस्कृतो ग्रहः कार्यः ॥२३

चन्द्रिका—सूर्यास्त के समय जो ग्रह छः राशियुक्त सूर्य से अधिक हों अथवा केवल स्पष्ट सूर्य से अल्प हों तो वे रात्रि में उदय होते हैं । अन्यथा इससे विपरीत स्थिति में अस्त होते हैं । अर्थात् यदि कोई ग्रह ६ राशियुक्त

सूर्य से अल्प हो या स्पष्ट सूर्य से अधिक हो तो वह रात्रि में अस्त होता है। उदयास्त ज्ञान के लिए पूर्व तथा पश्चिम दृक्कर्म का संस्कार करना चाहिये ॥ २३

उदाहरण—१ जून, १९७६ ई० संवत् २०३३ शाक १८९८ ज्येष्ठ शुक्ल ३ भौमवार को अक्षांश ३३।४४ देशान्तर ७६।५२ का अस्तकालिक सूर्य १।१७।३९।५५ सूर्यास्तकाल में स्पष्ट शनि ३।६।५।३० छः राशियुक्त सूर्य ७।१७।३९।५५ स्पष्ट शनि केवल स्पष्ट सूर्य से अधिक है, इसलिए शनि रात्रि में अस्त होगा।

उदयास्त काल ज्ञान हेतु पूर्वोक्त रीति से दृक्कर्म संस्कार का ज्ञान कर ग्रह में संस्कार करेंगे।

उदयास्तकाले रात्रिगतकालज्ञानम्—

उद्गमे यातकालः खगात् त्वस्तके षड्भयुक्तात् सषड्भार्कभोग्यान्वितः।
युक्तमध्योदयोऽस्योद्गमास्ते भवेद्रात्रियातोऽथ तत्कालखेटात् स्फुटः ॥२४

मल्लारिः—अथोदयास्तकाले रात्रिगतघटिकाज्ञानमाह। उदये सति ग्रहाद् भुक्तः कालः साध्यः। अस्ते च षड् भयुक्तात् ग्रहाद् यात एव कालः साध्यः। सषड्भसूर्यास्तकालेन युक्तः। ततो मध्योदययुक्तः कार्यः। एतावान् कालो ग्रहस्योदये अस्ते च रात्रेर्गतो भवति। तात्कालिकाद्दृक्कर्मादि विधाय स कालः पुनः साध्यः स्पष्टः स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—पूर्वप्रतिपादितैव ॥२४

चन्द्रिका—उदयकाल में ग्रह का भुक्तकाल साधित कर तथा अस्तकाल में ग्रह में ६ राशि जोड़कर उससे भुक्तकाल साधित कर ६ राशियुक्त सूर्य के भोग्यकाल में जोड़कर मध्यस्थ राशियों के उदयमान जोड़ने से उदयास्त को रात्रिगत घटी होती है। तात्कालिक दृग्ग्रह द्वारा साधित काल स्पष्ट होता है ॥ २४

उदाहरण—कल्पना किया कि मङ्गल रात्रि में उदय हुआ है। सूर्यास्तकालिक दृग्ग्रह मङ्गल ३।६।५।३० है तथा स्पष्ट सूर्य १।१७।३९।५५

है। श्लोकोक्त नियमानुसार मङ्गल के भुक्तांश ६।५।३० में कर्क के उदयमान ३४२ से गुणा कर गुणनफल २०८३।२१ में ३० का भाग दिया। लब्धि ६९।२६ भौम का भुक्तकाल हुआ। इसी प्रकार सूर्य में ६ राशि जोड़कर ७।१७।३९।५५ द्वारा भोग्यकाल १४१।५० साधित किया। दोनों के योग २११।१६ मे मध्यस्थ राशियों के उदयमान ३४५।३३५ तथा ३३५ को जोड़ने से १२२६।१६ हुआ। इसमें ६० का भाग देने से लब्धि २०।२६ रात्रिगत काल हुआ। रात्रिगत काल से चालित (तात्कालिक) ग्रह द्वारा उक्त रीति से साधित काल स्पष्ट काल होगा।

चन्द्रे वैशिष्टचम्—

इन्दोस्तु गोपलाढ्योनः कार्योऽथ प्रतिनाडिकम्।
युतो द्विद्विपलैः स्पष्ट, किं स्यात् तात्कालिकेन्दुना ॥ २५

मल्लारिः—चन्द्रस्यासकृत्प्रकारार्थं विशेषं वदति। चन्द्रस्य स कालश्चेद्गोपलैर्नवपलैः। उदयेऽस्ते क्रमेण आढ्य ऊनः कार्यः। प्रतिघटिकं पलद्वयेन युक्तः। द्विगुणघटीतुल्यैः पलैर्युक्तः स्पष्टः कालः स्यात्। तात्कालिकचन्द्रात् पुनः कालः साध्य इति प्रयासेन किं प्रयोजनमिति। अत्रोपलब्धिरेव वासना ॥ २५

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य खगोदयास्तानयनं समाप्तम् ॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञविरचितस्य ग्रहलाघवस्य टीकायां
मल्लारिदैवज्ञविरचितायामुदयास्ताधिकारो नवमः ॥९

चन्द्रिका—चन्द्रमा के उदयकाल में ९ पल जोड़ना तथा अस्तकाल में ९ पल घटाना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रत्येक नाडी में २-२ पल जोड़ने से स्पष्ट काल होता है। तात्कालिक चन्द्रमा बनाने का कोई लाभ नहीं है ॥ २५

श्रीगणेशदैवज्ञविरचित ग्रहलाघव के उदयास्ताधिकार की
चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण ॥ ९

———

छायाधिकारः--१०

ग्रहाणां दृश्यादृश्यत्वज्ञानम् —

प्राग्दृष्टिकर्मखचरस्तनुतोऽल्पकोऽस्तात्
पुष्टश्च दृश्य इह खेचरभोग्यकालः।
लग्नेन युक् च विवरोदययुग्द्युयातः
स्यात् खेचरस्य सितगोर्यदि गोपलोनः ॥१

मल्लारिः—अथ ग्रहच्छायाधिकारो व्याख्यायते। दत्तपूर्वदृक्कर्मा ग्रह इष्टकालीनलग्नाद्यदाऽल्पोऽस्तात् सप्तमलग्नाद्याऽधिकः स्यात् तदा तत्समये ग्रहो दृश्यः। इहेष्टकाले ग्रहस्य भोग्यकालः। तनुभुक्तयुक् मध्योदययुक् च कार्यः। ग्रहस्योदयाद् द्युयातकालः स्यात्। चन्द्रस्य चेद् तर्हि नवपलोनः कार्यः। १

अत्रोपपत्तिरतिसुगमा ॥ १

चन्द्रिका--पूर्वोक्त दृक्कर्म से संस्कृत ग्रह यदि इष्ट कालिक लग्न से अल्प हो तथा सप्तम लग्न से **अधिक** हो तो तत्काल (इष्ट समय में) ग्रह दृश्य होगा। इष्टकाल में दृक् सिद्ध ग्रह के भोग्यकाल में लग्न के भुक्तकाल को जोड़कर मध्यस्थ राशियों के उदयपल जोड़ने से दिन में ग्रह का गतकाल होता है। यदि चन्द्रमा का अभीष्ट हो तो दिनगत काल में ९ पल घटाने से वास्तविक गतकाल होता है।

उदाहरण--रात्रि में ग्रह के दृश्यादृश्यत्व ज्ञान एवं दिनगत घटी साधन-औदयिक स्पष्टसूर्य ०।२२।४४।४९ गति ५७।५८ औदयिक स्पष्ट चन्द्रमा ४।११।७।१३ गति ८१९।१९ दिनमान ३२।२६ इष्टघटी ४२।२६ इष्टकालिक सूर्य ०।२३।२५।४८ इष्टकालिक चन्द्र ४।१०।४६।३९। दृक्कर्म कलादि १६।४ ऋणात्मक। दृक्कर्म संस्कृत चन्द्रमा ४।१०।२९।५०। दिनमान को इष्टघटी में घटाने से ४२।४६-३२।२६=१०।० रात्रिगत घटी हुई। इसे इष्ट मानकर साधित लग्न ८।१६।२४।२२ अस्तकालिक लग्न

२।१६।२४।२२ दृक्कर्म संस्कृत चन्द्रमा ४।१०।२९।५० लग्न से अल्प है तथा अस्तलग्न से अधिक है, अतः इष्टकाल में चन्द्रमा दृश्य होगा। दृक्कर्म संस्कृत चन्द्रमा में अयनांश जोड़कर उससे साधित भोग्यकाल १५ में सायनलग्न से आनीत भुक्तकाल ४६ जोड़ने से ६१ हुआ। ग्रह और लग्न के मध्य में स्थित कन्या, तुला, वृश्चिक तथा धन के उदयमानों का योग ३३५ + ३३५ + ३४५ + ३४२ = १३५७ पूर्व योग ६१ में जोड़ने से १४१८ हुआ। इसमें ६० का भाग देने से २३। ३८ ग्रह का दिन गत काल हुआ। इसमें ९ पल घटाने से २३।२९ ग्रह (चन्द्रमा) का स्पष्ट दिनगत काल हुआ।

ग्रहाणां छायासाधनम्—

जिनाघ्नोऽक्षाभाघ्नोऽङ्गुलमयशरोऽनेन तु चरं
स्फुटं संस्कृत्यातो दिनमथ खगस्य द्युविगतात्।
प्रभाद्यं संसिध्येदथ खचरभादेर्निशि गतं
ध्रुवेऽथारादीनां द्युतिपरिगमं यन्त्रवशतः॥ २

मल्लारिः—अथ ग्रहच्छायासाधनमाह। अङ्गुलादिकः शरः पलभागुणश्चतुर्विंशतिभक्तः कार्यः। अनेन पलात्मकफलेन ग्रहात् सूर्यवत् साधितचरैः शरचरैकान्यगोले युक्तोनं स्फुटं स्यात्। अतश्च राद्दिनमानं साध्यम्। अथ ग्रहस्य द्युगतकालात् सूर्यवत् छायाद्यं साध्यम्। एवं तावद् विज्ञाते रात्रिगते ग्रहस्य द्युगतमानीय छायाद्यं साधितम्। इदानीं दृष्टच्छायाद्युगतद्वारेण वक्ष्यमाणरीत्या रात्रिगतं साध्यमित्याह। अथेति खचरभादेर्ग्रहस्य छायादितो यन्त्रभागेभ्यो निशिगतं रात्रिगतघटिकादिकं स्यात्। कथं पुनः प्रभादिज्ञानं स्यादित्यत आह। ध्रुव इति। आरादीनां भौमादीनां द्युतिपरिगमं छायाज्ञानं यन्त्रवशतो ध्रुवे वक्ष्यमाणरीत्या इति।

अत्रोपपत्तिः—अत्र चरं शरसंस्कृतस्पष्टक्रान्तितः साध्यम्। तत् केवलक्रान्तितः एव खण्डकैः साधितम्। अतो हि मध्यस्पष्टक्रान्त्योरन्तरं शर एव। तस्माच्चरं साध्यम् तत् पूर्वचरै संस्कार्यं स्पष्टक्रान्तितः कृतं चरं भविष्यति। अतोऽनुपातः। यदि द्वादशकोटौ पलभा भुजस्तदा शरतुल्यक्रान्तिकोटौ क इति। अत्र शरोऽङ्गुलाद्योऽतः कालार्थं त्रयं गुणः एव जाताः कलाः। तावन्त एवासवः। ते षड्भक्ताः पलानि। एवं शरस्य द्वादशषड्घातो हरः ७२। त्रयं गुणः ३। गुणहरौ

गुणेनापवर्तितौ जातो हरश्चतुर्विंशतिः । पलभागुणोऽस्त्येव । अतो जिनाप्त इत्याद्युपपन्नम् ॥ २

चन्द्रिका—अङ्गुलात्मक शर को पलभा से गुणाकर गुणनफल में २४ से भाग देकर लब्धि को शर और चर की एक दिशा होने पर चर में जोड़ने तथा भिन्न दिशा में घटाने से स्पष्ट चर होता है। इससे दिनमान साधित कर ग्रहों के दिनगत काल का साधन किया जाता है। दिनगत काल से छाया आदि का साधन होता है। छाया और दिनगत से रात्रिगत काल का ज्ञान होता है। इसके अनन्तर यन्त्र द्वारा छाया ज्ञान बतलाता हूँ ॥२

उदाहरण—पूर्वोक्त विधि से दृक्कर्म संस्कृत चन्द्रमा से साधित चर ५९ उत्तर दिशा का है। उत्तर दिशा का ही अङ्गुलादि शर ६५।४४ है। पलभा ५।४५ को शर ६५।४४ से गुणा कर गुणनफल ३७७।५८ में २४ का भाग देने से लब्धि १५।४४ फल हुआ। दोनों ही उत्तर दिशा के हैं, अतः चर फल ५९ में १५।४४ को जोड़ने से ७४।४४ स्पष्ट चर हुआ। इससे ३२।२८ दिनमान प्राप्त हुआ। पूर्व साधित ग्रह के दिन गतकाल से छाया आदि का ज्ञान करना चाहिये।

यन्त्र द्वारा छायाज्ञान—वेध यन्त्र द्वारा यन्त्रांश ज्ञात कर उससे कर्ण, तथा कर्ण से छाया का ज्ञान होता है। यथा—

यन्त्र द्वारा प्राप्त गतकाल २३।२९ दिनमान में घटाने से (३२।२८–२३।२९) =८।५९ शेष उन्नत काल हुआ, इसे दिनार्ध १६।१४ में घटाने से शेष पश्चिम नत ७।१५ हुआ। पलकर्ण १३।१८ स्पष्ट चर ७४।४४ इनके द्वारा ग्रहलाघव ४।८ की रीति से साधित हार १२८।५६, सम ३०।१ अभीष्ट हर ७।२५, भाज्य ११७।५५, अङ्गुलादि कर्ण १५।५३ अभीष्ट छाया १०।२४।

प्रकारान्तरेण छायाज्ञानम्—

पश्येज्जलादौ प्रतिविम्बितं वा खेटं दृगौच्च्यं गणयेच्च लम्बम् ।
तल्लम्बपातप्रतिविम्बमध्यं दृगौच्च्यहृत् सूर्यहतं प्रभा स्यात् ॥३

मल्लारिः—प्रतिज्ञातां छायां धीयन्त्रेणाह । जलादर्शादौ ग्रहं प्रतिविम्बतं पश्येत् । दृगौच्च्यमिति । भूतलात् दृक्पर्यन्तं लम्बं गणयेत् । एवं लम्बपातप्रतिविम्बान्तरमध्यङ्गुलादि गणनीयम् । तत् सूर्यहतं द्वादशगुणं दृगौच्च्येनाङ्गुलादिकेन भक्तं ग्रहस्य छाया स्यात् । प्रतिविम्बितं वेति वा शब्देन तुरीयादियन्त्रविद्धग्रहोन्नतांशेभ्यो यन्त्रलवोत्थक्रान्तिलवाप्ता इत्यनेन कर्णं प्रतिसाध्य ततः कर्णार्कवर्गविवरात् पदमिष्टभेति छायां साधयेदिति विध्यन्तरं सूचयति ।

अत्रोपपत्तिः—एकानुपातेन । यदि दृगौच्च्यतुल्यायां कोटौ लम्बपातप्रतिविम्बान्तरभूर्भुजस्तदा द्वादशकोटौ केति छाया स्यादेवेति सुगमा ॥ ३

चन्द्रिका—जल में प्रतिविम्बित ग्रह की छाया देखकर दृष्टि स्थान से ग्रह की दिशा में भूतल पर लम्ब डालकर लम्बमूल और विम्बान्तर की अङ्गुलादि दूरी को १२ से गुणा कर गुणनफल में दृगुन्नति मान से भाग देने पर लब्धि छाया होती है ॥ ३

ग्रहाणां द्युगतकालज्ञानम्—

ज्ञात्वाऽनुमानान्निशि यातनाडीस्तत्कालखेटात् कथितैश्चराद्यैः ।
दृष्टप्रभादेर्द्युगतो ग्रहस्य साध्यस्त्विहेन्दोर्यदि गोपलाढ्य. ॥ ४

मल्लारिः—अथ ग्रहस्य द्युगतकालसाधनं वदति । अनुमानात् स्थूलत्वेन रात्रौ गतघटीर्ज्ञात्वा तात्कालिकग्रहात् कथितस्पष्टचरादेर्दृष्टच्छायादितश्च ग्रहस्य सूर्यवद्द्युगतः कालः साध्यः । चन्द्रस्य चेद् तर्हि नवपलान्वितः कार्यः ।

अत्रोपपत्तिः—प्रत्यक्षसुगमा ॥ ४

चन्द्रिका—रात्रि की गतघटी का ज्ञान अनुमान द्वारा करके इष्ट कालिक ग्रह द्वारा चर, छाया आदि के सहयोग से पूर्वोक्त विधि से सूर्य की तरह ही ग्रहों के दिनगत काल का साधन करना चाहिये । यदि चन्द्र का साधन करना हो तो साधित दिनगत काल में ९ पल जोड़ने से वास्तविक गतकाल होगा ॥ ४

उदाहरण—कल्पना किया कि रात्रि गतघटी १०।० स्पष्ट चर ७४।४४, दिनमान ३२।२८ तथा १०।२४ उन सभी के सहयोग से त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक संख्या १० के अनुसार विलोम विधि से द्युगत काल का साधन किया—

छाया १०।२४के १८।९।३६में १२का वर्ग १४४जोड़कर वर्गमूल लेने से १५।५३ कर्ण हुआ। भाज्य ११७।५५ में कर्ण १५।५३ को एक जातीय करके भाग देने से लब्धि ७।२५ अभीष्ट हार हुआ। अभीष्ट हार और छायाकर्ण द्वारा साधित पश्चिमनत ७।१५ को दिनार्ध १६।१४ में जोड़ने से २३।२९ दिनगत काल हुआ। यदि चन्द्रमा का हो तो ९ पल जोड़ने से २३।२९ + ०।९ = २३।३८ दिनगत काल हुआ।

ग्रहोदये दिनशेष रात्रिगतकालज्ञानम्—

प्राग्दृक्खवराङ्गभाढ्यभान्वोरल्पोऽर्कस्त्वपरस्तनुस्तदन्तः।
कालः स खगोदये द्युशेषोरात्रीतः क्रमशो ग्रहेऽल्पपुष्टे ॥ ५

मल्लारिः—अथ ग्रहोदये दिनशेषरात्रिगतकालं साधयति। पूर्वदृक्कर्मदत्तग्रहसषड्भसूर्ययोर्मध्ये अल्पो रविः। अन्यल्लग्नम्। एतदन्तरे यः कालः स ग्रहोदयसमये द्युशेषोऽथ वा रात्रीतः स्यात् क्रमशः इति। ग्रहे सषड्भसूर्यादल्पे द्युशेषम्। अधिके रात्रीतः स्यादित्यर्थः ॥५

चन्द्रिका—पूर्वोक्त दृक्कर्म संस्कृत ग्रह तथा छः राशियुक्त स्पष्ट सूर्य में जो अल्प हो, उसे सूर्य कल्पना कर तथा जो अधिक हो, उसे लग्न मानकर इष्ट घटी साधन करना चाहिये। यदि छः राशियुक्त सूर्य दृग्ग्रह से अल्प हो तो इष्ट घटी तुल्य दिन शेष तथा सूर्य दृग्ग्रह से अधिक हो तो रात्रिगत घटी होती है। ५

उदाहरण—दृक्कर्म संस्कृत चन्द्रमा ४।१०।२९।५० छः राशियुक्त सूर्य ६।२३।२५।४८ इन दोनों में चन्द्रमा अल्प है, अतः इसे सूर्य मानकर तथा सूर्य को लग्न मानकर इष्टकाल साधित किया।

कल्पित सूर्य ४।१०।२९।५० द्वारा साधित भोग्यकाल १५ तथा कल्पित लग्न ६।२३।२५।४८ द्वारा साधित भुक्तकाल १३३ दोनों का योग (१३३ + १५) = १४८ सूर्य और लग्न के मध्य में कन्या और तुला के उदयमान हैं, अतः इनका भी योग किया (१४८ + ३३५ + ३३५)) = ८१८ इसमें ६० का भाग देने से लब्धि १३।३८ इष्टघटी हुई। यहाँ छः राशियुक्त सूर्य से ग्रह अल्प है, अतः १३।३८ दिन शेष घटी हुई।

सूर्यास्ताद् रात्रिगतकालज्ञानम् —

तेनोनोऽथ च सहितो ग्रहद्युयातः
स्यादर्कास्तसमयकतो निशि यातः।
चेद्ग्लावोऽनुमितघटीष्वतोऽल्पपुष्टं
द्विघ्नं तत्समपलयुग् वियुक् स्फुटः सः ॥६

मल्लारिः अथास्मात् कालाद्रात्रिगतमाह। तेन द्युशेषेण ग्रहद्युयात ऊनो रात्रिगतेन सहितः सन् सूर्यास्ताद्रात्रिगतकालः स्यात्। चन्द्रस्य चेत् अनुमानज्ञातरात्रिगतघटीषु आनीतरात्रिगततो यावदल्पमधिकं स्यात् तावदेव द्विगुण पलात्मकं स्यात्। तैः पलैः स कालोऽल्पश्चेदूनः पूर्वाधिकश्चेदन्वितः कृतः स्फुटः कालो भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्ति—प्रत्यक्षसुगमा॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य खेटप्रभाद्यानयनाधिकारः॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञकृतग्रहलाघवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञविरचितायां ग्रहच्छायाधिकारो दशमः।

चन्द्रिका—पूर्वोक्त दिन शेष घटी को ग्रह के दिनगत घटी में घटाने से तथा रात्रि शेष घटी में जोड़ने से सूर्यास्त से रात्रि का गतमान होता है। यदि चन्द्रमा का अभीष्ट हो तो आनुमानिक घटी से साधित मान जितना न्यूनाधिक हो, उतने पल को द्विगुणित कर अल्प होने पर जोड़ने तथा अधिक होने पर घटाने से वास्तविक काल होता है॥ ६

उदाहरण—कल्पना किया कि रात्रि गतकाल १०।५ है। चन्द्रमा की दिनगत घटी २३।४० एवं साधित दिन शेष घटी १३।३८ दोनों का अन्तर

(२३।४०-१३।३८) = १०।२ सूर्यास्त से रात्रिगत काल हुआ। साधित काल १०।५ अधिक है। दोनों का अन्तर १०।५ --१०।२ = ०।३ अधिक पल ३ को २ से गुणा कर २ × ३ = ६ को १०।५ में घटाने स शेष ९।५९ वास्तविक काल हुआ।

श्री गणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के छायाधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण ॥ १०

नक्षत्रच्छायाधिकारः--११

नक्षत्राणां ध्रुवा—

दास्रादष्ट च मूर्छना गजगुणा नन्दाब्धयो दृग्घ्नाः
षट्तर्का युगखेचरा रसदिशोऽद्रयाशा नवार्काः क्रमात्।
भाग्यानष्टयुगेन्दवोऽक्षतिथयः खात्यष्टयोऽशा ध्रुवा-
स्त्र्यष्टाब्जा गजगोभुवो रविदृशः सिद्धाश्विनः खत्रिदृक् ॥ १
मूलात् स्युर्द्विजिनाः शराशुगदृशः कङ्काश्विनोऽष्टेषुदृक्
बाणर्क्षाणि रसाष्टदृक् नखगुणास्तत्त्वाग्नयोऽभ्रामराः।
खं दत्तायनदृक्क्रियाः स्युरिह च क्षेपोऽक्षभाघ्नोऽर्कहृत्
स्वर्णं प्राक्परतोऽन्यथोत्तरशरे ते स्युः स्वदेशे ध्रुवाः ॥ २

मल्लारिः—अथ नक्षत्रच्छायाधिकारो व्याख्यायते। तत्रादौ नक्षत्रध्रुवानाह। अश्विनीमारभ्य सर्वेषां नक्षत्राणां क्रमाद् दत्तायनदृक्कर्मणो भागाद्या एते ध्रुवाः स्युरिति। ते त्रिंशद्भक्ता राश्यादयो भवन्तीत्यर्थः। क्षेपो नक्षत्राणां वक्ष्यमाणः शरः। पलभागुणः। द्वादशभक्तः। भागादिफलं ग्राह्यं तत् पूर्वध्रुवे धनं पश्चिमध्रुवे ऋणम्। इदमपि दक्षिणशरे। उत्तरशरे विपरीतं ते स्वदेशे नक्षत्रध्रुवाः स्युरिति।२

अत्रोपपत्तिः—तत्र भवेधार्थं गोलबन्धोक्तविधानेन विपुलं गोलयन्त्रं कार्यम्। तत्र खगोलस्यान्तर्भगोल आधारवृत्तद्वयस्योपरि विषुवद्वृत्तम्। तत्र च पद्योक्तं क्रान्तिवृत्तं भगणांशाङ्कितं कार्यम्। ततस्तद् गोलयन्त्रं सम्यग्ध्रुवा-

भिमुखयष्टिकं जत्समक्षितिजवलयं च यथा भवति तथा स्थिरं कृत्वा रात्रौ गोलचिह्नमध्यगतया दृष्ट्या अश्विन्यादेर्योगतारां विलोक्य तस्योपरि तद्वेधवलयं निवेश्यम्। एवं कृते विषुवक्रान्तिवृत्तयोर्यः सम्पातस्तन्मीनान्तचिह्नयोरन्तरे येंऽशास्ते तस्य भध्रुवांशाः। वेधवलये तस्य सम्पातस्य योगतारायाश्चान्तरे येंऽशास्ते तस्य भस्य दक्षिणा उत्तरा वा ध्रुवसक्तवृत्ते स्पष्टशरांशा ज्ञेयाः। अत्र ये ध्रुवास्ते दत्तायनदृक्कर्माण एव। आक्षदृक्कर्म देयम्। तत्रानुपातः— यदि द्वादश कोटौ पलभाभुजस्तदा शरकोटौ क इति। अतएव क्षेपोऽक्षभाघ्नो-ऽर्कहृदित्युपपन्नम् याम्ये शरे प्राच्यां नामनं प्रतीच्यामुन्नामनम्। सौम्यशरे-त्वन्यथा। अतः स्वर्णं प्राक्परतोऽन्यथोत्तरशर इति युक्तम्। यत तु नृसिंहदैवज्ञ-कृतटिप्पणे रेखातः प्राग्देशे धनं प्रत्यक्देशे ऋणमिति दृश्यते तल्लेखकदोषेणेति प्रतीमः॥ १, २

चन्द्रिका—अश्विनी से प्रारम्भ कर क्रम से अश्विनी का ८, भरणी का २१, कृत्तिका का ३८, रोहिणी का ४९, मृगशिरा का ६२, आर्द्रा का ६६, पुनर्वसु का ९५, पुष्य का १०६, आश्लेषा का १०७, मघा का १२९ तथा पूर्वाफाल्गुनी से (क्रम से)—पूर्वाफाल्गुनी का १४८, उत्तराफाल्गुनी का १५५, हस्त का १७०, चित्रा का १८३, स्वाती का १९८, विशाखा का २१२, अनुराधा का २२४, ज्येष्ठा का २३०, इसी प्रकार मूल का २२४, पूर्वाषाढ़ा का २५५, उत्तराषाढ़ा का २६१, अभिजित् का २५८, श्रवण का २७५, धनिष्ठा का २८६, शतभिष का ३२०, पूर्वाभाद्रपदा का ३२५, उत्तराभाद्रपदा का ३३७ तथा रेवती का ० आयन संस्कृत ध्रुवांक है।

नक्षत्रों के पठित शर (श्लो० ११।३.) को पलभा में गुणा कर १२ का भाग देकर लब्धि अंशादि फल को दक्षिण शर होने पर पूर्व में धन, पश्चिम में ऋण तथा उत्तर शर होने पर विपरीत अर्थात् पूर्व में ऋण तथा पश्चिम में धन करने से स्वदेशीय स्पष्ट ध्रुवांक होता है। १-२

नक्षत्राणां शरांशाः—

दिक्सूर्येष्विषुदिक् शिवाङ्कखनगाभ्रार्काश्च विश्वे भवा-
स्त्वाष्ट्राद् द्वौ नगवह्नयः कुयमलाग्नीभाक्षबाणा द्विषट्।

कर्णात् त्रिंशदरित्रयः खजिनभाश्रं त्वाष्ट्रहस्ताहिभे
द्वीशात् षट्सु कभात् त्रये शरलवा याम्या उदक्शेषभे ।। ३

मल्लारिः—द्र० श्लो० ४.५.।

चन्द्रिका—अश्विनी से हस्त पर्यन्त सभी नक्षत्रों के क्रम से १०, १२, ५, ५, १०, ११, ६, ०, ७, ०, १२, १३ तथा ११ शरांश हैं। इसी प्रकार चित्रा से अभिजित् पर्यन्त सभी नक्षत्रों के क्रम से २, ३७, १, ३, ८, ५, ५ तथा ६२ शरांश हैं। इसी प्रकार श्रवण से रेवती पर्यन्त क्रम से ३०, ६, ३, ०, २४ तथा ० पठित शरांश हैं।

चित्रा, हस्त, आश्लेषा तथा विशाखा से ६ (अर्थात् विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा) एवं रोहिणी से ३ (अर्थात् रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा) नक्षत्रों के शर की दक्षिण दिशा तथा शेष नक्षत्रों में शर की उत्तर दिशा होती है। ३

प्रजापत्यादितारकाणां ध्रुवांशाः शरभागाश्च—

प्रजापतिब्रह्महृदग्न्यगस्त्यापांवत्सलुब्धध्रुवकांशकाः स्युः।
कुषट् षडक्षास्त्रिशरा नभोऽष्टौ त्र्यष्टेन्दवो भूफणिनः क्रमेण ।।४
तेषां क्रमाद्गोशिखिनः खरामाः अष्टौ रसाश्वाः शिखिनः खवेदाः ।
शरांशकाः स्युर्मुनिलुब्धयोस्तु याम्यास्तु सौम्याः परिशेषकाणाम् ।।५

मल्लारिः—अथ नक्षत्राणां शरभागान् वदति। अस्योपपत्तिः पूर्वमेव प्रतिपादिताऽस्ति। अथ लुब्धकादीनां ध्रुवान् शरांश्च कथयति। प्रजापति ब्रह्महृदग्न्यगस्त्यापांवत्सलुब्धकानामेते ध्रुवांशकाः। तेषामेते शरभागाः स्युरिति सुगमार्थम्।

अत्रोपपत्तिः—नक्षत्रोक्तरीत्यैव सुगमा ।।४, ५

चन्द्रिका—प्रजापति (नामक तारे) का ध्रुवांश ६१, ब्रह्महृदय का ५६, अग्नि का ५३, अगस्त्य का ८८, अपांवत्स का १८३ तथा लुब्धक का ८१ ध्रुवांश पठित है तथा उक्त तारों के क्रम से शरांश भी पठित हैं—प्रजापति का ३९, ब्रह्महृदय का ३०, अग्नि का ८, अगस्त्य का ७६, अपांवत्स का ३ तथा लुब्धक का ४० है। इनमें अगस्त्य और लुब्धक के दक्षिण शर तथा शेष के उत्तर शर हैं। ४–५

ध्रुवात् नक्षत्रच्छायासाधनम्—

निजदेशभवाद्ध्रुवाच्च बाणाच्छायायन्त्रलवादि खेटवत् स्यात् ।
छायादेरपि चेह रात्रियातं नक्षत्रग्रहयोग उक्तवच्च ॥६

मल्लारिः—अथ नक्षत्रध्रुवात् तच्छायाद्यं साध्यमिति वदति । स्वदेशीयो नाम दत्ताक्षपूर्वदृक्कर्मको नक्षत्रध्रुवो यः स्यात् । तस्मात् 'प्रागदृष्टिकर्मखचर' इत्यादिना छायायन्त्रांशादिकं ग्रहवत् स्यात् । तथा 'पश्येज्जलादौ' इत्यादिना ज्ञानात् छायादे रात्रिगतं तद्वदेव स्यात् । नक्षत्रग्रहयोगो ग्रहयुतिवत् । अत एव केचित् पठन्ति ।

द्युचरभध्रुवकान्तरलिप्तिका द्युगतिभुक्तिहृता हि गतागतैः ।
फलदिनैर्द्युचरेऽधिकहीनके युतिरिहेतरथा खलु वक्रिणि ॥ इति ।

द्युगतिर्ग्रहः स्पष्टमन्यत्
अत्रोपपत्तिः सुगमा ॥६

चन्द्रिका—स्वदेशोद्भूत अर्थात् आक्षदृक्कर्म संस्कृत ध्रुवांश से ग्रहानयन की भाँति छाया तथा यन्त्रांश आदि का साधन एवं छाया आदि के द्वारा नक्षत्र का रात्रिगत काल ज्ञात करते है । नक्षत्र और ग्रहों का योग भी परस्पर ग्रहों के योग के तुल्य ही हैं । ६

उदाहरण—रोहिणी नक्षत्र का शर ५ है । इसे काशी की पलभा ५।४५ से गुणा कर गुणनफल २८।४५ में १२ का भाग देकर लब्धि २।२३। ४५ को आयनदृक्कर्म संस्कृत रोहिणी के ध्रुवांश ४९ में दक्षिण शर होने के कारण जोड़ने से ५१।२३।४५ उदय ध्रुवांश तथा घटाने से शेष ४६।३६।१५ अस्त ध्रुवांश हुआ ।

इसी प्रकार अश्विनी का शर १० उत्तर दिशा का है । इसे ५।४५ से गुणा कर गुणनफल ५७।३० में १२ का भाग देकर लब्धि ४।४७।३० को अश्विनी ध्रुवांश ८ में उत्तर शर होने से घटाने से शेष ३।१२।३० उदय ध्रुवांश तथा जोड़ने से १२।४७।३० अस्त ध्रुवांश हुआ ।

रोहिणीशकटवेधः परिणामश्च—

गविनगकुलवे खगोऽस्य चेद् यमदिगिषुः खशराङ्गुलाधिकः ।
कभशकटमसौ भिनत्त्यसृक् शनिरुडुपो यदि चेज्जनक्षयः ॥ ७

मल्लारि :—अथ ग्रहस्य रोहिणी शकटभेदं तत्फलं चाह। यो ग्रहो वृषभे सप्तदशभागमितः स्यात् तस्य शरोऽपि यदि दक्षिणः पञ्चाशदङ्गुलाधिकः स्यात् तदाऽसौ ग्रहो रोहिणीशकटं भिनत्तीति ज्ञेयम्। यदा एवमसृक् भौमः शनिश्चन्द्रो वा रोहिणीशकटं भेदयति तदा जनक्षयो लोकानां महती पीडा स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—रोहिणीध्रुवो वृषे एकोनविंशतिभागः। आक्षदृक्कर्मसंस्कारार्थं भागद्वयं हीनमेव स्वल्पान्तरत्वात् कृतम्। तत्सम एव ग्रहे तद्भेदः। अत उक्तम्—गवि नगकु १७ लवे इति। एवं रोहिणी शकटं पञ्चतारात्मकं पञ्चाशदङ्गुलशरं यदस्ति तन्मध्ये ग्रहस्य प्रवेशो दक्षिणशरे पञ्चदशाधिक एव भवति। यतो रोहिणीशरः शताङ्गुलो याम्यः। अत्र योगतारा याम्याऽस्ति ॥ ७

चन्द्रिका—यदि किसी ग्रह का दक्षिण शर वृष राशि के १७ अंश में ५० अंगुल से अधिक हो तो रोहिणी शकट का भेदन करता है।

यदि रोहिणी शकट का भेदन मङ्गल, शनि अथवा चन्द्रमा करता है तो वह जनहानि करने वाला होता है ॥ ७

चन्द्रकृतशकटभेदलक्षणम्—

स्वर्भानावदितिभतोऽष्टऋक्षसंस्थे
शीतांशुः कभशकटं सदा भिनत्ति।
भौमार्क्योः शकटभिदा युगान्तरे स्यात्
सेदानीं न हि भवतीदृशि स्वपाते ॥ ८

मल्लारि :—अथ चन्द्रस्य शकटभेदसमयमाह। राहौ पुनर्वसुमारभ्याष्टनक्षत्रमध्ये वर्तमाने सति चन्द्रो रोहिणी शकटं सदा भिनत्त्येव। मङ्गलशन्योः शकटभेदो युगान्तरे स्यात्। इदानीमस्मिन् पाते 'खाम्बुधयः' इत्यादिके नैव स्यात्।

अत्रोपपत्तिः—चन्द्रो वृषभे सप्तदशभागमितस्तस्य शरो दक्षिणः पञ्चाशदङ्गुलाधिकः पुनर्वस्वाद्यष्टनक्षत्रस्थे राहावेव भवतीति प्रत्यक्षम्। भौमशन्योरेतादृशे पाते दक्षिणः शरः पञ्चादशङ्गुलाधिको न भवत्येव ॥ ८

चन्द्रिका—राहु जब तक पुनर्वसु से आठ नक्षत्र (अर्थात् पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनि, उत्तराफाल्गुनि, हस्त तथा चित्रा) पर्यन्त (किसी भी नक्षत्र में) रहता है, तब तक चन्द्रमा रोहिणी शकट भेदन करता है। भौम तथा शनि द्वारा रोहिणी शकट भेदन युगान्तर

(अन्य युगों) में ही सम्भव है। सम्प्रति भौम और शनि का जो पात है, उससे शकटभेद नहीं हो सकता ॥ ८

खमध्ये स्थितनक्षत्रेण रात्रिमानज्ञानम्—

खमध्यगर्क्षध्रुवतः स्फुटं चरं ततो दिनार्धान्निजभोदयैस्तनुः।
भवेत् तदा लग्नमथो तदङ्गभान्वितार्कमध्ये घटिका निशागताः ॥ ९

मल्लारिः—अत्र खमध्यस्थनक्षत्रदर्शनात् तत्काललग्नं रात्रिगतं च कथयति। खमध्ये याम्योत्तरवृत्ते वर्तमानं यन्नक्षत्रं तस्य य उक्तो ध्रुवः। 'अष्ट च मूर्छने' इत्यादि तस्मात् साधितं स्फुटं सूर्यवत् चरं तेन चरेण यत् कृतं दिनार्धं स इष्टकालः। नक्षत्र ध्रुव एव रविः। ताभ्यां स्वदेशोयोदयैर्यत् साधितं लग्नं तत् तात्कालिकलग्नं स्यात् ततस्तल्लग्नसषड्भार्कयोर्मध्ये रात्रिगतघटिकाः स्युरित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—नक्षत्रस्य यत्कृतं दिनार्धं स एवेष्टकालो नक्षत्रस्य खमध्यस्थितत्वाद् तस्मात् साधितं लग्नं तात्कालिक लग्नं भवतीत्याद्यातिसुगमा ॥ ९

चन्द्रिका —खमध्य में स्थित नक्षत्र के ध्रुव से स्पष्ट चर का ज्ञान कर चर द्वारा दिनार्ध का साधन करना चाहिये। दिनार्ध को इष्ट घटी तथा खमध्यस्थ नक्षत्र के ध्रुव को सूर्य कल्पना कर स्वदेशीय उदयमानों द्वारा लग्नसाधन कर पुनः इस लग्न तथा ६ राशि युक्त सूर्य से कालज्ञान करने से रात्रि की गत घटी होती है ॥ ९

उदाहरण—खमध्य में स्थित नक्षत्र यदि अश्विनी कल्पना करें तो उसके ध्रुवा ८ में अयनांश १८।१० जोड़कर पूर्वोक्त रीति से सायन ध्रुवा=(८।०+१८।१०)=२६।१० द्वारा साधित चर ४९ हुआ। इसे १५ में जोड़ने से १५।०+०।४९=१५।४९ दिनार्ध हुआ। अश्विनी के सायन ध्रुवा ०।२६।१० से साधित लग्न ३।१३।४४।४६ इससे तथा ६ राशि युक्त सूर्य से साधित कालांश रात्रि का गतमान होगा।

नक्षत्रस्य ध्रुववशाद् रात्रिगतघटिकासाधनम् —

उद्यद्ध्रुवकः स्वदेशजोऽस्तं वा प्राप्नुवतः सषड्गृहः।
स्यात् तत्कालविलग्नकं ततः प्राग्वत्* स्युर्घटिका निशागताः ॥ १०

* स्यात् पाठन्तरम्

मल्लारिः—अथ ये नक्षत्रोदयास्तलग्ने ताभ्यां निशागतं च वदति। उदये वर्तमानं यन्नक्षत्रं तस्य यः स्वदेशीयो ध्रुवः स सषड्भः सन्नस्तलग्नं भवति। ततस्तल्लग्नसषडभार्कयोर्मध्ये प्राग्वद् रात्रिगता घटिकाः स्युरित्यर्थः। ध्रुव उदयदुडोः स्वदेश इति पाठः साधुः।

अत्रोपपत्तिः—अतिसुगमा ॥ १०

चन्द्रिका—उदयकालिक स्वदेशीय नक्षत्र का ध्रुवा तात्कालिक लग्न होता है अथवा अस्तकालिक नक्षत्र के ध्रुवा में ६ राशि जोड़ने से तात्कालिक लग्न होता है। इस लग्न (और छः राशियुक्त सूर्य) से पूर्ववत् रात्रि की गतघटी का साधन करना चाहिये ॥ १०

उपसंहारः—

इति नैजदेशपलभावशतो ह्युदयं खमध्यमथवाऽस्तमयम्।
व्रजदश्विभादिषु सुखार्थमिह स्थिरलग्नकानि विदधीत सुधीः ॥ ११

मल्लारिः—अथ स्वदेशीयानि नक्षत्राणामुदयादीनि स्थिरलग्नानि कार्याणीत्याह। निजदेशपलभावशात उदयं खमध्यमस्तं वा गच्छतो नक्षत्रस्योक्तरीत्या सुधीः स्थिरलग्नकानि कुर्वन्तीत्यर्थः चतुर्मिता पलभाः प्रकल्प्य आचार्येण स्थिराणि मध्यलग्नानि शिष्यकृपया कृतानि सन्ति। 'प्राग्लग्नस्य लवाः खमध्यकगते दास्रे द्विदिग्भिर्मिताः' इत्यादिभिः ॥ ११

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्याभूदृक्षदोप्त्यानयनाधिकारः ॥

इति श्रीग्रहलाघवस्य टीकायां नक्षत्रच्छायाधिकारः एकादशः ॥ ११

चन्द्रिका—इस प्रकार (पूर्वोक्त रीति से) स्वस्थानीय पलभा द्वारा उदयकालिक खमध्य स्थित अथवा अस्तकालिक अश्विनी आदि नक्षत्रों के स्थिर लग्न का साधन विद्वानों को करना चाहिये ॥ ११

श्रीगणेशदैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के नक्षत्रच्छायाधिकार की
चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण ॥ ११

शृङ्गोन्नत्यधिकारः--१२

मासस्य प्रथमेऽन्तिमेऽथ वाऽङ्घ्रौ विधुशृङ्गोन्नतिरीक्ष्यते यदह्नि ।
तपनास्तमयोदयेऽनगम्यास्तिथयः सावयवाः क्रमाद्गतैष्याः ॥१

मल्लारिः—अथ चन्द्रशृङ्गोन्नत्याधिकारो व्याख्यायते। मासस्य प्रथमे चरणे अथवा अन्तिमे चरणे यस्मिन्नभीष्टे दिने शृङ्गोन्नतिरवलोक्यते तद्दिवसे तपनास्तमयोदये क्रमादिति शुक्लपक्षे सूर्यास्तकाले गततिथयः कृष्णपक्षे सूर्योदये एष्यतिथयः सावयवा ज्ञेयाः । १

अत्रोपपत्तिः—एष चन्द्रो जलमयस्तस्य यथा यथा सूर्यकिरणसंयोगस्तथा तथा शृङ्गौच्च्यम्। एवममायां सूर्यचन्द्रयोः साम्यात् तत्र सिताभावः। एवं प्रतिपदि द्वादशभागान्तरे किञ्चित् सितम्। एवमष्टम्यामर्धं विम्बं सितम्। तत् सितं न समौच्च्यं कक्षाभेदात् सूर्यचन्द्रयोर्दक्षिणोत्तरान्तरस्य विद्यमानत्वात्। अत्र विम्बार्धादधिके सिते शृङ्गौच्च्यदर्शनाभावः। अत एव शुक्लाष्टमीपर्यन्तं कृष्णाष्टमीतोऽग्रे वा शृङ्गोन्नतिरवलोक्येत्युपपन्नम्। एवं शुक्ल पक्षे शृङ्गोन्नतिः सूर्यास्तासन्ना कृष्णपक्षे सूर्योदयासन्ना भवति। अत एव 'तपनास्तमयोदये' इत्याद्युक्तम् ॥१

चन्द्रिका—मास के प्रथम चरण तथा अन्तिम चरण में जिसदिन शृङ्गोन्नति अभीष्ट हो उस दिन शुक्ल और कृष्ण पक्ष में क्रम से सूर्यास्त और सूर्योदय कालिक सावयव तिथियों के गतगम्य का साधन करना चाहिये। अर्थात् मास के प्रथम चरण (प्रतिपदा से सप्तमी तथा अष्टमी के आधे पर्यन्त) शुक्लपक्ष में सूर्यास्त कालिक तथा कृष्णपक्ष में सूर्योदय कालिक तिथियों का साधन करना चाहिये ।१

वलन-शुक्लयोः साधनम्—

रविहृततिथयोंऽशास्तद्द्वियुग्युक् क्रमेण
द्युमणिरपरपूर्वे मासपादे विधुः स्यात् ।
नृपगुणतिथिरूना स्वघ्नतिथ्याक्षभाघ्नी
शरकुहृदुदगाशा संस्कृतार्कापमांशैः ॥२

चन्द्रस्य च व्यस्तशरापमांशैर्द्विनिघ्नतिथ्या विहृताऽङ्गुलाद्यम् ।
संस्कारदिक्कं वलनं स्फुटं स्यात् स्वेष्वंशहीनास्तिथयः सितं स्यात् ॥

मल्लारिः—अथ गतैष्यसावयवतिथिभ्यो रवितश्चन्द्रं साधयति । द्वादशगुणास्तिथयो भागाः । तैर्भागैः सूर्यो मासान्त्यपादे हीनः । मासप्रथमाङ्घ्रौ युक्तश्चन्द्रः स्यात् । षोडशगुणा तिथिस्तिथिवर्गेणोना पलभागुणा पञ्चदशभक्ता फलं भागादिकमुत्तरं स्यात् । तत् सूर्यक्रान्त्या संस्कृतं कार्यम् । अत्र सर्वत्र संस्कारस्तु एकदिशोर्योगोऽन्यदिशोरन्तरमिति प्रसिद्धः । चन्द्रस्य व्यस्तदिशा शरेण व्यस्तदिक्क्रान्त्या च तत् संस्कार्यम् ततस्तद्द्विगुणाभिस्तिथिभिर्भाज्यम् । फलं संस्कारदिगंगुलाद्यं वलनं स्फुटम् । स्वीयो यः पञ्चमांशस्तेन हीनास्तिथयः । अङ्गुलाद्यं सितं स्यादित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः—रविचन्द्रान्तरे द्वादशभागतुल्ये एका तिथिर्भवति अतस्तिथयो द्वादशगुणा रविचन्द्रान्तरभागा जाताः । ते रवौ योज्याश्चन्द्रो भवत्येव । अत एवात्र शुक्ले युक्ता इत्युक्तम् । कृष्णेऽपि योज्याः परमत्र कृष्णे एष्यतिथियो गृहीताः सन्त्यतो हीना इत्युक्तम् । अथ वलनोपपत्तिः । तत्र चन्द्रसूर्ययोर्दक्षिणोत्तरमन्तरं भुजः । तस्य वलनसंज्ञा यतोऽन्वर्थं नाम । तावताऽन्तरेण चन्द्रशृंगं वलति । ऊर्ध्वाधरमन्तरं कोटिः । तयोर्मध्ये तिर्यक्कर्णः । तद्दक्षिणोत्तरमन्तरं साध्यते । सूर्यक्रान्तिश्चन्द्रस्य शरेण क्रान्त्या च संस्कार्या । तत्र व्यस्तदिक्त्वेऽयं हेतुः । यत उभयोर्दक्षिणोत्तरान्तरे साध्यमाने समदिशोरन्तरं भिन्नदिशोर्योगः कर्त्तव्यः । संस्कारलक्षणं तु समदिशोर्योगो भिन्नदिशोरन्तरमित्यतो व्यस्तशरापमांशैरित्युक्तम् । एवमत्र दक्षिणोत्तरमन्तरं निरक्षदेशीयं जातम् । तत् स्वदेशीयकरणार्थं फलं नृगगुणतिथिरित्याद्युत्पादितम् । तद्यथा । रवेरुदयेऽस्ते शृंगोन्नतौ चन्द्रो यदा खस्वस्तिके तदा तयोर्दक्षिणोत्तरान्तरमक्षांशा एव । अथेष्टस्थानस्थे चन्द्रेऽनुपातः । यदि त्रिज्यातुल्यया १२० व्यर्केन्दुदोर्ज्यया अक्षांशतुल्यमन्तरं तदेष्टदोर्ज्यया किमिति । अत्र तिथिर्द्वादशगुणा व्यर्केन्दुदोर्भागाः । ते द्विगुणा दोर्ज्या साक्षांशगुणा त्रिज्याभक्ता कृता । तत्राक्षांशस्थाने पलभा गृहीता । तेन पलभा पञ्चगुणा पलभावर्गदशांशोनाक्षांशाः स्युरिति । प्रथमं पञ्चगुणः किञ्चिन्न्यूना ग्राह्या इत्यत्राधिक एव ग्रहीतः सत्र्यंशाः पञ्च ५।२०। एवं तिथेर्गुणाः १२।२। अत्र गुणानां घातो जातो गुणः १२८ । त्रिज्याहरः १२० । गुणहरावष्टभिरपवर्त्तितौ जातो गुणः १६ । हरः १५ । पलभा गुणा शरकुद्भुदिति जातम् । अत्र

स्थानद्वयेऽन्तरं जातम्। यतो द्विगुणभागाः सर्वभुजभागेषु दोर्ज्या न भवति। सप्त्यंशपञ्चगुणपलभातुल्या अक्षांशा न भवन्ति। यतः पञ्चगुणपलभायाः पलभावर्गदशांशो न्यूनोऽस्ति तेन प्रतितिथिकियदन्तरमिति ज्ञानार्थमुपायः। अत्र स्थानद्वयेऽन्तरमेकमक्षांशे पलभागदशांशतुल्यम् द्वितीय स्थाने द्विगुणभागा दोर्ज्येति स्थानद्वयेऽन्तरमधिकमस्ति वर्गात्मकम्। तदन्तरं तिथिवर्गपञ्चदशांशतुल्यमधिकमस्ति तेन प्रथमं नृपगुणतिथिष्वेव हीनस्तिथिवर्गः कृतः। यतोऽग्रे पञ्चदशहरोऽस्त्येव। अतो नृपगुणतिथिः स्वघ्नतिथ्योनाऽक्षभाघ्नी शरकुहृद्वलनं भवतीत्युपपन्नम्। व्यस्तदिक्कार्थमुदगाशा। एवं संस्कारदिग्वलनं जातम्। अत्र क्रान्तिशराक्षांशानां संस्काराज्जातं वलनमंशाद्यम्। तस्यांगुलीकरणार्थमुपायः। प्रतिपदन्ते रविचन्द्रान्तरे द्वादशभागाः। तत्र षडङ्गुलतुल्यं बिम्बार्धं प्रकल्प्यानुपातः यदि द्वादश भागैः षडङ्गुलानि तदेष्टवलनभागैः किमिति अत्र गुणहरौ गुणेनापवर्त्यं जातो हरः २। पुनरन्योऽनुपातः। द्वादशभागप्रमाणेन यद्ययं हरस्तदेष्टव्यर्केन्दुदोर्भागैः किमिति व्यर्केन्दुदोर्भागषडंशोः वलनस्य हरः। द्वादश तुल्ये रविन्द्रान्तरे एकतिथिः। तत्र द्वयं हरः। एकतिथ्या द्वयं हरस्तदेष्टतिथ्या किमिति अतो द्विनिघ्नतिथ्या विहृतेत्युपपन्नम्। अथ सितोपपत्तिः। अत्र रविचन्द्रयोः पादोनषट्काष्ठलवान्तरेऽर्धबिम्बं सितं भवति। अतः सार्धसप्ततिथिषु बिम्बार्धं सितं षडङ्गुलतुल्यम्। तेनानुपातः—यदि सार्धसप्ततिथिभिः षडङ्गुलतुल्यं सितं लभ्यते तदेष्टतिथिभिः किमिति। तिथयो यावत् षड्गुणाः सार्धसप्तभक्ताः क्रियन्ते तावत् स्वपञ्चमांश हीना एव भवन्तीत्युपपन्नम् ॥२, ३॥

चन्द्रिका—पूर्व साधित ऐष्य तिथि को १० से गुणा कर अंशादि गुणनफल को मास के प्रथम चरण में सूर्य में जोड़ने तथा अन्तिम चरण में घटाने से चन्द्रमा होता है। तिथि को १६ से गुणा कर गुणनफल में तिथि का वर्ग घटाकर शेष को स्थानीय पलभा से गुणा कर गुणनफल में १५ का भाग देने से लब्धि अंशादि फल उत्तर दिशा का होता है। इस फल में सूर्यक्रान्ति का संस्कार (एक दिशा में योग, भिन्न दिशा में अन्तर) करना चाहिये।

चन्द्रमा के शर तथा चन्द्रमा की क्रान्ति का विपरीत संस्कार (एक दिशा में अन्तर, भिन्न दिशा में योग) कर उसमें द्विगुणित तिथि का भाग देने से लब्धि संस्कृत फल की दिशा का अङ्गुलादि वलन होता है।

तिथि में उसी का पञ्चमांश घटाने से अङ्गुलात्मक शुक्लमान होता है। २-३

उदाहरण—मास का प्रथम चरण प्रतिपदा से अष्टमी पर्यन्त, नवमी से पूर्णिमा पर्यन्त द्वितीय पाद, कृष्ण प्रतिपदा से अष्टमी पर्यन्त तृतीय पाद नवमी से अमावस्या तक मासान्त (चतुर्थ) पाद होता है।

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की श्रृङ्गोन्नति साधनार्थ सूर्यास्तकालिक सूर्य तथा चन्द्रमा द्वारा तिथि साधन करना चाहिये। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में सूर्योदय कालीन सूर्य तथा चन्द्रमा से तिथि का साधन करना चाहिये।

सूर्यास्त कालिक स्पष्ट सूर्य १।१८।१२।३२ चन्द्रमा ३।१९।४८।२ स्पष्ट राहु २।२२।२२।३८ सूर्यास्त कालिक गत तिथि ५।७।२०।

तिथि ५।७।२० को १२ से गुणा कर गुणनफल अंशादि ६१।२८।० को स्पष्ट सूर्य १।१८।१२।३२ में मास के प्रथम पाद में होने से दोनों का योग १।१८।१२।३२ + २।१।२८।० = ३।१९।४०।३२ चन्द्रमा हुआ।

तिथि ५।७।२० को १६ से गुणा कर गुणनफल ८१।५७।२० में तिथि का वर्ग २६।१४।१३ घटा कर शेष ५५।४३।७ को पलभा ५।४५ से गुणा कर गुणनफल ३२०।२२।५५ में १५ का भाग देने से लब्धि २१।२१।३१ अंशादि फल उत्तर दिशा का हुआ। इसमें सूर्य की उत्तरा क्रान्ति २१।४४।२९ का संस्कार (योग) किया २१।४४।२९ + २१।२१।३१=४३।६।० संस्कृत फल उत्तर दिशा का हुआ। राहु रहित चन्द्रमा ०।२७।२५।२४ द्वारा (पूर्वोक्त ग्र० ला०६।१०) के अनुसार चन्द्र का शर ४१।२३।३५ अङ्गुलादि उत्तर दिशा का हुआ। शर को ३ से गुणा करने से २।४।१० अंशादि मान हुआ। पूर्वसाधित उत्तर फल ४३।६।० – २।४।१० = ४१।१।५० चन्द्रमा की उत्तर क्रान्ति १८।३६।५९ इनका विपरीत संस्कार (एक दिशा में अन्तर) करने से शेष २२।२४।५१ में द्विगुणित तिथि १०।१४।४० का भाग देने से फल २।११।६ अङ्गुलादि स्पष्ट वलन

उत्तर दिशा का हुआ। तिथि ५।७।२० में इसी का पञ्चमांश १।१।२८ घटाने से शेष ४।५।५२ अङ्गुल।दि शुक्लमान हुआ।

शृङ्गोन्नति-दिग्ज्ञानम्—

उन्नतं वलनाशायामन्यस्यां स्यान्नतं विधोः।
वलनस्याङ्गुलैः शृङ्गं किमत्र परिलेखतः॥ ४

मल्लारिः—अथ कस्यां दिशि शृङ्गौच्च्यमिति वदति। वलनस्य या दिक् तस्यां शृङ्गोन्नतत्वमन्यस्यां दिशि चन्द्रस्य शृङ्गं नतं स्यात्। वलनस्याङ्गुलैः शृंगौच्च्यपरिमाणं ज्ञेयम्। अत्र परिलेखतः किं साध्यम्। किमर्थं जडकर्म कर्त्तव्यमिति भावः। ४

अत्रोपपत्तिः—सूर्यान्यदिशि वलनम्। अतो वलनान्यदिश्येव शृंगोन्नमनम्। अत्र वलनं व्यस्तदिक्कमस्त्यतो वलनदिश्येव शृंगौच्च्यं वलनांगुलतुल्यमेव। वलनाभावे शृंगे समाने भवतः। अत्र परिलेखः शृगोन्नतिदिग्ज्ञानार्थं कर्त्तव्यः। तत् शृंगोन्नतिदिग्ज्ञानं शृगौच्च्यपरिमाणं वलनत एव जातम्। अतः किमर्थं परिलेखः कर्त्तव्य इत्युक्तम्॥ ४॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्याभूच्चन्द्रशृंगोन्नमनाधिकारः॥

इति श्रीग्रहलाघवस्य टीकायां चन्द्रशृङ्गोन्नत्यधिकारो द्वादशः॥१२

चन्द्रिका—जिस दिशा का वलन होता है, उसी दिशा का चन्द्रशृङ्ग उन्नत होता है। इससे विपरीत दिशा में शृङ्ग नत होता है। वलन के अङ्गुलादि मान से ही चन्द्रशृङ्ग की उन्नति का ज्ञान हो जाता है। यहाँ परिलेख से क्या प्रयोजन है? ४

श्री गणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के शृङ्गोन्नत्यधिकार की
चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥ १२

———

ग्रहयुत्यधिकारः—१३

भौमादिग्रहाणां विम्बसाधनम्—

पञ्चर्त्वगाङ्कविशिखाः पृथगीशकर्ण-
योगाहताः प्रकृतिभान्वरिसिद्धरामैः।
भक्ताः फलोनसहिताः श्रवणेऽधिकोने
ते त्र्युद्धृताः स्युरसृजो वपुरङ्गुलानि ॥१

मल्लारिः—अथ ग्रहयुत्यधिकारो व्याख्यायते। पञ्च प्रसिद्धाः। ऋतवः षट्। अगाः सप्त। अङ्का नव। विशिखाः पञ्च। एतेऽङ्काः पृथक्। ईशानमेकादशानां कर्णस्य च योऽयोगो नामान्तरं तेनाहताः। ततः क्रमात् प्रकृत्याद्यङ्कभक्ताः प्रकृतिरेकविंशतिः। भानवो द्वादश। अरयः षट्। सिद्धाश्चतुर्विंशतिः। रामास्त्रयः। एभिर्भक्ताः। यदंगुलाद्यं फलं तेन पृथक् तेऽङ्काः ऊनसहिताः कार्याः। कर्णे एकादशाधिके ऊना ऊने सहिताः। ततस्ते त्रिभक्ताः। असृजः सकाशात् भौमादीनामंगुलात्मकानि विम्बानि भवन्तीत्यर्थः। १

अत्रोपपत्तिः—अत्रातीन्द्रियदृग्भिराद्यैराचार्यैस्त्रिज्यातुल्ये शीघ्रकर्णे भौमादीनां विम्बांगुलानि लक्षितानि। तान्येवाचार्येण पञ्चादीन्युक्तानि। तेषां स्पष्टीकरणं यथा। अन्त्यफलज्यातुल्येन त्रिज्याशीघ्रकर्णान्तरेण किमिति। अत्र विम्बानामन्त्यफलज्या हारः। अत्र त्रिज्या भवमिता अतो भवशीघ्रकर्णान्तरं गुणः। अत्र यथा भौमस्यान्त्यफलज्या ७७। इयं त्रिगुणा जातो हरः २३१। यदि खार्कमिते व्यासार्धे अयं हरस्तदेकादशतुल्ये व्यासार्धे क इत्यतोऽयं हरः २३१ एकादशगुणः २५४१। खार्कभक्तो जाता एकविंशतिर्भौमस्य हरः। एवं सर्वेषामेव फलेन त एवोनसहिता इति। दूरस्थे ग्रहे बिम्बं लघुत्रिज्याधिकः कर्णः। अतस्तत्रोनम्। समीपे विम्बाधिक्यं तत्र त्रिज्यातः कर्णोनता अतस्तत्र युक्तमित्युक्तम्। तद्बिम्बं कलाद्यम्। अंगुलादिकरणार्थं त्रिभिर्भक्तम् यतः कलात्रयेणैकमंगुलं भवति ॥१

चन्द्रिका—भौमादि ग्रहों (मध्यम) की विम्बकला क्रम से ५, ६, ७, ९, ५ (पठित है)। भौमादि ग्रहों के शीघ्रकर्ण का ११ के साथ अन्तर कर शेष से उक्त अङ्कों को गुणा कर क्रम से २१, १२, ६, २४, ३ इन अङ्कों से भाग देकर लब्धि को, ११ से कर्ण अधिक होने पर पूर्व पठित

(५, ६, ७, ९, ५) अङ्कों से क्रम से घटाने से तथा ११ से अल्प हो तो जोड़ने से जो प्राप्त हो, उसमें ३ का भाग देने से लब्धि अङ्गुलादि भौमादि ग्रहों के क्रम से बिम्ब होते हैं ॥ १

उदाहरण—स्पष्टभौम १०।६।३५।९ स्पष्टगति ४२।५० भौम का शीघ्र कर्ण ८।५२ है तो भौम का बिम्बमान क्या होगा ?

भौम की पठित मध्यम बिम्बकला ५। इसे भौम के शीघ्रकर्ण ८।५२ तथा ११ के अन्तर (११-८।५२)=२।८ से गुणा कर गुणनफल १०।४० में भौम के पठित अङ्क २१ से भाग देने पर लब्धि ०।३० प्राप्त हुई। यहाँ कर्ण ११ से अल्प है, अतः मध्यम बिम्बकला में लब्धि ०।३० जोड़ने से (५।० + ०।३०)=५।३० हुआ। इसमें ३ का भाग देने से लब्धि १।५० अङ्गुलादि भौम का बिम्ब हुआ। इसी प्रकार बुधादि सभी ग्रहों का साधन किया जायेगा।

अल्पगति ग्रह शनि का बिम्ब साधन

स्पष्ट शनि १०।२।५८।४४ गति ३।३ शनि का शीघ्र कर्ण ११।१३ उक्त नियमानुसार शनि की मध्यम बिम्बकला ५ को ११ तथा शीघ्र कर्ण के अन्तर (११।१३-११।०)=०।१३ से गुणा कर गुणनफल १।५ में ३ का भाग देने से लब्धि ०।२१ प्राप्त हुई। यहाँ शीघ्रकर्ण ११ से अधिक है, अतः लब्धि को बिम्बकला ५ में घटाने से ४।३९ शेष रहा। इसमें ३ का भाग देने से लब्धि १।३३ अङ्गुलादि शनि का बिम्ब हुआ।

युतेर्यातैष्यलक्षणम्

अधिकजवखगेऽधिकेल्पभुक्तेरथ कुटिलेऽल्पतरेऽनुलोमतो वा।
अनृजुगखगयोस्तु शीघ्रगेऽल्पे युतिरनयोः प्रगतान्यथा तु गम्या ॥ २

मल्लारिः—अथ ग्रहयुतेर्गतैष्यताज्ञानमाह। ययोर्ग्रहयोर्युतिः साध्यते तयोर्मध्ये योऽधिकगतिर्ग्रहः स चेदल्पगतेर्ग्रहदशाद्यवयवेनाधिकस्तदा तयोर्युतिर्गतेति वाच्यम् अथ वा कुटिले वक्रिणि ग्रहे अनुलोमतो मार्गिग्रहादल्पतरे सति युतिर्गता वाच्या।

अनृजुगखगयोर्द्वयोर्वक्रिणोर्ग्रहयोर्मध्ये शीघ्रगतौ ग्रहे भागादिना अल्पे युतिर्गतैव वाच्या। अन्यथोक्तलक्षणवैपरीत्ये ग्रहयुतिर्गम्येत्यर्थः। २

अत्रोपपत्तिः प्रत्यक्षसुगमा ॥ २

चन्द्रिका—तीव्रगति ग्रह अधिक तथा मन्दगति वाला ग्रह अल्प हो अथवा वक्री ग्रह से मार्गी ग्रह अधिक हो, यदि दोनों ही वक्री ग्रह हों तो उनमें तीव्रगति वाला अल्प और मन्दगति वाला अधिक हो तो दोनों ग्रहों की युति गत (बीती हुई) होती है। इन लक्षणों से भिन्न स्थिति में युति ऐष्य (होने वाली) होती है॥ २

उदाहरण—बुध ३।२०।२६।४० तथा शनि ३।१८।२६।२० है। यहाँ बुध शीघ्रगति ग्रह शनि से लगभग २ अंश आगे है, अतः शनि से युति करके आगे बढ़ गया है। इसी प्रकार यदि शुक्र ५।१०।२५।४० तथा मंगल ५।१५।२०।४४ यहाँ शीघ्रगति ग्रह शुक्र मन्दगति ग्रह मंगल से लगभग ५ अंश पीछे हैं, यहाँ युति ऐष्य है अर्थात् लगभग ५ अंश का भोग करने के पश्चात् शुक्र और मंगल की युति होगी।

युतेर्गतगम्यदिवसानां ज्ञानम्—

ऋजुगतिखगयोस्तु वक्रयोर्वा विवरकला गतिजान्तरेण भक्ताः।
गतिजयुतिहृता यदैकवक्री युतिरगता प्रगताप्तवासरैः स्यात् ॥ ३

मल्लारिः—अथ ग्रहयुतिदिवसज्ञानमाह मार्गिणोर्द्वयोर्ग्रहयोः सतोः। अथ वा वक्रयोर्द्वयोर्ग्रहयोः सतोः। तदन्तरकलाः कार्याः। ता गत्यन्तरेण भक्ताः। यदैको वक्रो परो मार्गी तदाप्यन्तरकला गतियोग भक्ता कार्याः। 'आप्तैर्दिनैर्ग्रहयुतिर्गम्या गता पूर्वोक्तलक्षणेन स्यात्।

अत्रोपपत्तिः—यदि गत्यन्तरकलाभिरेकदिनं तदा ग्रहान्तरकलाभिः किमिति वक्रिणि गतियोग एवान्तरमिति। अतस्तत्र तेनैवाप्ता लब्धदिनैरेष्यगतैर्ग्रहयुतिसमयः स्यादित्युपपन्नम् ॥ ३

चन्द्रिका—दोनों ग्रह वक्री हों या दोनों ही मार्गी हों तो दोनों का अन्तर कर (उनके कलादि मान में) दोनों की गतियों को अन्तर कला

से भाग देने पर जो लब्धि हो उतने दिनों में युति के गत गम्य काल होते हैं। यदि एक ग्रह मार्गी तथा एक ग्रह वक्री हो तो दोनों की गतियों के योग की कला से भाग देने पर लब्धि तुल्य दिनों में युति के गत गम्य काल होते हैं। ३

उदाहरण—स्प. श. १०।२।५८।४४ गति ३।३ स्पष्ट मङ्गल १०।६। ३५।९ गति ४२।५० दोनों ही मार्गी हैं अतः दोनों ग्रहों का अन्तर (१०।६।३५।९—१०।२।५८।४४) = ३।३६।२५ हुआ। इसके कलादि मान २१६।२५ में दोनों की गत्यन्तर कला (४२।५०—३।३) = ३९।४७ से भाग देने से लब्धि ५।२६।२३ दिवसादि प्राप्त हुई। अर्थात् वैशाख शुक्ल दशमी से ५ दिन २६ घटी २३ पल पूर्व ही शनि मङ्गल की युति हुई थी।

ग्रहयोर्दक्षिणोत्तरान्तरज्ञानम्—

चाल्यौ खेटौ समौ स्तो ग्रहयुतिदिवसैश्चन्द्रबाणः स्वनत्या
संस्कार्योऽत्र ग्रहौ स्वेषुदिशि समदिशोस्त्वल्पबाणोऽपरस्याम् ॥
एकान्याशौ यदेषू विरहितसहितौ खेटमध्येऽन्तरं स्याद्
भेदो मानैक्यखण्डादिह लघुनि तदाल्पं हि किं लम्बनाद्यम् ॥४

मल्लारिः—अथ ग्रहयोर्दक्षिणोत्तरदिक्संस्थानं तदन्तरं च साधयति। ग्रहयुतेर्ये दिवसाः समागतास्तैर्दिवसैः स्वगत्या ग्रहौ चाल्यौ तौ राश्याद्यवयवेन समौ स्तः। अत्र चन्द्रस्य शरः स्वनत्या सूर्यग्रहणोक्तरीत्या कृतया संस्कार्यः। ग्रहौ स्वशरदिशौ ज्ञेयौ। यस्य ग्रहस्य शर उत्तरः स ग्रह उत्तरस्याम्। यस्य दक्षिणः शरः स दक्षिणस्यामिति। द्वयोः शरयोः समदिशो सतोर्योऽल्पबाणो ग्रहः सोऽधिकशरग्रहादन्यदिशि ज्ञेयः। इषू ग्रहयोः शरौ यदा द्वावपि एकदिशौ तदा तयोरन्तरं कार्यम्। यदाभिन्नदिशौ तदा तयोर्योगः। ग्रहयोर्मध्ये तद्दक्षिणोत्तरमन्तरमंगुलात्मकं स्यात्। चतुर्विंशतिभक्तं चेद्धस्तात्मकमपि स्यात्। इह शरान्तरेग्रहयोर्मानैक्यखण्डाल्लघुनि अल्पे सति ग्रह विम्बयोर्भेदः स्यात्। तदा सूर्यग्रहणवदल्पं लम्बनाद्यमत्र किं कर्त्तव्यम्। अल्पविम्बत्वात् स्पर्शादिषु नोपलभ्यत् एव। अतो लम्बनादि जडकर्म किमर्थं कार्यमिति भावः। ४

अत्रोपपत्तिः—ग्रहयुतिदिवसा ग्रहयोरन्तरे गतिवशात् साधिताः। तैर्दिवसैश्चालितौ ग्रहौ समौ भवत एवेति प्रत्यक्षम्। अत्र चन्द्रेण सहान्यग्रहस्य योगे साध्ये

चन्द्रशरः स्वनत्या संस्कार्य एव यतो नतिरपि दक्षिणोत्तरमन्तरम्। अत्रापि ग्रहकक्षयोर्भिन्नत्वं द्रष्टुर्भूपृष्ठगतत्वं चेति हेतुद्वयं वर्तते एव। अतश्चन्द्रशरो नत्या संस्कार्य एव इति युक्तम्। ग्रहौ स्वशरदिशावेव भवतः शरयोर्दिक्साम्ये अल्पबाणोऽधिकबाणादन्यदिशि भविष्यत्येव। अथ ग्रहयोर्दक्षिणोत्तरमन्तरं साध्यम्। तत्तु शरान्तरतुल्यं क्रान्त्यन्तराभावात्। अत एक दिशोः शरयोरन्तरं कार्यम्। अन्य दिशोः शरयोर्योगो विनाऽन्तरं न सिध्यत्यतो योगः कार्य इति दक्षिणोत्तरमन्तरं स्यात्। स एव ग्रासस्थित्यादिसाधनार्थं स्पष्टः शरो मानैक्यखण्डान्न्यूने शरे ग्राह्यग्राहकविम्बसंयोगः स्यात्। तदाऽधःस्थो ग्रहश्चन्द्र ऊर्ध्वस्थो रविरित्यादि प्रकल्प्य अर्कल्पितार्कादेव लग्नादि कृत्वा लम्बनादि साध्यं तत् स्पर्शादिकाले देयं ते स्पष्टाः स्युः इत्यादि विम्बस्वल्पत्वात् स्पर्शादिदर्शनाभावात् किमर्थं जडकर्म कार्यमित्याचार्येणोक्तं तदपि युक्तम् ॥४

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।

वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्याभूद्ग्रहदोष्ट्यानयनाधिकारः ॥

इति श्रीग्रहलाघवस्य टीकायां ग्रहयुत्यधिकारस्त्रयोदशः ॥१३

चन्द्रिका—पूर्वोक्त विधि से साधित दिवसादि मान में ग्रहों को चालित करने (अर्थात् युति काल में ग्रहों को स्पष्ट करने) से राश्यादि मान में ग्रह समान हो जायेगे। केवल चन्द्रमा का शर अपनी नति से संस्कृत करना होगा। शर की दिशा के अनुसार ग्रह की दिशा होगी। यदि दोनों ग्रहों के शर उत्तर दिशा के हों तो जिस ग्रह का शर बड़ा होगा वह उत्तर दिशा का तथा छोटा शर वाला दक्षिण दिशा का होगा। इसी प्रकार यदि दोनों के शर दक्षिण दिशा के हों तो बड़े शर वाला दक्षिण तथा छोटे शर वाला उत्तर दिशा का होता है।

एक ही दिशा में दोनों ग्रहों के शर हों तो दोनों का अन्तर करने तथा भिन्न दिशा के हों तो दोनों का योग करने से दोनों ग्रह विम्बों का अन्तर ज्ञात होता है। यह अन्तर दोनों ग्रहों के विम्ब व्यास के योगार्ध से अल्प हो तो दोनों ग्रहविम्बों में भेद होता है। यहाँ लम्बन आदि का कोई प्रयोजन नहीं है। ४

उदाहरण—ग्रहों के युतिकाल में साधित मङ्गल १०।२।४२।४९ तथा शनि १०।२।४२।४९ पूर्वनियम से साधित मङ्गल का शर १६।११ अङ्गुलादि दक्षिण दिशा का हुआ। तथा शनि का अङ्गुलादि शर १४।७ दक्षिण दिशा का हुआ। यहाँ दोनों ग्रहों का शर एक ही दिशा का है अतः बृहत् शर वाला मङ्गल दक्षिण दिशा का तथा अल्प शर वाला शनि उत्तर दिशा का हुआ। एक ही दिशा होने से दोनों शरों का अन्तर (१६।११ – १४।७) = २।४ दोनों ग्रहों का विम्बान्तर हुआ। दोनों के विम्बों का योग (१।५० + १।३३) = ३।२४ का आधा १।४१ विम्बान्तर से अल्प है। अतः दोनों का भेद नहीं होगा केवल स्पर्श होगा।

श्री गणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के ग्रहयुत्यधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण। १३

पाताधिकारः—१४

व्यतिपातवैधृतिपातयोर्लक्षणम्—

नन्दघ्नायनभागतुल्यघटिकोनाः सार्धविश्वे तथा
तारास्तावति सान्नयोगविगमे पातो व्यतीपातकः।
ज्ञेयो वैधृतिरत्र यातघटिकाः सर्वर्क्षनाडीहृताः
स्पष्टाः स्युः शरषड्हृता इह तमोऽर्कौ सायनांशौ कुरु ॥ १

मल्लारिः—अथ पाताधिकारो व्याख्यायते। नवभिर्गुणिता येऽयनांशाः। तत्तुल्या घटिकाः स्युः। ता घटिकाः षष्टिभक्ताः। ऊर्ध्वस्थाने योगोऽपि भविष्यति। तदूनाः सार्धविश्वयोगः १३।३० अथ सप्तविंशतियोगाश्च २७ तदूनाः कार्या। तावान् सावयवो योगो यस्मिन् काले प्रतिमासे भविष्यति तस्मिन् काले क्रमात् व्यतीपातो वैधृतिरिति। अत्र योगस्य या यातघटिकास्तास्तद्दिनजसर्वनक्षत्रनाडीभिर्गुण्याः शरषड्भिः पञ्चषष्ट्या भक्ताः सन्त्यः स्पष्टाः स्युः। इहास्मिन् काले तमोऽर्कौ राहुसूर्यौ सायनांशौ कुरु। अत्र पातसाधनेऽमुनाऽऽचार्येण राहावयनांशा देयाः। रवौ च देयाः। ततो विराह्वर्कात् खण्डानि सन्धिविचारश्च कृतः। इदमल्पबुद्धीनामयुक्तमिव प्रतिभातियतोऽयनांशसंस्कारः क्रान्तावेव न शरसाधने। अतएव करणकुतूहले।

'विना सपातेन्दुमिहायनांशकैर्युतो रविः शीतकरश्च गृह्यात्' इति। तेषां भ्रान्तिनिराशार्थमुच्यते। अत्र पातः सायनचन्द्रसूर्ययोगो द्वादशषड्राशितुल्य एव तदर्थमत्राचार्येण चन्द्रं विनैव सूर्यराहुभ्यां पात साधनं कृतम्। तेन सायनः सूर्यः सायनराहुयुतः शरार्थमङ्गीकृतः। स चादत्तयनांशचन्द्रस्यादत्तायनांशराहूनितस्य भुजो भुजसाधनरीत्या समान एव भवति। अत्रोदाहरण यथा। अयनांशाः १८। गणितागताः सूर्यचन्द्रराहवः। सूर्य १।१२। चन्द्रः ३।१२। राहुः ५।७ अत्र व्यगुचन्द्रः १०।५। सायनः सूर्यः २ चन्द्रः ४। राहुः ५।२५। राहुयुतः सूर्य ७।२५। अस्य भुजः ।१।२५। व्यगुचन्द्रस्य १०।५ भुजेन तुल्यो भवति १।२५। अतस्तमोऽर्कौ सायनांशाविति युक्तमुक्तम्। पातकाले सिद्धे तत्कालीनसूर्यचन्द्रराहवः साध्याः। ततः शरसाधनार्थमदत्तायनांशराहूनितादत्तायनांशचन्द्रावेव शरः क्रान्तिसंस्कारार्थी साध्यः। अथवा सायनचन्द्रसायनराहुभ्यामेव शरः साध्यः स शरो निरयनांशाभ्यां साधितेन तुल्य एव भवति युतस्तुल्ययोः क्षेपयोः क्षिप्तयोरन्तरे केवलयोरन्तरमेव सिद्धम्। १

अत्रोपपत्तिः—पातो नाम रविचन्द्रयोः क्रान्तिसाम्यम्। तत्र चन्द्रक्रान्तिः शरसंस्कृता सूर्यक्रान्त्या यदा समा स्यात् तदा पातमध्यकालः। तत्रादौ रविचन्द्रयोर्मध्यमक्रान्तिसाम्यं साधयति। मध्यक्रान्तिसाम्यं तयोर्भुजसाम्ये स्यात्। भुजसाम्यं तु रविचन्द्रयोः षड्राशितुल्ये योगे भवति। नन्वेवं चेत् तदा रविचन्द्रयोः षड्राशितुल्ये द्वादशराशितुल्ये अन्तरेऽपि भुजसाम्यम्। क्रान्तिसाम्यमस्ति। तत्रापि पातस्तर्हि मासमध्ये पातचतुष्टयं वक्तव्यम्। सत्यम्। तत्र पातकाले स्नानदानादिकं फलमाचार्येणोक्तमस्ति। तदस्मिन्नेव पातद्वये उक्तमस्ति अतस्तद्द्वय नोक्तम्। अतो रविचन्द्रयोगादेव पातः साध्य इति युक्तमुक्तम्। पञ्चांगीयो योगोऽपि रवीन्दुयोगादेव सिद्धोऽस्ति। अतस्तस्मादेव पातः साध्यते। चक्रार्धतुल्ये योगे सार्धत्रयोदश योगाः। चक्रतुल्ये योगे सप्तविंशतिर्योगाः अतस्त एवांगीकृताः। अत्र योगो निरयनांशात् क्रान्तिः सायनांशात्। अतोऽत्रयोगे द्विगुणायनांशोत्पन्नयोगो न्यूनीकर्त्तव्यो निरयनांशयोगर्योगयोगस्य कृतत्वात्। यदि चक्रांशैः ३६० सप्तविंशति-२७ लभ्यन्ते तदा द्विगुणायनांशैः किमिति फलं योगस्तस्य घटीकरणार्थं षष्टिः ६० गुणः। एवमयनांशानां द्वयं षष्टिः सप्तविंशतिरिति गुणत्रयं तद्घातो जातो गुणः ३२४०। हरश्चक्रांशाः ३६०। एवं गुणहरौ हरेणापवर्त्य लब्धा गुणस्थाने नव। अतो नवगुणायनांशतुल्यघटीभिः सार्धत्रयोदश सप्तविंशतिश्चोनास्तत्तुल्ययोगे गते पातः स्यादित्युपपन्नम्। अत्र योगाः स्थले घटिका मध्यमाः। तासां स्पष्टीकरणायानुपातः। यदि परमाभिः पञ्चषष्टिमिताभिः सर्वर्क्षघटिकाभिरेता योगघटिकास्तदेष्टसर्वर्क्षनाडीभिः किमिति। अत्र पाते सायनांशस्यैव प्रयोजनमतः सायनांशावेव कार्यावित्युपपन्नम्॥१

चन्द्रिका—अयनांश को ९ से गुणा कर गुणनफलको घट्यादि बनाकर १३।३० घट्यादि में घटाने से शेष तुल्य सावयव योग गत होने पर व्यतिपात नामक पात होता है। इसी प्रकार अयनांश में ९ का गुणाकर गुणनफल को २७ घटी में घटाने से शेष तुल्य सावयव योगों के बीतने पर वैधृति नामक पात होता है।

योग की गत घटी को नक्षत्र की पूर्णघटी (भभोग) से गुणाकर ६५ का भाग देने से लब्धि गत स्पष्ट घटी होती है। पातसाधनार्थ सूर्य तथा राहु दोनों में अयनांश जोड़ लेना चाहिये।१

उदाहरण—स्पष्ट सूर्य १।२।३५।६ गति ५७।३३ स्पष्ट चन्द्रमा ९।२४।८।३५ गति ७६२।४९, राहु, ०।२५।९।५२ धनिष्ठा नक्षत्र की गत घटी ३।४९

ऐष्य घटी ५९।६ पूर्णमान ६२।५५ अयनांशा १८।११। अयनांश १८।११ को ९ से गुणाकर गुणनफल १६३।३९ को ६० से तष्टित कर २।४३।३९ को १३।३० में घटाने से शेष १०।४६।२१ सावयव योग बीतने पर व्यतिपात होगा। इसी प्रकार युक्त गुणनफल २।४३।३९ को २७ में घटाने से शेष २४।१६।२१ सावयव योग बीतने पर वैधृति पात होगा।

उक्त सावयव योग (ब्रह्मयोग) की गत घटी १६।२१ को नक्षत्र की पूर्ण घटी ६५।५५ से गुणाकर गुणनफल में १०२८।४७ में ६५ का भाग देने से १५।४२ स्पष्ट घटी हुई। सं. १६७० शके १५३५ वैशाख कृष्ण ६ शुक्रवार को शुक्लयाग घ, ३०।१ इसमें स्पष्ट घटी १५।४९ जोड़ने से ४५।५० मध्यम कान्ति साम्य (पात) हुआ।

४५।५० को इष्ट घटी मान कर पातकालिक सूर्य तथा राहु का साधन करना चाहिये। पातकालिक सूर्य १।२।२१।३१ राहु ०।२५।१०।३७ इसमें अयनांश १८।११ जोड़ने से सायन सूर्य १।२०।३२।३१ तथा सायन राहु १।१३।२१।३७।

स्पष्टपातसन्धिपाताभावादिज्ञानम् —

गोलैक्ये साग्वर्कभान्वोः सदा स्यात् पातोऽन्यत्वे चेद्रवेर्बाहुभागाः।
पञ्चेषुभ्योऽल्पास्तदास्त्येव पातः पुष्टाश्चेत् तत्संशयस्तं च भिद्मः ॥२

खाभ्रेन्दुद्विरसा धृतिर्नगशराः साग्वर्कभान्वोः पदै-
क्येऽर्धानि त्र्यगरुद्रभूपतिनखास्त्र्यक्षाणि भेदे क्रमात्।
क्षेपः षड्दश चार्ककोटिजलवेर्ष्वंशप्रमार्धैक्यकं
शेषांशैष्यवधेषुभागसहितं सन्धिर्भवेत् क्षेपयुक् ॥३

साग्वर्कभुजांशका यदाल्पाः सन्धेः क्रान्तिसमत्वमस्ति चेत्।
अधिका न तदा भुजांशसंध्यन्तरसादृश्यमिहापमान्तरं स्यात् ॥४

मल्लारिः—अथ पातस्य सम्भवासम्भवविचारमाह। साग्वर्कभान्वोः सराहुरविसूर्ययोरेकगोलत्वे सति सदा पातः स्यादेव। अन्यत्वे भिन्नगोलत्वे सति रवेर्भुजभागा यदा पञ्चेषुभ्योऽल्पास्तदा पातोऽस्त्येव। चेत् पञ्चपञ्चाशदधिकास्तदा तस्य पातस्य संशयः। अस्ति नास्ति वेति। तमपि संशयं भिद्मो नाशयाम इति। सराहुसूर्ययोरेकत्वे खाभ्रेन्दुद्विरसा इति खण्डानि स्युः। पदभेदे त्र्यग-

रुद्रभूपतिनखा इति खण्डानि स्युः। अत्र क्षेपः षड्भागा प्रथमस्य द्वितीयस्य दश। अर्कस्य ये कोटिलवाः सूर्यस्य ये कोट्यंशाः। तेषां य इष्वंशः पञ्चमांशस्तत्प्रमाणानां खण्डानामैक्यं कार्यम्। तत्खण्डैक्यं शेषाणामैष्यखण्डस्य च ये वधस्तस्य य इषुभागः पञ्चमांशस्तेन सहितं क्षेपयुक् च कृतं सत् सन्धिर्भवति। एवं यत्र साग्वर्कस्य भुजांशकाः सन्धिभागेभ्योऽल्पास्तदा क्रान्तिसाम्यमस्ति। चेत् सन्धितोऽधिकास्तदा न पातः। अत्र भुजांशानां सन्धेश्च यदन्तरं तत्समानं क्रात्यन्तरं स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—अत्र व्यतीपाते रविचन्द्रयोर्गोलैकत्वं वैधृते गोलान्यत्वम्। उभयत्रापि साग्वर्कभान्वोर्गोलैकत्वे विराहुचन्द्रोत्पन्नशरसंस्कृतेन्दुक्रान्ती रविक्रान्त्यग्रे पृष्ठे चासमैव भवति चयापचयहेतुभूतत्वात्। साग्वर्कार्कयोर्गोलान्यत्वे चन्द्रपरमशरेण ४।३०। चन्द्रस्य परमक्रान्ति २४ हीना १९।३०। अस्याः क्रान्तेस्तुल्यायां रविक्रान्तौ क्रान्तिसाम्यं भविष्यत्येव। एतावती रविक्रान्तिर्कैर्भुजभागैर्भविष्यतीति ज्ञानार्थं धनुष्करणरीत्या ज्ञाता भुजभागाः ५५ एभ्योऽल्पेषु रविभुजभागेषु क्रान्तिसाम्यमवश्यमस्त्येव। पञ्चपञ्चाशदधिकभुजभागेषु भावाभावविचारः। तत्र पञ्चपञ्चाशदधिकभुजभागाप्रयोजनात् रवेः कोटि भागा एव कार्याः। ते परमाः पञ्चत्रिंशत् ३५। तत्र भुजभागपरमत्वे कोट्यंशाभावात् शून्यमितान् रविकोट्यंशान् प्रकल्प्य पातविचारः कृतः तत्र सराहुसूर्यसूर्ययोः पदैकत्वे सराहुसूर्यभुजभागेषु षड्नेष्वेव पातः। अतो रविकोट्यंशेषु शून्यतुल्येषु षट्तुल्यः सन्धिः। एवं पञ्चतुल्यरविकोट्यंशेष्वपि षट्तुल्य एव सन्धिः। एवं पञ्चोत्तरान् भागान् प्रकल्प्य साधितसन्ध्यंशानधो विशोध्य षड्नान् कृत्वा खण्डानि पञ्चत्रिंशदंशमध्ये सप्त पठितानि। एवं तयोः पदान्यत्वे षष्ट्यधिक भुजभागेषु त्रिंशत्मितकोट्यंशमध्ये षट्सन्धिखण्डानि दशोनानि कृत्वा पठितानि। मध्येऽनुपातः। पञ्चभागैर्यदि भोग्यखण्डं तदा शेषभागैः किमिति? षट्दश चोनाः कृताः। अतः स क्षेपो योज्य एव। एवं जातो भागाद्यः सन्धिः। सन्धित सराहुसूर्यभुजभागेष्वल्पेषु पातो नाधिकेष्वित्युपपन्नम्। भुजांशानां सन्ध्यंशानां यदन्तरं तत्तुल्यमेव क्रान्त्योरन्तरमित्यर्थतः एव सिद्धम् ॥२,४

चन्द्रिका सूर्य तथा राहु युक्त सूर्य दोनों ही एक गोल के हों तो सदैव पात होता है। भिन्न गोल में सूर्य के ५५ अंश भुजांश तक पात होता है। ५५ अंश से अधिक सूर्य का भुजांश होने पर पात का सन्देह हो जाता है। उस सन्देह का भी निराकरण कर रहा हूँ।२

राहु युक्त सूर्य तथा स्पष्ट सूर्य दोनों ही यदि एक पद में हों तो क्रम से ०।०।१।२।६।१८।५७ ये खण्ड पठित है तथा यदि वे भिन्न भिन्न पद में हों तो क्रम से ३।७।११।१६।२०।२३ ये खण्ड पठित हैं। इनके क्षेप भी क्रम से एक पद में ६ तथा भिन्न पद में १० बताये गये हैं। सूर्य की अंशादि कोटि में ५ का भाग देकर लब्धि तुल्य खण्डों का योग करें। शेष अंशादि में ऐष्य खण्ड का गुणाकर गुणनफल के पञ्चमांश को खण्डों के योग में जोड़कर अपने अपने क्षेप (एक पद में ६ तथा भिन्न पद में १०) जोड़ने से सन्धि होती है।३

राहु युक्त सूर्य का भुजांश यदि सन्धि से अल्प हो तो पात की सम्भावना होती है। यदि भुजांश सन्धि से अधिक हो तो पात की सम्भावना नहीं होती।

भुजांश और सन्धि का अन्तर सूर्य और चन्द्र के क्रान्त्यन्तर के समान ही होते हैं।४

उदाहरण -सूर्य १।२७।०।० राहु ६।१५।०।० राहु युक्त सूर्य ८।१२।०।० सूर्य का भुजांश ५७ है। यह ५५ से अधिक है। अतः पात संदिग्ध है।

सूर्य की कोटि १।३ अंशादि ३३। इसमें ५ का भाग देने से प्राप्त लब्धि ६। अतः ६ खण्डों का योग (०+०+१+२+६+१८)=२७। शेष में ऐष्य खण्ड ५७ को गुणा किया गुणनफल १७१ में पाँच का भाग देकर लब्धि ३४।१२ को खण्ड योग २७ में जोड़ने से (२७।० + ३४।१२)=६१।१२ इसमें क्षेप ६ जोड़ने से ६७।१२ सन्धि हुई। राहु युक्त सूर्य का भुजांश ७२ सन्धि से अधिक है अतः पात की सम्भावना नहीं हुई।

यातैष्यपातयोर्ज्ञानम् —

पदे युग्मौजेऽर्कःसमविषमगोले सतमस-
स्तदा यातः पातस्त्वगत इतरत्वे निगदितात्।

विभिन्ने गोले चेदिह कृतशराङ्घ्रेर्लघुतरा
रवेर्दोर्भागाः स्यादिह रविपदान्यत्वमुचितम् ॥५

मल्लारिः—अथ पातस्य गतागतलक्षणमाह । अर्कः सूर्यः । यदि युग्मपदे वर्तते सराहुसूर्यात् समगोलेऽपि चेत् स्यात् तदा यातः पातो ज्ञेयः । अथ रविरोजपदे सराहुसूर्याद् भिन्न गोले चेत् तदापि यातः पातः स्यात् । निगदितात् उक्तलक्षणाद् इतरत्वे अन्यथात्वे अगत एष्यः पातः स्यात् । सराहुसूर्यात् सूर्यश्चेत् भिन्नगोले तदा कृतो गणितागतो यः शरस्तस्य योऽङ्घ्रिश्चतुर्थांशः । तस्माद्रवेर्भुजभागा लघुतरा अल्पाः स्युस्तदा रविपदस्य अन्यत्वमुचितम् ।

अत्रोपपत्तिः अत्र रविचन्द्रयोर्भुजसाम्यात् रविरेवाङ्गीकृतः । रविर्यदा युग्मपदे तदा तस्य क्रान्तिरपचीयमाना तत्र सराहुसूर्यात् समगोलत्वेऽपि समदिशा शरेण युक्तापि सा क्रान्तिरग्रे रविक्रान्त्या न समा स्यात् । अतस्तत्र पातो गतो ज्ञेयः । ओजपदे वर्तमानस्य क्रान्तिरुपचीयमाना सा सराहुसूर्यभिन्नगोलत्वे सति भिन्न दिशा शरणान्तरिताप्यग्रे सूर्यक्रान्त्या न समा स्यात् । अतस्तत्रापि पातो गतः स्यात् तदन्यथात्वे गम्यः पात इत्युपपन्नम् । अथ चन्द्रस्य गोलसन्धिः साध्यः । अत्र चन्द्रो न कृतो रविरेवास्ति चन्द्रो भुजसाम्यात् । शरेण कृत्वा गोलान्यत्वसम्भवः सन्धौ । तत्र शरांगुलभागाः साध्यन्ते । परमक्रान्त्या २४ त्रिज्यातुल्या दोर्ज्या तदेष्टशरतुल्यक्रान्त्या केति । एवमिष्टदोर्ज्या तस्य धनुः करणार्थं सुखार्थं द्वौ हर शराङ्गुलानां दशगुणत्वात् दश हरः । एवमत्र हरघातो हरः ४८० । त्रिज्यागुणः । तेनैवापवर्तने जातः शरस्य हरः ४ । एवं चतुर्भक्तशरादल्पभुजभागेषु भिन्नगोलत्वात् पदान्यत्वं भविष्यतीति युक्तम् । तेन कृतशराङ्घ्रेर्लघुतरा रवेर्दोर्भागा इत्युपपन्नम् ॥५

चन्द्रिका—सूर्य सम पद में हो तथा राहु युक्त सूर्य से समगोल में हो अथवा सूर्य विषम पद में हो और राहु युक्त सूर्य से भिन्न गोल में हो तो गत (बीता हुआ) पात जानना चाहिये । इससे भिन्न स्थिति में पात ऐष्य (आने वाला) होता है । भिन्न गोल होने पर वक्ष्यमाण विधि से साधित शर के चतुर्थांश से यदि सूर्य के भुजांश अल्प हो तो सूर्य को अन्य पद मान कर गत गम्य का ज्ञान करना चाहिये । ५

खण्डद्वारासूक्ष्मशरसाधनम्—

पञ्चधा सागराः पञ्चधा बाहवो द्वौ चतुर्धा कुभूलाभ्ररूपा इषोः ।
साधिताद्दोर्लवेभ्यांशतुल्यैर्दलं शेषभोग्याहतोऽदंशयुक् स्यात् शरः ॥६

मल्लारिः—अथ पातसाधने हेतुभूतशरं खण्डकैः सूक्ष्मं साधयति। इषोः शरस्य एतेऽङ्का स्युः। सागराश्चत्वारः पञ्चधा। वह्नयस्त्रयस्तेऽपि पञ्चधा। द्वौ चतुर्धा। ततः कुभूखाभ्रम्। कुरेकः। खं शून्यम्। अभ्रं शून्यम्। एतेषां समाहारस्तत् तथा। ततः साग्विनात् सराहुसूर्याद् दोर्लवानां भुजभागानामिष्वंशः पञ्चमांशः। तत्तुल्या ये गताङ्कास्तेषामैक्यं कार्यम्। ततः शेषांशानां भोग्याङ्कस्य च या हतिः तस्या यः पञ्चमांशस्तेन युक् शरः स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः--शरस्वरूपं पूर्वमेव प्रतिपादितमस्ति। अत्र पञ्चपञ्चभागानां शरभागादिकमुत्पाद्य भावयवत्वाद् शभिः सवर्णयित्वा विद्वान् नवति। भुजभागानामष्टादशशराङ्कानाचार्यः प्रोक्तवान्। मध्ये तत्रानुपातः यदि पञ्चभिर्भुजभागैरेकः शराङ्को लभ्यते तदेष्टभुजभागैः कियन्त इति अत उक्तं भुजभाग पञ्चांशतुल्य-गताङ्कैक्ये कार्यम्। शेषाणामनुपातः। पञ्चभिर्भोग्यखण्डं लभ्यते तदा शेषभागैः कियन्त इति। अतः शेषभोग्यखण्डवधपञ्चमांशेन युक्तं तदैक्यं शरः स्यादित्युपपन्नम् ॥६

चन्द्रिका--सूक्ष्म शर साधन के लिए ५ बार ४ (अर्थात् ४।४।४।४।४), ५ बार ३ (अर्थात् ३।३।३।३।३), चार बार २ (अर्थात् २।२ २।२) तथा १।१।०।० ये अङ्क पठित हैं। राहु युक्त सूर्य के भुजांश में ५ का भाग देने से प्राप्त लब्धि की संख्या तुल्य पठित अङ्कों के योग को पृथक रखें। ऐष्य खण्ड से शेष को गुणाकर गुणनफल में पांच का भाग देकर लब्धि को अङ्कों के योग में जोड़ने से शर होता है।६

स्पष्टार्थं पठित अङ्कों का क्रम से न्यास--
४।४।४।४।४।३।३।३।३।३।२।२।२।२।१।१।०।० ।

उदाहरण—राहु युक्त सूर्य ३।३।५४।८ इनका भुजांश ८६।५।५२ इसमें ५ का भाग देने से लब्धि १७ तथा शेष १।५।५२ प्राप्त हुआ। लब्धि तुल्य १७ अङ्कों का योग —

४ + ४ + ४ + ४ + ४ + ३ + ३ + ३ + ३ + ३ + २ + २ + २ + २ + १ + १ + ० = ४५।

शेष १।५।५२ को ऐष्य अंक ० से गुणाकर गुणनफल ०।०।० में ५ का भाग देने से लब्धि ० को अङ्कों के योग ४५ में जोड़ने से ४५ + ० = ४५

शर हुआ। राहु युक्त सूर्य उत्तर गोल का है, अतः शर उत्तर दिशा का हुआ। शर के चतुर्थांश ११।१५ से भुजांश अधिक है, अतः अन्य पद नहीं होगा।

स्पष्टशरसाधनम्—

खैकादिके रविभुजांशदशांशके स्याद्
हारोऽर्कसूर्यमनुधृत्युडवोऽङ्गरामाः।
खाश्वा द्विश*त्युडुगुणास्तु शराद्धराप्त्या
हीनोऽत्र स ह्यपमसंस्कृतये स्फुटः स्यात् ॥७

मल्लारि :—अथास्य शरस्य क्रान्तिसंस्कारयोग्यत्वार्थं स्पष्टत्वमाह। रवे भुजांशा ये स्युः। तेषां यो दशमांशः। तस्मिन् खैकादिके शून्यैकादि समे सति क्रमादयं हरः स्यात्। अर्का द्वादश। पुनः सूर्य द्वादश। मनवश्चतुर्दश। धृतिरष्टादश। उडूनि सप्तविंशतिः। अङ्गरामाः षट्त्रिंशत्। खाश्वाः सप्ततिः। द्विशती प्रसिद्धा। उडुगुणाः सप्तविंशत्यधिकशतत्रयम्। एवमत्र शरात् क्रमप्राप्त हरेण या लब्धिस्तया स एव शरो हीनः सन् क्रान्तिसंस्कारयोग्यः स्पष्टः शरः स्यादित्यर्थः।७

अत्रोपपत्तिः—अत्र क्रान्तिर्ध्रुवाभिमुखी अतः सा कोटिरूपा शरः कदम्बाभिमुखः स कर्णरूपः। अतः क्रान्तिसंस्कारार्थं शरस्य करणरूपस्य कोटिरूपत्व कार्यम्। तद्यथा यदि त्रिज्याकर्णे द्युज्याकोटिस्तदा शरकर्णे का कोटिरिति जातः कोटि रूपः शरः। एवमत्र द्युज्या कार्या। द्युज्यानाम द्युरात्रवृत्त व्यासार्धम्। तत्र क्रान्तिज्या भुजो द्युज्या कोटिस्त्रिज्या कर्णः। एवं क्रान्तिज्यावर्गोनस्त्रिज्या वर्गो द्युज्यावर्गस्तन्मूलं द्युज्येति कर्त्तव्यम्। अत्रेदं जडकर्म दृष्ट्वा आचार्येण दशभागानां द्युज्याः साधिताः। तत्र प्रथमं दशभागानां क्रान्तिज्यायां क्रियमाणायां सत्रिराशिग्रहः कार्यः एवमत्र सत्रिराशीनां दशभागानां द्युज्या ११०। शरोऽनया गुण्यः खार्कमितित्रिज्या भाज्यः। अत्र गुणहरो दशभिरपवर्त्तितो जातो गुण एकादश ११। हरो द्वादश १२। यो राशिरेकादशभिर्गुण्यते द्वादशभिर्भज्यन्ते स स्वद्वादशांशहीनएव भवति। एवं सर्वेऽपि हरा उत्पादिताः अतः शरः स्वरलब्ध्या हीनः क्रान्तिसंस्कारयोग्यः स्पष्टो भवतीत्युपपन्नम् ॥ ६

चन्द्रिका—सूर्य के भुजांश में १० का भाग देने से ०।१ आदि जो लब्धि प्राप्त होती है। उसी के अनुसार क्रम से १२।१२।१४।१८।२७।३३।

*द्विदिङ् इति पाठान्तरम्

७०।२००।३२७ हार भी पठित हैं। लब्धि के अनुसार जो हर प्राप्त हो, उससे शर में भाग देकर लब्धि को शर में घटाने से क्रान्ति संस्कार हेतु स्पष्ट शर होता है। ७

उदाहरण—सूर्य भुजांश ५०।३२।३१ में १० का भाग देने से लब्धि ५ प्राप्त हुई शून्यादि क्रम से छठां अङ्क ३६ ऐष्याङ्क ७० दोनों के अन्तर ३४ से शेष ०।३२।३१ गुणाकर गुणनफल १८।२५।३४ में १० का भाग देकर लब्धि १।५० को गताङ्क ३६ में जोड़ने से ३७।५० स्पष्ट हर हुआ। इससे शर ४५।० में भाग देने से लब्धि १।११ को शर ४५।० में घटाने से ४३।४९ स्पष्ट उत्तर शर हुआ।

विशेषः—यहाँ स्पष्ट शर साधन में गणेश दैवज्ञ के नियम में कुछ स्थूलता रह गई है जिसका निराकरण विश्वनाथ ने अपने उदाहरण में किया है।

गताङ्क और ऐष्याङ्क के अन्तर से शेष को गुणा कर गुणनफल में १० का भाग देकर लब्धि को गताङ्क में जोडने से स्पष्ट हार होता है।

क्रान्तिसाधनार्थमङ्काः—

चतुर्घ्ना नखा गोभुवो द्विर्गजाब्जा नृपाष्टीन्द्रविश्वार्कदिग्वस्वगाक्षाः।
त्रयः क्ष्मापमाङ्काः क्रमादर्कबाहोर्लवेष्वंश तुल्यो गतो न्यस्य शेषम् ॥८

मल्लारिः—अथ क्रान्तेः कर्त्तव्यताप्रकारं खण्डैरेवाह। एवमपमस्य क्रान्तेरङ्काः स्युरित्यन्वयः। नखा विंशतिश्चतुर्घ्ना ततो गोभुव एकोनविंशतिः द्विवारम्। गजाब्जा अष्टादश। नृपा षोडश अष्टिः षोडश। इन्द्राश्चतुर्दश। विश्वे त्रयोदश। अर्का द्वादश। दिशो दश। वसवोऽष्टौ। अगाः सप्त। अक्षाः पञ्च। त्रयः प्रसिद्धाः। क्ष्मा एकः। अर्कस्य यो बाहुर्भुजस्तस्य ये लवास्तेषामिष्वंशः पञ्चमांशस्तत्तुल्यो गतोङ्कः स्यात् शेषं न्यस्येति शेषमेकान्ते स्थापनीयमेव।

अत्रोपपत्तिः—क्रान्तिलक्षणं पूर्वमेव प्रतिपादितम्। पञ्चपञ्चभागजान् क्रान्तिभागान् प्रसाध्य सावयवत्वाद् दशभिः संगुण्याङ्काः पठिता। तत्रानुपातः। यदि पञ्चभिर्भुजभागैरेकः क्रान्तेरङ्को लभ्यते तदेष्टभुजभागैः किमिति। लब्धतुल्यो गताङ्कः स्यात् शेषस्याग्रे प्रयोजनमस्त्यतस्तत् स्थाप्यम् ॥८

चन्द्रिका--चार बार २०, दो बार १९ तदनन्तर १८, १६, १६, १४, १३, १२, १०, ८, ७, ५, ३, १ ये क्रान्ति साधनार्थ अङ्क हैं। सूर्य के भुजांश में ५ का भाग देने से प्राप्त लब्धि संख्या तुल्य पठित गताङ्क होते हैं। शेष को पृथक् रखें।८

स्पष्टार्थ पठित क्रान्त्यङ्कों का क्रम से न्यास—

२०।२०।२०।२०।१९।१९।१८।१६।१६।१४।१३।१२।१०।८।७।५।३।१।

उदाहरण--सायनसूर्य के भुजांश ५०।३२।३१ मे ५ का भाग देने से लब्धि १० प्राप्त हुई। दसवाँ अङ्क १४ गताङ्क हुआ। शेष ०।३२।३१ रहा।

पूर्वपठितानामङ्कानां संस्कारः--

क्रमोत्क्रमाद्युत्क्रशरापमाङ्कान् सङ्ख्या हि भोग्यात् क्रमतः षडङ्काः।
स्थाप्या गतैष्या गत गम्यपाते युग्मेऽन्यथौजे स्युरिमेऽयनांशाः॥९
अन्त्याद्विलोमा यदि तेऽन्यदिक्का अथापमाङ्काः क्रमशः शराङ्कैः।
सुसंस्कृतास्त्रीन्दुहृतापमैष्याङ्केनापि ते स्पष्टतरा भवेयुः॥१०

मल्लारिः---अतः क्रान्तिखण्डानां शरखण्डानां संस्थानक्रमं तत्संस्कारं च कथयति। उक्ता ये शरस्य तथाऽयनस्य क्रान्तेर्येऽङ्कास्तान् यथागतान् आदौ क्रमात् पश्चादुत्क्रमात् सङ्ख्याहि गतयभोग्यात् अङ्कात् क्रमतो यथाक्रमं षडङ्का गते पाते गता ऐष्ये पाते ऐष्याः स्थापनीयाः। अयं प्रकारस्तु युग्मपदे। ओजपदे च यदा रविः सराहुसूर्यो वा भवति तदा इदमन्यथा विपरीतम्। तद्यथा। गते पाते ऐष्ये पाते गता इमाङ्का अयनदिशः स्युः। रविर्यस्मिन्नयने तद्दिशः क्रन्त्यङ्का अन्त्याद्विलोमास्तदा तेऽन्या देशो ज्ञेयाः। भोग्यादन्त्यपर्यन्त येऽङ्कास्तेऽयनदिशः। अन्त्यादन्त्ये ये उत्क्रमथास्ते विपरीतदिशः। उत्तरायणे दक्षिणायने उत्तराः स्युरित्यर्थः। अथ शब्दोऽनन्तरवाची। क्रात्यङ्कशराङ्कस्थापनानन्तरं क्रात्यङ्काः शराङ्कैः सुसंस्कृताः कार्याः अत्र संस्कारस्तु एकदिशो योगो भिन्नदिशोरन्तरमिति प्रसिद्धः। ततस्तेऽङ्कास्त्रीन्दुहृतापमैष्याङ्केन त्रयोदशभक्तक्रान्तिभोग्याङ्केनापि संस्कृताः स्पष्टतरा भवेयुरित्यर्थः

अत्रोपपत्तिः—युग्मपद खण्डनामग्रे उपचयः। तत्र चेद्गतः पातः। तज्ज्ञानार्थमपचयभूताङ्कग्रहणम्। अतो गताङ्कस्थापनमुक्तम्। ऐष्ये पाते ऐष्याङ्क-

स्थापनमर्यंत एव सिद्धम् । ओजपद इह विपरीत भवति । अङ्कानामुपचयापचयस्य व्यस्तभूतत्वात् । तेऽङ्काः स्वायनदिशि स्युरिति प्रत्यक्षम् । अत्र शरसंस्कृतायाश्चन्द्रक्रान्तेः सूर्यक्रान्त्या सह यदन्तरं तज्ज्ञानार्थं क्रान्त्यङ्काः शराङ्काः संस्कार्या एव । शरस्य प्रथमाङ्कः क्रान्तेः प्रथमाङ्के संस्कार्यः । एवं द्वितीयो द्वितीये इत्यादिषण्णामप्यङ्कानां संस्कारः कार्य एव । अन्यच्च संस्कारान्तरम् यदि चन्द्रगतिप्रमाणेनेदं क्रान्तिभोग्यखण्डं तदा रविगतिप्रमाणेन किमिति भोग्यखण्डं रविगत्या गुण्यम् । चन्द्रगत्या भाज्यम् । अत्र रविगतिस्त्रयोदशगुणा चन्द्रगति भवत्यतः स्थूलत्वात् भोग्याङ्कास्त्रयोदशभिर्भाज्याः फलं सर्वाङ्केषु संस्कारार्थं चन्द्रगतिसम्बन्धित्वात् । अतस्त्रीन्दुहृतायमेव्याङ्केनापि संस्कृतास्ते षडङ्काः स्पष्टतराणि क्रान्त्यन्तरखण्डानि चन्द्रार्कयोर्भवेयुरित्युपपन्नम् ॥९, १० ॥

चन्द्रिका—पूर्वपठित शराङ्कों और क्रान्त्यङ्कों को क्रम एवं उत्क्रम से रख कर, पात गत होने पर तथा सूर्य एवं राहु युक्त सूर्य के समपद में होने पर भोग्याङ्क से पिछले ६ अङ्कों को स्थापित करना चाहिये। यदि सूर्य एवं पातयुक्त सूर्य विषम पद में हो तो अग्रिम ६ अङ्कों का स्थापन करना चाहिये। इसी प्रकार गम्यपात होने पर सम पद में सूर्य के होने पर भोग्याङ्क से अग्रिम ६ अङ्कों का स्थापन करना चाहिये।

सूर्य जिस अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन) में हो उसी दिशा का क्रान्त्यङ्क तथा पातयुक्त सूर्य की दिशा का शराङ्क ग्रहण करना चाहिये। भोग्यखण्ड के क्रम से यदि गणना हो तथा अन्तिमाङ्क से आगे विपरीत अङ्कों की स्थापना हो तो वे अङ्क भिन्न दिशा के होते हैं। क्रान्त्यङ्कों में क्रम प्राप्त शराङ्कों का संस्कार (एक दिशा में योग भिन्न-भिन्न दिशा में अन्तर) कर पुनः उसमें भोग्याङ्क के तेरहवें भाग (१।१३) का संस्कार करने से स्पष्ट होता है। ९,१०

उदाहरण—पर्व प्रथम क्रम से क्रान्ति के अङ्कों को स्थापित करके उसके नीचे उत्क्रम से रखेंगे। यथा—

२०।२०।२०।२०।१९।........१ । क्रम, उत्क्रम १।३।५।........२० इसी प्रकार शराङ्कों को भी—

४।४।४।............० क्रम, उत्क्रम ०।०।१।...........४ ।

सायन सूर्य १।२०।३२।३१। विषम पद में हैं तथा पात गम्य है। अतः भोग्यखण्ड (पूर्व श्लोक में दसवाँ अङ्क १४ गत तथा ग्यारहवाँ ऐष्याङ्क १३ है) १३ से पिछले ६ अङ्कों १३।१४।१६।१६।१८।१९ का ग्रहण करेंगे। इनकी दिशा सूर्य के उत्तरायण होने से उत्तर हुई। सपात सूर्य ३।३।५४।८ सम पद में हैं। गम्य पात होने के कारण अन्तिम भोग्य खण्ड से अग्रिम ६ अङ्कों ०।०।०।१।१।२ को ग्रहण किया। सपात सूर्य दक्षिणायन में है अतः शराङ्कों में प्रथम अङ्क ० की दक्षिण दिशा, शेष ०।०।१।१।२ को उत्तर दिशा होगी। भिन्न दिशा होने से प्रथम क्रान्त्यङ्क तथा शराङ्कों का अन्तर (१३ −०=१३) किया तथा शेषाङ्कों की एक दिशा होने से योग किया —

१४।१६।१६।१८।१९
०। ०। १। १। २
—————————
१४।१६।१७।१९।२१

प्रथम अङ्क के अन्तर में भी शेष उत्तर दिशा का ही है अतः १३।१४।१६।१७।१९।२१ सभी उत्तर दिशा के हुये। भोग्य खण्ड १३ में १३ का भाग देने से प्राप्त लब्धि १ को सभी अङ्कों में जोड़ने से स्पष्ट अङ्क १४।१५।१७।१८।२०।२२ हुये।

पातस्य मध्यकालज्ञानम्—

प्राक् स्थापिताः शेषलवाः शराप्ताः रूपाद्विशुद्धा लघुसंज्ञकः स्यात्।
आद्यः स्फुटाङ्को लघुनाहतो यस्तेनाढ्यबाणात् क्रमशोऽथ जह्यात् ॥११
तानङ्ककान् शेषमशुद्धभक्तं विशुद्धसंख्यासहितं लघूनम्।
त्रिघ्नं भनाडीघ्नमिभाप्तमाप्तयातैष्यनाडीष्विह पातमध्यम् ॥१२

मल्लारिः—अथ पातकालं वृत्तद्वयेन साधयति। प्राक् पूर्वक्रान्तौ ये शेषभागा एकान्ते स्थापितास्ते शरैः पञ्चभिराप्ता भक्ताः सन्तो यत् फलं तस्य रूपशुद्धस्य लघुसंज्ञा। षडङ्कमध्ये य आद्यः प्रथमः स्पष्टाङ्कः स लघुना हतो गुणितः कार्यः। तेन आढ्यो युक्तो योऽत्र स्पष्टबाणः। तस्मात् तानङ्कान् जह्यात् शोधयेत्।

ततः शुद्धेष्वङ्केषु यच्छेषं तदशुद्धेनाङ्केन भक्तं कार्यं तत्फलं विशुद्धखण्डानां संख्या यावती स्यात् तया सहितं युक्तं च कार्यं ततस्तत् लघुना ऊनं त्रिगुणम् । पुनर्भनाडीभिः नक्षत्रसर्वघटीभिर्गुण्यम् । ततस्तदिभैरष्टभिराप्तं भवतं सत् आप्ता लब्धा या यातैष्यनाड्यस्तासु पातमध्यः स्यात् । यातैष्यलक्षणं पूर्वमेव प्रतिपादितमस्ति । मध्यमपातकालात् ताभिर्घटीभिर्गतो गम्यो वा पातमध्यः स्यादित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः — अत्र खण्डानि पञ्चपञ्चभागानां तेनानुपातः । यदि पञ्चभिर्भागै-र्भोग्याङ्को लभ्यते तदा शेषांशः किमिति । अतः शेषलवाः शराप्ताः कार्या एव । रूपादूना एव सदा स्युरिति तेषां भोग्यत्वकरणार्थं ते रूपाद्विशुद्धा इत्युक्तम् । तस्य लघुसंज्ञा कृता । तस्य भोग्याङ्कोगुणोऽस्त्यतो लघुना हत आद्यः स्फुटाङ्कः कार्य इति सिद्धम् । एवं जातं गते पाते शेषांशोत्थभोग्यखण्डमैष्ये शेषांशोनपञ्चांशोत्थं भोग्यखण्डम् । इदमाद्यापरपर्यायान्मध्यक्रान्तिसाम्यकालिकशरतुल्यक्रान्त्यन्तराच्छो-ध्यम् । द्वितीयादिखण्डान्यपि शोध्यानि । अत्राचार्येण प्रथमखण्डं सम्पूर्णं शोधितम् । अतो भोग्योत्थभोग्यखण्डं गते पाते भुक्तांशोत्थभोग्यं खण्डं गम्ये पाते शरे योज्यम् । अतः शेषलवाः शराप्ता रूपाद्विशुद्धाः गते पाते लघुः । गम्ये शेषांशाः शराप्ता एव लघुः स्यादिति युक्तम् । अत एवाचार्यलिखिततज्जीर्णपुस्तके 'प्राक्स्थापिताः शेष-लवा शराप्ता लघुर्भवेदभूच्युत एष्यपाते' इति पाठो दृश्यते । अस्यार्थः । एष्यापते शेषांशशरांशो भूच्युतो लघुर्गते किं कर्त्तव्यमिति मन्दधियां संशयो भवेदतः 'प्राक्-स्थापिताः शेषलवाः शराप्ता गम्ये लघुर्भूपतितो गतोऽसौ' इति पाठो नितान्त-रमणीय इति प्रतिभाति । रूपाद्विशुद्धो लघुसंज्ञकः स्यात् इति पाठस्तु वासना-विरोधादुपेक्ष्यः । एवं यावन्तोऽङ्काः शुध्यन्ति तावन्तः शोध्याः शेषेण सहानुपातः । यदि अशुद्धाङ्केन पञ्चभागा लभ्यन्ते तदाऽनेन शेषेण किमिति । अतः शेषम-शुद्धाङ्कभक्तं कार्यमिति । तस्मिन् फले विशुद्धाङ्क संख्या योज्या । तत्र पूर्वं लघुः संयोजितो वर्त्तते स निष्काशनीय एव । तत्कालादेव पातज्ञानार्थम् । अतो लघूनमिति । यदि चन्द्रगतिभागैरेभिः १३।१०। सर्वनक्षत्रघटिका लभ्यन्ते तदैभिः शेषभागैः किमिति । अत्र शेषस्य सर्वर्क्षनाड्यो गुणः । अतो भनाडीघ्नमिति । अत्र हरस्त्रयोदश सावयवाः १३।१०। पूर्वानुपाते गुणः पञ्चतुल्यः स्थितः । अत्र सञ्चारो यदि पञ्चतुल्ये गुणे सावयवास्त्रयोदश १३।१०। हरस्तदाऽऽचार्येण कल्पिते त्रिमिते गुणे को वा हरः । लब्धा अष्टौ । अतस्त्रिघ्नमिभाप्तमिति । लब्धघटीभिर्गतैष्यं पातमध्य स्यादित्युपपन्नम् ॥११।१२

चन्द्रिका--पहले (आठवें श्लोक के उदाहरण में) स्थापित शेष को ५ से भाग देने पर ऐष्य पात में लघु संज्ञा होती है। गत में ५ से भाग देने पर जो शेष बचे उसे १ में घटाने से लघु होता है। पूर्व स्थापित अंकों में प्रथम अंक को लघु से गुणाकर गुणनफल में शर जोड़कर योगफल में जितने अंक घट सकें उतने को घटाना चाहिये। जो न घटे वह अशुद्ध संज्ञक होता है। शेष को अशुद्ध से भाग देकर लब्धि में शुद्ध संख्या जोड़कर पुनः उससे लघु को घटाकर शेष को ३ से तथा भभोग की घटी से गुणा कर ८ का भाग देने से लब्धि गत-गम्य पात का मध्यकाल होता है। ११ १२

उदाहरण-पूर्व प्राप्त शेष ०।३२।३१ में ५ का भाग देने से ०।६।३० लघु हुआ। प्रथम संख्या से गुणाकर शर में जोड़ने से ४१।२०।० हुआ इसमें क्रान्ति २ अङ्क घटाने से शेष १६।२० अशुद्ध तृतीय १० अङ्क से शेष में भाग देने से लब्धि ०।१७।३८ में शुद्ध संख्या २ जोड़कर २।१७।३८ योग में लघु ०।६।३० घटाकर शेष में ३ तथा भभाग घ. ६१।११ से गुणा कर गुणनफल १३८।२१ में ८ का भाग देने से लब्धि ६७।१७ पात मध्य काल हुआ।

पातस्थितिकालसाधनम्—

अविशुद्धहृता यमार्कनाड्यः प्राक् पश्चात् स्थितिरत्र पातमध्यात्।
शुद्धाः क्वचिदत्र षडङ्काः संस्कार्याश्च तदग्रतस्त्रयोऽङ्काः॥ ३

मल्लारिः—अथ पातस्थितिकालमाह। अविशुद्धेनाङ्केन हृता भक्ता यमार्कनाड्यो द्वाविंशत्यधिकशतमितघटिकाः। यत् फलं ताभिर्घटिकाभिः पातमध्यात् पूर्वमग्रतश्च स्थितिः स्यात्। तावत्समयं पातस्य कालोऽस्त्येव। अत्र क्वचिद्यदा षडङ्काः अपि बाणात् शुद्धास्तदाऽन्येऽपि त्रयोऽङ्का पूर्वोक्तरीत्या संस्कार्याः।

अत्रोपपत्तिः—स्थितिर्नाम मानैक्यखण्डतुल्यं यावत्क्रान्त्यन्तरं भवति तावत्पर्यन्तं पातोऽस्त्येव। अयं भाज्यः साध्यते। तत्र पञ्चदशभागानां कला ९००

यदि चन्द्रगति प्रमाणेन ७९० एतास्तदा रविगतिप्रमाणेन ५९ का इति जाताः कलाः ६७।१३। तथा मानैक्यखण्डस्य मध्यमस्य कलाः ३२।१५। तत्र मानैक्यखण्डमेतत्कलागुण्यं जातो भाज्योऽपरपर्यायः। यदि यमांगराम ३६२ मितक्रान्त्या पञ्चदशभागकला ९०० लभ्यन्ते तदा मानैक्यखण्डतुल्यक्रान्त्या ३२।१५ का। चन्द्रगतिकलाभिः ७९०।३५। षष्टिघटिकाः ६०। तदाऽऽभिः कलाभि किं यदि यमांगराम ३६२। तुल्यभोगखण्डेनैतास्तदा अशुद्धेन खण्डेन का। अयमनुपातो व्यस्तः। इच्छाह्रासे फले वृद्धेरपेक्षितत्वात् तेनाशुद्धखण्डं हरः। यमांगरामा गुणः। पूर्वं हरश्च तयोर्नाशः। एव जातो गुणत्रयघातो गुणः १७४१५००। हरश्चन्द्रगतिः। अशुद्धखण्डं च। चन्द्रगत्याऽपवर्त्ते कृते जातो भाज्यः २२०३। अयं यमांगरामखण्डेन पञ्चदशभागोत्पन्नेन। ततोऽन्योऽनुपातः। यदि यमांगरामानामयं भाज्यः २२०३ तदाऽऽचार्योक्तविंशतिमितानां किमिति जातो भाज्यः १२२। अस्याशुद्धाङ्को हरोऽस्त्यतोऽविशुद्धहृता यमार्कनाड्य इत्युपपन्नम्। इयं स्थितिरुभयतः समा। मानैक्यखण्डतुल्यान्तरस्य विद्यमानत्वात्। अत्र मानस्थितिमध्ये कृतं स्नानजपहोमादि अनन्तफलदं भवति। यत्र क्वचित् शरबाहुल्यात् षडङ्का अपि शुद्धास्तत्रान्ये त्रयः संस्कार्या इति प्रत्यक्षसिद्धम् ॥१३

चन्द्रिका—अशुद्धाङ्क से १२२ में भाग देने से प्राप्त लब्धि तुल्य घटी पात मध्यकाल से पहले अथवा बाद में पात की स्थिति होती है। यदि कभी क्रान्ति के सभी ६ अङ्क शर में घट जाय तो अग्रिम ३ अङ्को के संस्कार पूर्वोक्त विधि से करना चाहिए।१३

उदाहरण—अशुद्धाङ्क १७ का भाग १२२ में देने से लब्धि ७।१० प्राप्त हुई। पात मध्यकाल से ७।१० घटी पूर्व तथा ७।१० घटी पश्चात् तक पात की स्थिति रहेगी।

सूर्याच्चन्द्रसाधनम्—

षड्भार्कसच्युतरविस्त्विह सायनाब्जोऽथार्के घटीसमकलाश्चलनं त्वथेन्दोः भुक्त्यंशका भघटिकाप्तखखाहयः स्युस्तच्चालितापमसमत्वमिह प्रतीत्यै।१४

मल्लारिः—अथात्र सूर्यात् चन्द्रज्ञानं वदति। व्यतीपाते पाते जाते रविः षड्राशिभ्यः शुद्धः सन् सायनचन्द्रो भवति। वैधृते पाते जाते रविर्द्वादशराशिभ्यः शुद्धः सायनचन्द्रो भवति। अथ सूर्य घटीसमकालश्चालनं देयम्। अथ भघटीभिर्नक्षत्रसर्वघटीभिराप्ता भक्ताः खखाहयोऽष्टशतानि इन्दोश्चन्द्रस्य भुक्त्यंशका गति-

भागाः स्युः। तया गत्या चलितो यश्चन्द्रः। तस्यापमः शरसंस्कृतः सूर्यापमः केवल एव। अनयोः समत्वं प्रतीत्यै स्यात् ॥१४

अत्रोपपत्तिः—अत्र व्यतिपातपाते सायनरविराशियोगः षड्राशितुल्यः। वैधृते द्वादशराशि तुल्यः। अतः षड्द्वादशराशिभ्यः शोधितः सायनो रविः सायनश्चन्द्रः स्यादिति प्रत्यक्षम्। पातकालीनसूर्यकरणार्थं पातघटीतुल्या एव गतिः स्यादिति प्रत्यक्षोपपत्तिः। यदि सर्वर्क्षघटीभिरष्टशतकलाः ८०० तदा षष्टिघटीभिः का इति फलं चन्द्रगतिकलाः। ताः षष्टिभक्ता भागाः स्युस्तेन षष्टितुल्योर्गुणहरयोर्नाशे भघटिकाभक्ताहयश्चन्द्रगत्यंशा इति। एवं तत्र रविचन्द्रयोः क्रान्तिसाम्यं स्यादेवेति ॥१४

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य पाताधिकारः परिपूर्तिमागात् ॥१४
इति श्री ग्रहलाघवस्य टीकायां पाताधिकारश्चतुर्दशः ॥१४

चन्द्रिका—व्यतिपात-पात में सायन सूर्य को ६ राशि में घटाने तथा वधृतिपात में सायन सूर्य को १२ राशि में घटाने से सायनचन्द्र होता है। पूर्व साधित पात घटी का सूर्य में चालन देकर (गति से घटी में गुणाकर) पात घटी कालिक सूर्य साधन करना चाहिये तथा भभोग घटी से ८०० में भाग देकर चन्द्रमा की गति सिद्ध कर चन्द्रमा में उक्त घटी का चालन देकर पात मध्यकालिक चन्द्र साधन कर लेना चाहिये। इन दोनों से साधित शरसंस्कृत क्रान्ति की समता देखनी चाहिये।१४

उदाहरण-वैधृति पात होने से १२ राशि में क्रान्तिसाम्यकालिक सायन सूर्य १।२०।३२।३१ को घटाने से शेष १०।९।२७।२९ सायन चन्द्रमा हुआ। ६७।१७ पात मध्यकालिक चालित सूर्य १।२१।३९।४८ हुआ। ८०० में भभोग ६२।५५ का भाग देने से लब्धि १२।४२।५५ अंशादि चन्द्रमा की गति हुई इससे चालित चन्द्रमा १०।२३।४३।०। पूर्वोक्त नियम से साधित सूर्य क्रान्ति १८।३।५७ शर संस्कृत चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति १८।१३।१२ दोनों के अशों में समता है।

श्रीगणेशदैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के पाताधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण।१४

पञ्चांगचन्द्रग्रहणानयनाधिकारः—१५

तिथिसाधनम्—

मासाः स्वार्धयुतास्तिथेर्दिनाद्यं तावत्यो घटिकाश्च माससंघात् ।
त्र्यंशाढ्याः सहितं द्वयत्रयाभ्यां चक्रघ्नाक्षनवाङ्गवर्गयुक्तम् ॥१

मल्लारिः—अथ पञ्चाङ्गायखमाधिकारो व्याख्यायते । इष्टमासीयो मासगणो यस्त एव मासाः । त स्वार्धयुताः तिथादेर्दिनाद्यं वाराद्य स्यात् । तावत्य एव घटिकाः मासगणात् त्र्यंशाढ्याः । ततस्तत् द्वयत्रयाभ्यां सहितं कार्यम् । चक्रेण गुणा अक्षाः पञ्च । नव प्रसिद्धाः । अङ्गवर्गः षट्त्रिंशत् । चक्रगुणेनानेन ध्रुवेण युक्तं तत्कार्यमित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः—अत्र तिथ्यानयनार्थं मध्यमतिथिवाराद्यं साध्यम् । तत्र चान्द्रमासप्रमाणम् २९।३१।५० इदं सप्ततष्टं जातं वाराद्यम् १।३१।५० । अत्रानुपातः । यद्येकमासेनेदं तदेष्टमासगणेन किमिति । अतो मासगणेनानेन गुण्यः । तत्र खण्डगुणेन मासगणतुल्या एव वारा एकं खण्डम् । द्वितीयखण्डम् ०।३०। अतः सार्धयुक्ता इति घटिका अपि तावत्यः । अन्यत् खण्डम् ०।२०। अतस्त्र्यंशाढ्या इति । अत्र ग्रन्थारम्भे तिथिवारद्वयं घटित्रयं च । अतस्तद्युक्तमिति । एकचक्रे तिथिवाराद्यम् ५।९।३६ यद्येकचक्रेनेदं तदेष्टचक्रेण किमति । अतश्चक्रघ्नाक्षनवांगवर्गयुक्तमित्युपपन्नम् ॥१॥

चन्द्रिका—अपने आधे भाग से युक्त मासगण में उसी के तुल्य दिवसादि मान जोड़कर योग में पुनः मासगण का तृतीयांश जोड़ने से योगफल पर्यन्त तिथि का दिवसादि मान होता है। इसमें २ दिन ३ घटी तथा चक्रगुणित ५।९।३६ को जोड़ने से इष्ट तिथि का दिवसादि मान होता है ॥१

नक्षत्राणां ध्रुवानयनम्—

खं सप्ताष्टयमाश्च चक्रनिघ्ना नागाम्भोधिघटीयुता भशुद्धाः ।
द्वाभ्यां धूर्जटिभिर्दिनिघ्नमासैर्युक्ता भध्रुवको भपूर्वकः स्यात् ॥२

मल्लारिः—अथ नक्षत्रध्रुवकं साधयति । ख शून्यम् । सप्त घटिकाः । अष्टविंशतिः पलानि । एते चक्रनिघ्नाः कार्याः । ततो नागाम्भोधि-४८ घटा-

भिर्युक्ताः कार्याः । ततस्ते सप्तविंशतेः शोध्याः । द्वाभ्यां धूर्जटिभिर्विनिघ्ना गुणिता ये मासाः । तैर्युक्ता मपूर्वो नक्षत्राद्यः । नक्षत्रध्रुवकः स्यादित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः—अत्रैकमासे नक्षत्रध्रुवकः सप्तविंशतितष्टः २।११। अतो मासा अनेन गुण्या इति । तथैकस्मिन् चक्रे नक्षत्रध्रुवकश्चक्रशुद्धः ०।७।२ । अतोऽयं चक्रगुण इति । क्षेपश्च चक्रशुद्धोऽयम् । ०।४८। अतो नागाम्भोधिघटीयुता इति स्वचक्रशुद्धत्वात् भशुद्ध इत्युपपन्नम् ।। २ ।।

चन्द्रिका चक्र गुणित ०।७।२८ में ४८ घटी जोड़कर २७ में घटाकर शेष में २।११ से गुणित मासगण को जोड़ने से नक्षत्रादि (नक्षत्र, घटी, पल) नक्षत्र का ध्रुवा होता है ।२

चन्द्रस्य मन्दकेन्द्रसाधनम्

स्वर्गाः शरा नव च चक्रहता द्विनिघ्न-
मासान्विता द्विहृतमासयुता घटीषु ।
पिण्डो भवेद्युगकुभिः खचरैः समेता-
स्तष्टो गजाश्विभिरिदं भवतीह चक्रम् ।।३

मल्लारिः अथ पिण्डं साधयति । स्वर्गा एकविंशतिः शराः पञ्च । नव प्रसिद्धाः । एते चक्रेण गुणनीयाः । ततो द्विगुणमासगणेन युक्ताः कार्याः । पुनर्घटीषु द्विभक्तमासगणेन युक्ताः कार्याः स पिण्डो भवेत् । युगकुभिः चतुर्दशभिरूर्ध्वस्थाने खचरैर्नवभिर्घटीषु समेतो युक्तः कार्यः । ततो गजाश्विभिरष्टविंशत्या तष्टः कार्यः तच्चक्रं भवति । अथ पिण्डे अष्टविंशतिमितं चक्रम् ।

अत्रोपपत्तिः—पिण्डो नाम चन्द्रमन्दकेन्द्रम् । तस्य चक्रमध्ये ध्रुवाद्य २१।५।९ अतोऽयं चक्रगुण इति । ततो मासध्रुवोऽयं २।०।३० । अतो द्विघ्नमासान्विताः ६८ पु द्विहृतमासयुता इति 'युगकु' इत्यादिक्षेपोऽनन्तरयुक्तः कार्यः । अष्टाविंशति चक्रत्वात् तष्टः कार्यः इत्युपपन्नम् ।। ३ ।।

चन्द्रिका २१।५।९ को चक्र से गुणाकर गुणनफल में द्विगुणित मासगण जोड़ने तथा घटी स्थान में मासगण के आधे को जोड़कर उसमें पुनः १४।९ जोड़कर २८ का भाग देने से शेष तुल्य चन्द्रमन्द केन्द्र नामक पिण्ड होता है । (यहाँ मन्दकेन्द्र को पिण्ड शब्द से व्यवहृत किया गया है) ।३

सूर्यनक्षत्रान्मन्दफलसाधनम् —

शिवदशवसुषट्काब्ध्यश्विनाड्योऽश्विभात् स्वं
खगुणशरनगाङ्काशेशदिग्दिङ्नवाष्टौ ।
रसगुणखमिनर्क्षादादितेयादृणं स्यु-
र्द्वियुगरसगजाङ्काशेश्वरा वैश्वतः स्वम् ॥४

मल्लारिः—अथ सूर्यनक्षत्रात् फलघटिका आह । अ०घ० ११।१०।८।६।४।२ पु० ऋ० ०।३।५।७।९।१०।११।१०।१०।९।८।६।३।० उ०षा० ध० २।४।६। ८।९।१०।११ । अश्विनीघटिका एताः सूर्यघटिका धनं स्युः क्रमात् शिवादयः । तथा आदितेयात् पुनर्वसुत एताः खमुख्या घटिकाः ऋणम् । तथा विश्वत उत्तराषाढातो द्वियुगादयो घटिका धनं स्युरिति ।

अत्रोपपत्तिः—सूर्यस्य प्रतिनक्षत्रं सुखार्थं मन्दफलकलानां गत्यन्तरवशतो घटिकाः कृत्वा सिद्धाः पठिताः । तासां धनर्णोपपत्तिः । अश्विनीमारभ्य पुनर्वसु-पर्यन्तं रविमन्दकेन्द्रम् मेषादावतस्तत्र धनम् । एवं पुनर्वसुत उत्तराषाढपर्यन्तम् केन्द्रं तुलादौ भवत्यतोऽत्र ऋणम् । उत्तराषाढादारभ्याश्विनीपर्यन्तं केन्द्रं मेषादावतस्तत्रापि धनमित्युपपन्नम् । यत् सूर्ये धनं तच्चन्द्रे ऋणं पुनर्भोग्यकरणे तदधिकमेव भवति इति सूर्ये यादृशं फलं तादृशमेव तिथावित्युपपन्नम् ॥ ४ ॥

चन्द्रिका—अश्विनी से क्रम से ६ नक्षत्रों का धनात्मक मन्दफल ११।१०।८।६।४।२ (अर्थात् अश्विनी का ११, भरणी का १०, कृत्तिक का ८, रोहिणी का ६, मृगशिरा का ४ तथा आर्द्रा का २ धनात्मक मन्दफल) है। इसी प्रकार पुनर्वसु से १४ नक्षत्रों में क्रम से ०।३।५।७-९।१०।११।१०।१०।९।८।६।३।० घटी ऋणात्मक तथा उत्तराषाढ़ा से (अन्तिम रेवती पर्यन्त) क्रम से २।४।६।८।९।१०।११ घटी धनात्मक सूर्य का मन्दफल होता है।४

सूर्यनक्षत्रसाधनम् —

वेदघ्नेष्टतिथियुताऽर्कभागा योज्या भध्रुवनाडिकासु तत् स्यात् ।
सूर्यर्क्षं विगतं ततोऽर्कजाख्यनाडीहीनयुतं स्फुटं भवेत् तत् ॥५

मल्लारिः—अथ सूर्यनक्षत्रज्ञानमाह । चतुर्गुणा इष्टावर्त्तमानतिथिः स्वार्कभागयुता तिथेर्द्वादशांशेव युता । ततः सा नक्षत्रध्रुवघटीषु योज्या तद्गतं सूर्यर्क्षं सावयवं च मध्यमं स्यात् । ततस्तत् अर्कजाख्या इदानीमुदिता याः सूर्यनक्षत्रघटिकास्ताभिर्धनर्णत्वेन युतोनं सत् स्फुटं स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः—प्रतितिथिनक्षत्रध्रुवसूर्यनक्षत्रयोर्घटिकाचतुष्टय पञ्चपलाधिकमन्तरम् । अतोऽनुपातः । यद्येकया तिथ्येदं तदेष्टतिथिभिः किमिति । अत्र खण्डम् ४ । अन्यत् ०।५ । अतो वेदघ्नेष्टतिथिर्द्वादशांशयुक्तेत्युपपन्नम् । इदं भध्रुवे योज्यं सूर्यनक्षत्रं स्यादेव तन्मध्यमतः सूर्यघटीभिर्मन्दफलोत्पन्नाभिः संस्कृतं स्पष्टं स्यादित्युपपन्नम् ॥ ५ ॥

चन्द्रिका—इष्टतिथि को चार से गुणाकर गुणनफल में उसी का द्वादशांश जोड़कर उसे नक्षत्र की ध्रुवघटी में जोड़ने से सूर्य के गतनक्षत्र का मध्यम मान होता है। इसमें पठित मन्दफल (ग्र. ला. १५.४) को ऋण-धन के अनुसार घटाने तथा जोड़ने से स्पष्ट सूर्यनक्षत्र होता है ॥ ५

पिण्डफलसाधनम्—

पिण्डे युक्ततिथौ तदाद्यमनुषु स्वं शेषपिण्डेष्वृणं
विश्वेन्द्वोश्च शरा दशार्कयमयोः पञ्चेन्दवस्त्रीशयोः ।
गोचन्द्रा दशवेदयोर्यमयमाः पञ्चाङ्कयोः स्युर्जिनाः
षड्वस्वोश्च नगे तु तत्त्वघटिकाः शक्रे च खं पिण्डजाः ॥६

मल्लारिः—अथ पिण्डफलमाह वर्त्तमानतिथियुक्ते पिण्डोर्ध्वाङ्के कृते सति एता घटिका स्युः । विश्वेन्द्वो शराः त्रयोदशतुल्ये एकतुल्ये वा पिण्डेशराः पञ्चघटिकाः तथैव आर्कयमयोः पिण्डयोर्दश । त्रीशयोः पञ्चेन्दवः । दशवेदयोर्गोचन्द्राः । पञ्चाङ्कयोर्यमयमाः । षड्वस्वोर्जिनाः । नगे तत्त्वघटिकाः । शक्रे खम् । एताः पिण्डघटिकाः प्रथम चतुर्दशमध्ये धनम् । अग्रे ऋणमित्यर्थः । परं पिण्डयुक्ततिथिमष्टाविंशतेः प्रोह्य शेषात् फलं ग्राह्यम् ।

अत्रोपपत्तिः—अत्र पिण्डो नाम चन्द्रमन्दकेन्द्रम् । तत्र प्रतिपिण्डं चन्द्रस्य मन्दफलानि प्रसाध्य गत्यन्तरकलाप्रमाणेन तेषां घटिकाः कृत्वा सिद्धाः पाठपठिताः । पिण्डापरपर्याय चन्द्रकेन्द्रमुच्चोनो ग्रहः केन्द्रमिति प्रकारेण भवति । अतस्तुलादौ

स्वमजादौ ऋणमिति यद्यपि तथापि भोग्यकरणे चन्द्रमन्दफलम् व्यस्तं भवतीति मेषादि षड्भे केन्द्रे फलं धनम् अतश्चतुर्दशपिण्डमध्ये धनम् । तुलादावृणमतोऽग्रे ऋणमित्युपपन्नम् ॥ ६ ॥

चन्द्रिका—पूर्वोक्त पिण्ड के आद्य अंक में (वर्तमान) तिथि जोड़ने से फल १४ से अल्प हो तो धन अन्यथा ऋण होता है। १ तथा १३ योगफल में ५ घटी, २, १२ में १० घटी, ३, ११ में १५ घटी, ४, १० में १९ घटी, ५, ९ में २२ घटी ६, ८ में २४ घटी, ७ में २५ घटी तथा १४ में ० घटी फल होता है।६

स्पष्ट-तिथि-वारादिसाधनम्—

वारेषु तिथिर्देया हेया नाडीषु जायते मध्या।
रविजापिण्डफलाभ्यां सुसंस्कृता स्पष्टतां याति ॥७

मल्लारिः—अथ स्पष्टतिथिवारादिकमाह। यदानीतं मासगणात् तिथिवाराद्यं तस्य वारे वर्द्धमानतिथिर्देया। नाडीषु सैव तिथिर्हेया न्यूनीकर्त्तव्या सा मध्या स्यात्। सा रविजाभिर्घटीभिस्तथा पिण्डघटीभिः संस्कृता सती स्पष्टतां याति स्पष्टा स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—अत्र तिथेर्मध्यमं वाराद्यम् १०।५९।४। इदं तिथि गुणितं वारे योज्यम्। अतोऽत्र वारे तिथिर्युक्ता घटीषु न्यूनीकृता पलचतुष्टयं स्वल्पान्तरत्वात् त्यक्तं तन्मध्यम तिथिवाराद्यं सूर्यचन्द्रमन्दफलघटिकाभी रविजापिण्डजासञ्ज्ञाभिः संस्कृत स्पष्टं स्यादित्युपपन्नम् ॥ ७ ॥

चन्द्रिका—पूर्वोक्त वारादि में तिथि संख्या जोड़ने तथा घटी में तिथि संख्या घटाने से मध्यम तिथि होती है। मध्यम तिथि में रविफल घटी तथा पिण्ड फल घटी का संस्कार करने से स्पष्ट तिथि होती है।७

नक्षत्रसाधनम्—

स्याद्भं केवलयोस्तिथिध्रुवभयोर्योगे तिथेर्नाडिका
युक्ताव्यङ्गलवद्विनिघ्नतिथिना व्यस्ताऽर्कजाः संस्कृताः।
नाडीभिर्ध्रुवभस्य चेन्न वियुतास्तद्धीनषष्ट्यन्विताः
सैकं भं घटिका वियत् षडधिकाः षष्ट्यूनिता व्येकभम् ॥८

मल्लारि:—अथ नक्षत्रानयनं करोति। केवलयोस्तिथिध्रुवभयोर्योगे सप्तविंशतितष्टे भं नक्षत्रं स्यात्। तिथेर्नाडिका व्यङ्गलवः केवलतिथिषडंशहीनो यो द्विनिघ्नतिथिस्तेन युक्ताः कार्याः। व्यंगलवश्चासौ द्विनिघ्नतिथिश्चेति विग्रहः। व्यंगलवो द्वाभ्यां निघ्नः स चासौ तिथिश्चेति तत्पुरुषगर्भकर्मधारयो वा। ततो व्यस्ताभिर्धनर्णविपरीताभिरर्कजाभिर्घटीभिः संस्कृताश्च ताः कार्याः। ततो ध्रुवभस्य नक्षत्रध्रुवस्य नाडीभिर्वियुताः कार्याः। चेन्न भविष्यन्ति तदा तद्धीन घट्या ता अन्विताः कार्याः। एवं कृते सति भं नक्षत्रं सैकं कर्त्तव्यम्। घटिकाश्चेद्वियत्षड्भ्यः षष्ट्या अधिकाः स्युस्तदा ताः षष्ट्यूनिताः कार्याः व्येकभमेकहीनं नक्षत्रं कर्त्तव्यमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः—नक्षत्रध्रुवो मासान्तीयः कृतोऽस्ति। इष्टतिथिकालीनत्वकाणार्थं तिथितस्त्र योज्या। तथातिथिघटिकानां नक्षत्रघटिकानां प्रतितिथि इदमन्तरम् १।५०। अतो व्यंगलवद्विनिघ्नतिथिना युक्ता इति। ततःस्पष्टत्वार्थं सूर्यघटीभिः संस्कार्याः। तत्र ग्रहापेक्षया तिथिनक्षत्रयोर्व्यस्तमतो व्यस्तार्कजाः संस्कृता इति। एता नक्षत्रघटिका नक्षत्रध्रुवघटीभ्य उपरि समागताः। अतस्तद्धीना इति चेन्नोना भविष्यन्ति तदा तद्धीनषष्ट्या युक्ता इति। तदा नक्षत्रं सैक कार्यमेव। यदा नक्षत्र घटिकाः षष्ट्यधिकास्तदा षष्ट्यूनाः। नक्षत्रमेकहीनं कार्यं भोग्यत्वात्॥ ८॥

चन्द्रिका—साधित ध्रुवा की केवल नक्षत्र संख्या में तिथि संख्या जोड़ने से गतनक्षत्र संख्या होती है। यदि २७ से अधिक हो तो उसे २७से तष्टित कर लेना चाहिये)। इष्ट तिथि को २ से गुणा कर गुणनफलके षष्ठांश को साधित तिथि घटी में जोड़कर तथा सूर्य फल घटी का विपरीत संस्कार करके नक्षत्र की ध्रुव घटी घटाना चाहिये। यदि ध्रुव घटी न घटसके तो उसे ६० घटी में घटा कर शष को जोड़ देना चाहिये। ऐसी स्थिति में नक्षत्र संख्या में १ और जोड़ने में तथा यदि ६० से अधिक ध्रुव घटी हो तो ६० घटा कर नक्षत्र संख्या से १ घटाने से नक्षत्र घटी होती है।८

योगसाधनम्—

सूर्यभेन्दुभयुतिर्भवेद्युतिस्तद्घटीविवरमत्र नाडिकाः।
चेद्ध्रुभेऽल्पघटिकास्तदा सकुर्योगकोऽस्य घटिकाः खषट् च्युताः॥९

मल्लारिः—अथ योगसाधनमाह। सूर्यनक्षत्रचन्द्रनक्षत्रयोर्योगो योगः स्यात्। तथा तयोर्घटीनां यदन्तरं ता योगघटिकाः स्युः द्युभे दिवसनक्षत्रे यदि घटिका अल्पाः स्युस्तदा योगः सकुरेकयुक्तः कार्यः। अस्य योगस्य घटिकास्तदा खषट्च्युताः कार्या इत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिरतिसुगमा ॥ ९ ॥

चन्द्रिका—सूर्य नक्षत्र तथा चन्द्रनक्षत्र के योग करने से 'योग' होता है। दोनों के नक्षत्र घटी का अन्तर करने से योग की घटी होती है। यदि सूर्य नक्षत्र घटी से चन्द्रनक्षत्र घटी अल्प हो तो पूर्व नियमानुसार साधित योग में १ जोड़ने तथा योग की घटी को ६० में घटाने से अभीष्ट योग तथा उसकी घटी होती है।९

पर्वान्ते राहुसाधनम्—

चक्राहताः सप्त यमौ खबाणा मासाहताः खं क्षितिरब्धिरामाः।
भाद्यानयोः संयुतिरर्कशुद्धा भांशैर्युता शुक्लगमे तमः स्यात्॥१०

मल्लारिः—अथ पूर्णान्तकाले राहुं साधयति। सप्त। यमौ। खबाणाः। चक्रेण गुणिताः कार्याः। खम्। क्षितिः। अब्धिरामाः। मासगणेन गुणनीयाः। अनयोर्भाद्या शशिपूर्वा या संयुतिः सा अर्कशुद्धा द्वादशशुद्धा भांशैः सप्तविंशतिभागैर्युक्ता सती शुक्लगमे पौर्णमास्यन्ते तमो राहुः स्यात्।

अत्रोपपत्तिः—एकचक्रे राहुध्रुवः ७।२।५०। अतश्चक्रहतोऽयमिति। तथैकमासे राहुध्रुवः ०।१।३४। अनेन मासगणो गुण्य इति अनयोः संयोगः चक्रशुद्धः कार्यः। ध्रुवाणां चक्रशुद्धत्वात् तत्र क्षेपः सप्तविंशतिभागाः। अतस्तद्युक्तः कार्य इत्युपपन्नम् ॥ १० ॥

चन्द्रिका:—चक्रगुणित ७।२।५० में मासगण से गुणित ०।१।३४ को जोड़ कर योगफल को १२ में घटाकर शेष में २७ अंश जोड़ने से पूर्णान्त कालिक राहु होता है।१०

सूर्यप्रसाध्य पर्वसम्भवज्ञानम्—

वेदघ्नगोहृद्रविभुक्तधिष्ण्यं तिथ्यन्तजोऽर्को गृहपूर्वकः सः।
राहूनितः पर्वणि तद्भुजांशा मन्वल्पकाश्चेद् ग्रहसम्भवः स्यात्॥११

मल्लारिः—अथ सूर्यं साधयति । रवेः सूर्यस्य भुक्तं नक्षत्रं यत् सावयवमतीतमस्ति तद्वेदघ्नगोहृत् चतुर्भिः संगुण्य नवभिर्भाज्यं फलं गृहपूर्वकोराश्यादिकस्तिथ्यन्तजोऽर्कः स्यात् पर्वणि स रवि राहुणा ऊनितः कार्यः। तस्य भुजभागाश्चेत् मनुभ्यश्चतुर्दशभ्योऽल्पास्तदा ग्रहण सम्भवः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः—प्रत्यक्षसुगमा । ११ ।।

चन्द्रिका—रवि से भुक्त नक्षत्र को ४ से गुणा कर ९ से भाग देने पर तिथ्यन्तकालिक सूर्य होता है। पर्वान्त कालिक सूर्य में पर्वान्त कालिक राहु घटाकर शेष का भुज बनाना चाहिये। भुजांश यदि १४ से अल्प हो तो चन्द्रग्रहण की सम्भावना होगी ।११

ग्रास-भूभा-चन्द्रबिम्बानां साधनम्—

पिण्डनाड्यन्तराङ्घ्रयूनयुक्ता इनाः स्वर्गपिण्डाद्रिपिण्डात् क्रमाद्वर्जिताः ।
व्यग्विनाद्दोर्लवैः स्वार्द्धयुक्ता भवेच्छन्नमिन्दो रविच्छन्नकाद्युक्तवत् ॥१२
विरुयंशेशाः पिण्डनाड्यन्तरस्य षष्ठोनाढ्याः स्वर्गपिण्डाद्रिपिण्डात् ।
ग्लौबिम्बं स्यात्तद्वदुर्वीप्रभा स्यात् त्रिघ्नस्याक्षांशोनयुक्तानि भानि ॥१३

मल्लारिः—अथ ग्रासमानं साधयति । गतैष्यपिण्डोत्पन्ना या घटिकास्तासां यदन्तरं तस्य योंऽघ्रिश्चतुर्थांशस्तेन इना द्वादश ऊना युक्ताः कार्याः स्वर्गपिण्डादिति एकविंशतिपिण्डमारभ्य षष्ठपिण्डपर्यन्तमूना अतोऽग्रे युक्ता इति । ततस्ते व्यग्विनात् विराहुसूर्याद्दोर्लवः भुजभागैर्वर्जिताः कार्यास्ततः स्वार्धेन युक्ताः सन्तश्चन्द्रस्य ग्रासोंऽगुलाद्यो भवेत् सूर्यग्रासादि पूर्ववत् साध्यम् ।

अत्रोपपत्तिः—प्रतिपादितप्रमेया। अथ चन्द्रबिम्बभूच्छाये च साधयतिरुयंशोना एकादश ११ पिण्डनाड्यन्तरषडंशेन स्वर्गाद्रिपिण्डात् क्रमात् ऊनाढ्याः कार्यास्तच्चन्द्रबिम्बं स्यात् तद्वत्तथैव त्रिगुणस्य पिण्डनाड्यन्तरस्य अक्षांशेन पञ्चमांशेन सप्तविंशतिमितानि स्वर्गाद्रिपिण्डादेव क्रमादूनयुक्तानि कार्याणि सा भूच्छाया स्यात् अस्योपपत्तिः । मासगणाधिकारे कथितैव ।। १२-१३ ।।

चन्द्रिका—पूर्वपठित २१ पिण्डों के पश्चात् ७ पिण्ड तक गतैष्य पिण्डान्तर घटी का चतुर्थांश १२ में घटा कर तथा ७ पिण्डों के आगे २१ पिण्ड तक गतैष्य पिण्डान्तर के चतुर्थांश को १२ में जोड़कर योगफल में राहु रहित सूर्य के भुजांश घटाकर शेष में उसी का आधा जोड़ने से

चन्द्रमा का ग्रास मान होता है। सूर्य के ग्रासमान आदि का साधन पूर्वोक्त विधि से ही करना चाहिये।

२१ पिण्डों के बाद गतैष्य पिण्डों के घट्यन्तर में ६ का भाग देकर लब्धि को १०।४० में जोड़ने तथा ७ पिण्डों के पश्चात् पिण्डों के घट्यन्तर के षष्ठांश को १०।४० में जोड़ने से चन्द्रविम्ब होता है। इसी प्रकार गतैष्य पिण्डों के घट्यन्तर के पञ्चमांश को ३ से गुणाकर गुणनफल को २१ पिंडों के पश्चात्, २७ में जोड़ने तथा तत्पश्चात् ७ पिण्डों के बाद २७ में घटाने से भूभा विम्ब होता है। १२,१३

वारादौ चालनम्—

वारादिके भूः कुगुणाः खबाणाः पिण्डे द्वयं भे द्वयमीशनाड्यः।
क्षेप्याः क्रमेण प्रतिमासमत्र राहौ युगांकाः कलिका वियोज्याः॥१४

मल्लारिः—अथ प्रतिमासवारादीनां चालनमाह स्पष्टार्थमेतत्।

अत्रोपपत्तिः—सुगमा॥ १४॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य पञ्चाङ्गपर्वानयनं समाप्तम्॥

इति श्रीग्रहलाघवस्य टीकायां पञ्चाङ्गचन्द्रग्रहणानयनाधिकारः पञ्चदशः॥ १५॥

चन्द्रिका—वारादि में १।३१।५०, पिण्ड में २ तथा नक्षत्र में २।११ घट्यादि प्रतिमास जोड़ने से, तथा राहु में प्रतिमास ९४ कला घटाने से तत्तत् मासों के वारादि हो जाएंगे।१४

श्री गणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के पञ्चाङ्गचन्द्रग्रहणानयनाधिकार की चन्द्रिका नामक सोदाहरण हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥१५

———

उदाहरण

प्रस्तुत ग्रन्थ ग्रहलाघव के "पञ्चाङ्गचन्द्रग्रहणानयनाधिकार-१५" के लिए आचार्य विश्वनाथ कृत उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। सरलता के लिए श्लोक संख्या प्रत्येक उदाहरण के पूर्व दी गई है, ताकि सम्बन्धित श्लोक की व्याख्या का भी अवलोकन अध्याय '१५' से किया जा सके।

श्लोक १. **तिथिसाधन—**

अभीष्ट शक १५३४ कार्तिक शुक्ल १५ गुरुवार।

अहर्गणानयन विधि से मासगण $= \frac{(१५३४-१४४२)}{११} = \frac{९२}{११}$

लब्धि ८ = चक्र, शेष = ४

४ × १२ = ४८ + ७ गतमास = ५५

$८ \times २ = १६ + १० = २६ + ५५ = ८१ \frac{८१}{३३}$ = लब्धि २ = अधिमास

५५ + २ = ५७ मास गण।

$\frac{५७}{२} = २८ \cdot ३०$ ।

५७।०० + २८।३० = ८५।३०

$\frac{८५।३०}{३} = २८।३०$।

```
   ८५।३०
      ८५।३०
   ----------
   ८५।१।१५।३०
      १९।००
   ----------
   ८५ १३४।३०
    २।३
   ----------
   ८७।१३७।३०
```

मासगण $\frac{५७}{३} = १९$

८ (५।९।३६) = ४१।१६।४८

(४१।१६।४८) + (८७ १३७।३०)

= १२८ १५४।१८ वारादि।

वार को ७ से घटी को ६० से तष्टित करने पर वारादि ४।३४।१८। देशान्तर पल ४८ का संस्कार करने पर ४।३५।६।

श्लोक २. **नक्षत्र ध्रुव साधन**

चक्र ८ से ०।७।२८ को गुणा कर गुणनफल ८(०।७।२८) = ०।५९।४४ को ४८ घटी में जोड़कर २७ से घटाया। (०।५९।४४) + (०।४८।०)

=१।४७।४४। (२७।०।०) – (१।४७।४४) =२५।१२।१६ शेष।

मासगण ५७ × २।११=११४।२७

२५।१२।१६
११४।२७।००
२४९।३९।१६ नक्षत्रादिमान

२७ से तष्टित करने पर १४।३९।१६ नक्षत्र ध्रुव

श्लोक ३ पिण्ड साधन

चक्र ८ × (२१।५।९) = १६८।४१।१२

मासगण ५७ × २=११४

१६८।४१।१२
११४। ०।००
२८२।४१।१२

घटी में मासगण के आधे को जोड़ने से—

$\frac{५७}{२}$=२८।३० २८२।४१।१२
२८।३०
२८३।०९।४२

प्रथम स्थान में १४ तथा घटी में ९ जोड़ने से

२८३।०९।४२
१४।०९।००
२९७।१८।४२ प्रथम संख्या को २८ से तष्टित करने पर शेष १७।१८।४२ पिण्ड

श्लोक ५. सूर्यनक्षत्र साधन

इष्ट तिथि १५

१५ × ४=६० अपना द्वादशांश ($\frac{६०}{१२}$ =५) जोड़ने से

६० + ५=६५।

भध्रुव १४।३९।१६ में ६५ घटी जोड़ने से—

१४।३९।१६
०।६५।००
१५।४४।१६ सौरनक्षत्रादि

अर्थात् गत नक्षत्र स्वाती वर्तमान विशाखा ४४।१६ घट्यादि विशाखा की फल घटी ९, अनुराधा की ८, दोनों का अन्तर ९ – ८=१, अन्तर से विशाखा के घट्यादि को गुणा कर ६० से भाग देने पर

$\frac{१ \times (४४।१६)}{६०}$ = लब्धि ०।४४। फलघटी ऋण होने से—

९।००
− ०।४४

८।१६ स्पष्ट घटी इसे नक्षत्रमान में घटाने से—
१५।४४।१६
− । ८।१६

१५।३६।०० स्पष्ट नक्षत्रादि मान।

श्लोक ६. पिण्डफल साधन

पूर्वानीत पिण्ड १७।१८।४२ में इष्ट तिथि १५ जोड़ने से—
१७।१८।४२
१५
३२।१८।४२ चक्र २८ से तष्टित करने पर शेष ४।१८।४२। इसमें प्रथम संख्या ४ से सम्बन्धित फलघटी १९ धनात्मक। गत गम्य घटयन्तर = ३ शेष (१८।४२) ३ = ५६।६ इसे ६० से विभक्त करने पर लब्धि ०।५६ धनात्मक।

पिण्ड घटी (१९।००) + (०।५६) = १९।५६ स्पष्ट पिण्ड घटी

श्लोक ७. स्पष्ट तिथ्यादि साधन

पूर्वसाधित वारादि ४।३५।६।

	४।३५।६
वार में इष्टतिथि १५ जोड़ने से	१५
	१९।३५।६
१५ घटी घटाने से	− ०।१५।००
	१९।२०।६
वार को ७ से तष्टित करने पर	५।२०।६
सूर्य का घटी फल ऋण	− ८।१६
	५।११।५०
पिण्ड घटी धन	१९।५६
स्पष्ट तिथ्यादि	५।३१।४६

श्लोक ८. नक्षत्र साधन

नक्षत्रध्रुवा १४।१९।१६। इष्टतिथि १५, तिथिघटी ३१।४६ अवयव रहित नक्षत्र ध्रुव में इष्ट तिथि जोड़ने से—

गत नक्षत्र संख्या = १४ + १५ = २९

२७ से तष्टित करने पर शेष = २ अतः भरणी नक्षत्र। तिथिघटी ३१।४६ में द्विगुणित तिथि में उसी का षष्ठांश घटाकर शेष जोड़ने से—

तिथि १५ × २ = ३०$\frac{३०}{६}$ = ५। द्विगुणित तिथि ३० − ५ = २५

तिथि घटी ३१।४६ + २५।०० = ५६।४६

सूर्य घटी फल ८।१६ ऋणात्मक है। अतः व्यस्त संस्कार करने से (५६।४६) + (८।१६) = ६५।०२

नक्षत्र ध्रुव ३९।१६ घटाने से—

(६५।०२) − (३९।१६) = २५।४६ = नक्षत्र घटी

श्लोक ९. योग साधन

सूर्य नक्षत्र १५। चन्द्र नक्षत्र २।

दोनों का योग १५ + २ = १७ = योग-संख्या = व्यतिपात योग

सूर्य नक्षत्र घटी ३६।००। चन्द्र नक्षत्र घटी = २५।४६, दोनों का अन्तर = ३६।०० − २५।४६ = १०।१४ यहाँ दिन नक्षत्र घटी सूर्य नक्षत्र घटी से अल्प है अतः एकाधिक योग संख्या होगी। १७ + १ = १८ वाँ वरीयान योग। तथा ६०।०० − १०।१४ = ४९।४६ योग घटी हुई।

श्लोक १०. पूर्णान्तकाल में राहु साधन

'सप्तयमौ ख बाणा' इत्यादि से ७।२।५० को चक्रसंख्या ८ से गुणा करने पर (७।२।५०)८ = ५६।२२।४०

मासगण ५६ से गुणित ०।१।३४ = ५६ (०।१।३४) = २।२९।१८

दोनों का योग = (५६।२२।४०) + (२।२९।१८) = ५९।२१।५८ राशि को १२ से तष्टित करने से राश्यादिमान ११।२१।५८।

१२ राशि में घटा कर अंश में २७ जोड़ने से—

१२।००।०९	०।०८।०२
११।२१।५८	२७
०।०८।०२	१।०५।०२ राश्यादि पूर्णान्त कालिक राहु।

श्लोक ११. सूर्य साधन

रवि भुक्त नक्षत्र १५।३६।०० को ४ से गुणा करने पर ४(१५।३६।००) = ६२।२४।००। इसे ९ से भाग देने पर लब्धि ६ शेष ८।२४।०० को ३० से गुणा कर पुनः ९ से भाग देने पर ३०(८।२४।०) = $\frac{२५२।०।०}{९}$ =

लब्धि २८ शेष ०।०।० । शेष को ६० गुणा कर ९ से भाग देने पर ६०(०।०।०) = ०। ०/९ = ० लब्धि तिथ्यन्तकाल में स्पष्ट रवि ६।२८।०।०

स्प० रा० १।५।२।० । राहुरहित सूर्य=६।२८।००−१।५।२।०= ५।२२।५८।०० इसका भुजांश ७।२।० । राहु रहित सूर्य का भुजांश १४ से अल्प है, अतः ग्रहण सम्भव है।

श्लोक १२. ग्रासानयन

गत—गम्य पिण्ड घटयन्तर=३ (द्र० श्लो० ६)

३ का ३/४ = ०।४५ इसे १२।०० में जोड़ने से १२।४५। इससे राहु रहित सूर्य (व्यगु) का भुजांश ७।२ को घटाने से—

(१२।४५) − (७।२)=५।४३ इसमें इसी का आधा ५।४३/२ =५।४३२।५१ जोड़ने से ५।४३) + (२।५१) = ८।३४ चन्द्रमा का ग्रासमान।

श्लोक १३. चन्द्रबिम्ब भूभाबिम्ब साधन

गत-गम्य पिण्डघटयन्तर ३ के षष्ठांश=३/६ = ०।३० को १०।४० में जोड़ने से (१०।४०)+(०।३०) = ११।१० चन्द्रमा का बिम्ब हुआ।

भूभा साधन--अन्तर घटी ३ को त्रिगुणित करने पर ३ × ३ = ९।

९ का पञ्चमांश = ९/५ = १।४८ को २७।०० में जोड़ने से (२७।००) + (१।४८) = २८।४८ = भूभा।

श्लोक १४. मासिक चालन

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को वारादि ४।३५।६ में क्रम से १।३१।५० जोड़ने से—

४।३५। ६
१।३१।५०
६।०६।५६ मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा का वारादि दो से भुक्त १७।१८।४२ अर्थात् १९।१८।४२ अग्रिम मासादि के पिण्ड हैं।

मासादि नक्षत्र ध्रुवा १४।३९।१६
+ २।११
अग्रिम मासादि में नक्षत्र ध्रुव १६।५०।१६

राहु १।५।२।०० में ९४ कला (=१।३४) घटाने से--
१।५। २।००
−१।३४।००
अग्रिम मासादि में राहु १।३।२८।००

उपसंहाराधिकारः—१६

१४४२ शकात् पूर्वमहर्गणसाधनम् —

द्व्यब्धीन्द्राः शकरहितास्ततो भवाप्तं चक्राख्यं रविहतशेषकं तु हीनम् ।
चैत्राद्यैः पृथगमुतः सदृग्घ्नचक्रात् सिद्धाढ्यादमरफलाधिमासयुक्तम् ॥१

खत्रिघ्नं तिथिरहितं निरग्रचक्राङ्गांशाढ्यं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धैः ।
ऊनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद्वैवारः प्राक् शरहत चक्रयुग्गणोऽब्जात् ॥२

चक्रनिघ्नध्रुवोपेताः स्वक्षेपा द्युगणोद्भवैः ।
खेटैरूनाःस्युरिष्टाहे द्व्यब्धीन्द्राल्पः शको यदा ॥३

मल्लारिः—अथ द्व्यब्धीन्द्राल्पेऽङ्के ग्रहज्ञानार्थमहर्गणसाधनं वदति । स्पष्टार्थमिदम् ।

अत्रोपपत्तिः—विलोमविधिना पूर्वाहर्गणवासनातः सिद्धा ॥ १-३ ॥

चन्द्रिका– यदि अभीष्टशक १४४२ से अल्प हो तो उसे १४४२ में घटाकर शेष में ११ का भाग देने से लब्धि चक्र होती है। शेष को १२ से गुणा कर चैत्रादिमास को घटाकर पृथक रखकर उसमें द्विगुणित चक्र तथा २४ जोड़कर योग में ३३ का भाग देकर लब्धि तुल्य अधिमास को पृथक् स्थापित संख्या में जोड़कर ३० से गुणाकर गुणनफल में गततिथि घटाकर शेष में चक्र के षष्ठांश को जोड़कर पृथक् स्थापित करें एक स्थान में ६४ का भाग देकर लब्धि तुल्य क्षय दिन द्वितीयस्थानवाली संख्या में घटाने से अहर्गण होता है। चक्र में ५ का गुणाकर गुणनफल को अहर्गण में जोड़कर (७ से तष्टित करने पर) सोमवार से विपरीत (सोमवार, रविवार, शनिवार इत्यादि) क्रम से गणना करने से वार होगा। पूर्वोक्त (ग्र. ला. १) की विधि से अहर्गण द्वारा ग्रहसाधित कर, चक्रगुणित ध्रुवा को अपने-अपने क्षेप में युक्त कर योगफल को अहर्गणोत्पन्नग्रह से घटाने पर इष्ट कालिक मध्यमग्रह होते हैं।

उदाहरण—

शक १३४० श्रावणशुक्ल ८ रविवार को अहर्गण साधन अभीष्ट है।

अतः नियमानुसार शक १३४० को १४४२ से घटाकर ३३ से भाग दिया—

१४४२—१३३० = १०२

३३)१०२(३ लब्धि = चक्र

  ९९

  ३ शेष

शेष ३ × १२ = ३६

चैत्रशुक्लादि गतमास = ४

३६ – ४ = ३२ शेष मास

चक्र ३ × २ = ६ + २४ = ३०

३२ + ३० = ६२

३३) ६२ (१ अधिमास

  ३३

  २९

शेषमास = ३२ + १ = ३३ गतमास

३३ × ३० = ९९० गुणनफल

९९० – ७ गततिथि = ९८३

चक्र ३ ÷ ६ = $\frac{३}{६}$ = ० षष्ठांश

९८३ + ० = ९८३

६४) ९८३ (१५ क्षयदिन

  ६४

  ३४३

  ३२०

  २३

९८३ – १५ = ९६८ अहर्गण

वार ज्ञान हेतु—

चक्र ३ × ५ = १५

अहर्गण १६८ + १५ = १८३

७) १८३ (२६
१४
४३
४२
१ शेष गत सोमवार

वर्तमान रविवार।

ग्रन्थालङ्करणम् —

पूर्वे प्रौढ़तराः क्वचित् किमपि यच्चक्रुर्धनुर्ज्ये विना
ते तेनैव महातिगर्वकुभृदुच्चशृङ्गेऽधिरोहन्ति हि।
सिद्धान्तोक्तमिहाखिलं लघुकृतं हित्वा धनुर्ज्ये मया
तद्गर्वो मयि मास्तु किं न तदहं तच्छास्त्रतो वृद्धधीः ।। ४

अथ ग्रन्थालङ्कारमाह। पूर्वे भास्कराद्याचार्याः प्रौढतराः किञ्चिच्छाया-साधनं धनुर्ज्ये विना चक्रुः ते तेनैव कर्मणा महान् अतिगर्वलक्षणो यः कुभृत् पर्वतस्तस्य उच्चशृङ्गे उच्चशिखरे अधिरोहन्ति। यतो भास्करेण ब्रह्म तुल्ये छायाधिकारे उक्तम्। 'इति कृतं लघुकामुर्कशिञ्जिनीग्रहणकर्म विना द्युतिसाधन' मिति मया इहास्मिन् ग्रन्थे अखिलं गणितजातकर्म सिद्धान्तोक्तं धनुर्ज्याविधिं हित्वा कृतं तद्गर्वस्तेषामपेक्षया गर्वो मयि किं मास्तु अपि तु न यतो मम बुद्धि-वृद्धितच्छास्त्रतो जातेत्यर्थः ।। ४ ।।

चन्द्रिका — अत्यन्त प्रौढ पूर्वाचार्यों ने यदि किसी प्रकार जीवा चाप के विना ही गणित कर लिया तो उतने लाघव से ही गर्व के उन्नत शिखर पर चढ़ गये। परन्तु यहाँ (ग्रहलाघव में) मैंने सिद्धान्त में कहे गये समस्त क्रियाओं का साधन जीवा चाप के विना ही अत्यन्त सरलता से किया। फिर भी मुझे इसका गर्व नहीं होना चाहिये। क्योंकि मैंने उन्हीं (पूर्वाचार्यों) के शास्त्रों से अपनी बुद्धि का विकास किया है।४

ग्रन्थकर्तुः परिचयः—

नन्दिग्राम इहापरान्तविषये शिष्यादिगीतस्तुति-
र्योऽभूत्कौशिकवंशजः सकलसच्छास्त्रार्थवित्केशवः।
सूनुस्तस्य तदङ्घ्रिपद्मभजनाल्लब्ध्वावबोधांशकं
स्पष्टं वृत्तविचित्रमल्पकरणं चैतद्गणेशोऽकरोत् ।।५

मल्लारिः—अथ स्वस्थितिपुरस्वनामादि कथयति। केशवो नन्दिग्राम अपरान्त विषये समुद्रतटनिकटपश्चिमदेशे शिष्यादिभिर्गीता स्तुतिर्यस्येति स तथा कौशिकगोत्रे जातः। सकलानि यानि सन्ति समीचीनानि शास्त्राणि तेषां येऽर्थास्तान् वेत्ति जानाति स तथा एवं भूतो यस्तस्य सूनुर्गणेशः। तदङ्घ्रिपद्मभजनात्तच्चरण-कमलसेवनात् किञ्चिदवबोधांशकं ज्ञानलवं लब्ध्वा प्राप्य इदं करणं स्पष्टं स्पष्टार्थं वृत्तैर्नानाछन्दोभिर्विचित्रम्। अर्थेन बहुल च एतदकरोत् कृतवानित्यर्थः इति पूर्वशकाद्ग्रहानयनप्रकारो ग्रन्थालङ्कारश्च कृतः।

इति श्रीमद्गणकचूडामणिदिवाकरदैवज्ञसुतमल्लारिदैवज्ञविरचितायां ग्रहलाघवस्य टीकायां ग्रन्थसमाप्त्यलङ्कारव्याख्यानं समाप्तम् ॥ १६ ॥

देशे पार्थसमाह्वयेऽतिरुचिरे नीरे च गोदोत्तरे
गोलग्रामपुरे पुरारिचरणार्चासक्त विद्वद्युते।
आसीत्तत्र दिवाकरेति चतुरो दैवज्ञसंघाग्रणी-
र्विश्वेशो सततं यदीयहृदयं यस्तस्य पुत्रोऽकरोत् ॥ १ ॥
मल्लारिर्गणकाग्रणीर्गुरुपदद्वन्द्वाब्जभक्तौ रतो
लब्ध्वा बोधलवं ततो हि विवृतिं सार्थोपपत्तिं स्फुटाम्।
वर्यस्य ग्रहलाघवस्य गणकश्रीमद्गणेशाभिधप्रोक्तस्याथ
कृपालवो हि सुधियः पश्यन्तु तुष्यन्त्विमाम् ॥ २ ॥

रामचन्द्रपाण्डेयेन विरचितया चन्द्रिका सोदाहरणहिन्दीव्याख्यया सहितं गणेशदैवज्ञ विरचितं ग्रहलाघवं सम्पूर्णम्।

चन्द्रिका—पश्चिम सीमांत प्रदेश में स्थित नन्दिग्राम में शिष्यों से प्रशंसित यशवाले केशव दैवज्ञ के पुत्र गणेश ने उन्हीं (केशव) के चरणकमलों की आराधना से प्राप्त ज्ञान से विचित्र (भिन्न-भिन्न) छन्दों में इस लघु करण ग्रन्थ (ग्रहलाघव) की रचना की।५

श्रीगणेश दैवज्ञ विरचित ग्रहलाघव के उपसंहाराध्याय की चन्द्रिका नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण। १६